# लहरिया

कीर्ति दीक्षित

नई दिल्ली

:: समर्पण ::

**पं. चन्द्रशेखर शास्त्री एवं श्रीमती रामप्यारी त्रिवेदी**

अनुक्रम

# भूमिका

'अभिलाषा', 'इच्छायें' या फिर 'ख्वाहिशें' कुछ भी कहिये लेकिन इसी एक डोर को पकड़कर दौड़ने का नाम ही जीवन है, सारे मोहपाश खोलकर निकल जाने वाला वानप्रस्थी, संन्यासी भी मोक्ष की आकाँक्षा लिये यहाँ से वहाँ भटकता फिरता है फिर सामाजिक प्राणी तो इच्छाओं का ही अनुगामी होता है, जन्म के साथ उपजती हैं और अनन्त काल तक सफर करती रहती हैं। जिस दिन ये मूक हुई जीवन भी मौन हो जाता है। 'लहरिया' भी ऐसी ही ख्वाहिशों के सफर की कहानी है। ये कहानी मेरे मन में जन्मी जब मैंने उन चंचल आँखों में चमकती आकाँक्षाओं भरी खुशी को देखा।

अभी-अभी गाँव से लौटी हूँ, अंधेरा नर्म मखमली सा है। आज मैंने बहुत कुछ देखा था लेकिन मेरे मन पर उसकी ख्वाहिश भरा वो चेहरा जैसे किसी ने इन्द्रधनुष के अमिट रंगों से उकेर दिया हो, आँखें बन्द करते ही कितनी बातें करने लगता है। माँ की हथेलियों से खिंचती चली जाती वो छुईमुई सी एक पसली वाली लड़की जैसे अपनी कोई अभिलाषा पीछे छोड़े जा रही थी। हथेलियों में मेरे दुपट्टे का छोर तब तक थामे रही जब तक वो अपने आप ना छूट गया। बार-बार पलटकर देख रही थी, मुस्कुरा रही थी, जैसे मेरे दुपट्टे के चमकते सितारों में लिपटकर वो मेरे पास ही रह गई हो। बिल्कुल लहरों सी उछलती कूदती कुछ पल में ही मुझे सिर से लेकर पाँव तक भिगो गई थी इसलिये मैंने उसे नाम दिया है लहरिया!

डायरी पर लहरिया को शब्दों से ढाँकने को निकली हूँ तो ना तो दिल में कुछ आ रहा है, ना दिमाग में, उंगलियाँ भी लहरों की ही तरह इधर-उधर बिदक रहीं हैं। जेहन में बस लहरिया की ख्वाहिशों से चमकती आँखें हैं बिल्कुल उसी लालसा से भरीं जो चन्द्र-खिलौना माँगते हुए राम की आँखों में उभरी होगी, जो ऊँचे छींके पर टंगे माखन को देखकर कान्हा के मुख से टपकती होगी, जो सिया की आँखों में चमकी होगी उस स्वर्णमृग को देखकर और जो मेरे अभीष्ट को देखकर मेरी आँखों में उजिर जाती है।

उसकी आँखों में दमदमाती लालसा ने मुझे ये कहानी लिखने के लिये प्रेरित किया है, पहले सोचा था बड़े-बड़े शब्दों में भूमिका लिखूँगी पर कुछ नहीं सूझता बस लहरिया ही लहरिया है तो चलिये साथ गुनते हैं लहरिया को, उसके साथ हो आते हैं अपने बचपन में, जी आते हैं उसकी ख्वाहिशों के सफर को।

देख आते हैं कि कैसे ख्वाहिशों के बीज में जान पड़ती है, कई दृष्टि पल्लवित और पुष्पित होती है? फिर कैसे उनका मन अंगड़ाईयाँ लेकर कुलबुलाने लगता है? कैसे उनके हाथ और देह पोषित होते हैं? और फिर कैसे पाँवों पर रेंगती हुई दौड़ने लगती ये ख्वाहिशें सिखा जाती हैं जीवन का एक नवीन अध्याय!

# मुलाकात

भोर अभी अधजगी थी, उजाले की आँखें अभी रत्ती भर ही खुली थीं, लेकिन चिड़ियाँ, मोरें, गिलहरियाँ अपने-अपने सुर में वन्दना कर रही हैं। दद्दा अपनी खाट पर बैठे 'सियाराम राम जै राम जै जै राम' गुनगुना रहे हैं। दद्दा की उम्र यही कुछ पचहत्तर-अस्सी की होगी, पैरों ने जवाब दे दिया हैं, आँखों की ज्योति कुछ आँसूओं ने और कुछ मोतियाबिन्दों ने लील ली। बस इतनी बची है कि सब कुछ धुंऐं सा दिखाई पड़ता है। दाँतों के नाम पर आगे के दो-चार ही रह गये हैं। चेहरे पर खाल की चादर जबरदस्त तरीके से उसटी पड़ी है और गाँव देहातों में रंग तो बस गाढ़ा ही हुआ करता है सो वही है। हाथ पैरों में उम्र ने गहरी दरारें कर रखीं हैं, कई बार तो ऐसी दुखती हैं कि खून छलछला पड़े।

दद्दा छपरे के बाहर खाट पर पड़े-पड़े देहरी रखाया करते हैं। जरा सी भी कोई अपरिचित आहट हुई तो डंडा पटकते गालियाँ बकने लगते हैं। मोहल्ले के बच्चे उन्हें छेड़ने के लिये कभी मिट्टी फेंककर, कभी उनके गालों के गड्ढों में उंगलियाँ चुभाकर भाग जाते हैं और अगर एक भी दद्दा की पकड़ में आया तो फिर समझिये उसकी शामत आ गई। उसके महतारी बाप से लेकर बाप दादाओं को भी नहीं छोड़ते। दद्दा की नाराजगी बस एक जगह आकर पिघलती है वो है उनकी पन्तिन यानि पोते की बेटी, जिसमें उनके प्राण बसते हैं। कितना भी उधम करे लेकिन किसी की मजाल जो उसे उफ्फ तक कर सके। नदी की लहरों सी चंचल, खिलखिलाती, नाचती, सवाल करती, नये-नये कारनामे

करती किसी अल्हड़ तितली सी है, नाम है लहरिया! तीन साढ़े तीन साल की है। चेहरे ने आकार गुलाब की पंखुड़ी से लिया है। नाक ऐसी जैसे किसी दैवीय बाल योद्धा ने अपना पैना तीर मुख के बीचोंबीच रोप दिया हो। साँवला सा रंग, तांबे के से छल्लेदार बाल! आँखें इतनी बड़ी कि एक बार पलकें उठाकर देख ले तो लगे सफेद आकाश में सूरज कत्थई दुशाला ओढ़े निकल आया है। लहरिया दद्दा की सिलवटदार चर्म पर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बनाकर दिन भर उनके बुढ़ापे से खेला करती है और दद्दा उसके बचपने में अपना बुढ़ापा जी लेते हैं।

सैन्दुरी उत्तरीय धारण किये हुये सूर्य भगवान् आकाश में प्रकट हो चले थे। माधो, दद्दा का नाती और लहरिया का पिता, वैसे उसका नाम तो माधवप्रसाद है लेकिन देहाती गलियों में प्रेम अपार होता है पर नाम अक्सर छोटे हो जाते हैं इसलिये माधवप्रसाद को माधो बुलाया जाता है।

माधो भीतर सोई हुई लहरिया को बाहर दद्दा की खाट पर लिटाकर रोज की तरह पूजा-पाठ में लग गया। अरवे में रखी विष्णु भगवान् की तस्वीर के सामने थोड़ी देर तक जप किया और फिर घंटी बजाते हुये लहरिया के पास पहुँच गया, उसके पैरों को अपने माथे पर रगड़ते हुये बोला - *'उठ जा हमाई रानी बिटिया!'*

लहरिया कुनमुनाई और दद्दा की कमर से चिपट गई! दद्दा ने माधो से कहा - *रहने दे ना, कौन सा उसे सबेरे से जुद्ध लड़ने जाना है, जा अपना काम कर, सोने दे मौड़ी को!*

*तुम्हीं बिगारे हो दद्दा!* माधो इतना कहकर भीतर चला गया कुछ देर बाद लहरिया ने आँखें खोलीं और बोली - *दद्दा! तुम जे का बोलते रहते हो बुदर-बुदर?*

*भगवान् जी का नाम लेता हूँ!*
*भम्मान जी कौन हैं, कहाँ रहते हैं?*
*वहाँ ऊपर रहते हैं!*
*तो हमको कियों नईं दिखते,*

*तुम तो देख भी नईं पाते तो तुमको कैसे दिखते हैं?*
*बड़ी बातें आती हैं तुझे,*
*भगवान् को देखने के लिये..*
*भगवान् के पास जाना पड़ता है!*
*तो हम भी जाऊँगी, हम तो देखूँगी तब मानूँगी भम्मान को!*
*चुप! ऐसा नईं कहते री मौड़ी,*
*भगवान् के पास जब बूढ़े हो जाते हैं तब जाया जाता है!*
*तो हम भी तो बूढ़ी हो गई हूँ, अब जाऊँगी!*

*हट्ट! बड़ी जे हो गई है पुरखिन, बूढ़े तो तब होते हैं जब खाल-लटक जाती है, जे देख जैसे मेरी है। जब दिखना बंद हो जाता है और दाँत टूट जाते हैं तब बूढ़े होते हैं!*

लहरिया झट से उठी और दद्दा के गालों की खाल मुट्ठी में दबाकर बोली – *दद्दा जब तुम बूढ़े हो गये हो फिर तुम काये नहीं गये भम्मान जी के पास!*

दद्दा माथा पकड़कर हँसे और बोले – *रामजाने मूंछें है ई बिटिया के पेट में, जाने कितनी बातें आऊती हैं।*

माधो, दद्दा-पोती की ज्ञानगंगा सुन रहा था, दूर से ही चिल्लाया – चुप *हो जा लहरिया! भगवान् के पास ऐसे थोड़ी जा सकते, जब कोई मर जाता है तब बो जाता है भगवान् के पास।*

बाबू की बात सुनकर पल भर के लिये कुछ सोचती रही फिर तपाक से बोली – *तो दद्दा तुम कब मरोगे, अभी मर जाओ ना, हमें भम्मान जी चइये?*

माधो ने चाक पर बैठे-बैठे उसे हटकारा – *हट्ट! सबेरे से कुभक्क ना बक लहरिया, उठ तो वहाँ से देख तो अम्मा बुलाती है!*

लहरिया दद्दा के कांधे से लटक गई और फिर जोर से चिल्लाई – *दद्दा! बताओ ना तुम कब मरोगे?*

*जब भगवान् बुलायेंगे तब मरूंगा, अब जा और खुपड़भंजन नईं कर सकता, अरे ओ माधो ले तो जा इसको यहाँ से।*

माधो माटी रौंदना छोड़कर आया और लहरिया को उठाकर ले गया बखरी में ले जाकर बोला– *बेटा! अबसे कभी ना पूछना किसी से कि कब मरोगे, बुरी बात होती जे पूछना फिर भगवान् जी गुस्सा हो जाएंगे तो तुझे, मुझे, दद्दा अम्मा सबको जे भारी डंडा से मारेंगे फिर हम का करेंगे बता तो!*

लहरिया आँखों में मार का भय घोलते हुए बोली– *जब दिखते नहीं तो कैसे मारेंगे?*

*अरे बिटिया! भगवान् जी में बड़ी ताकत होती है, उनके पास जे बड़े-बड़े लट्ठ होते हैं उन्हें नीचे आने की जरूरत ही नहीं, ऊपर से बैठे-बैठे मार सकते हैं!*

लहरिया भौचक्की सी टकटकी लगाये पहले बाबू को देखती फिर आकाश को! मन प्रश्नों के जाल में फँस गया था, उत्तरों का अन्वेषण बेचैन कर रहा था पर बाबू की हिदायत ने उसके प्रश्नों के मुख पर भय की हथेली रखकर मौन कर दिया।

वैसे बातों में तो लहरिया के सामने यदि भगवान् भी उतरें तो निरुत्तर रह जायें लेकिन अपने रक्त की चाल को लोग बहुत अच्छे से पहचानते हैं, माधो भी अपनी बिटिया की बातों के उड़नखटौले को बहुत अच्छे से सम्हाल लेता था। वैसे लहरिया की ये चतुराई भी कहीं और से नहीं उसी के अम्मा-बाबू से मिली थी।

माधो गीली मिट्टी को आकार देकर गगरी, तसले बर्तन गढ़ता है, खिलौनों वाले गुड्डे-गुड़िया बनाता है। उम्र में अभी अट्ठाइस का ही है लेकिन जब तक उदर की नसें, नलियाँ चिकनी ना हों तो खाल और रंग भी निढाल हाँफते से लगते हैं ऐसे में उमर कहाँ तक जुद्ध लड़े वो भी मरी हत्या सी शरीर पर पसर जाया करती है।

माधो कदकाठी से ठिनगा है, देह का बादामी रंग धूप में झुलसकर चमकीला घी मिले काजल सा हो चला है। आँखें तसले की सी गहरी धँस गई हैं लेकिन कमजोर भी कोई नहीं कह सकता, पचास-पचास किलो की माटीभरी बोरियाँ रूई सी उठाकर पटक दिया करता है। जरा करीं मुट्ठियाँ भींच के भुजतौली करे तो बाजुओं में नसों की गाँठे उभर आया करती हैं, माँस बिल्कुल हड्डियों से प्रेमिका सा लिपटा है।

हुनर तो ऐसा कि चार गाँवों के कुम्हार पानी माँगते दिखते हैं। मिट्टी के लौंदों पर उसकी उंगलियों का जादू ऐसे उभरता है कि माटी के पुतले बस अभी बोल पड़ेंगे, माटी में मानवता गढ़ने का हुनर है उसमें। जो भी उसके हाथ से बने गगरी तसले एक बार ले जाये फिर किसी दूसरे की कारीगरी में मन नहीं भरता। माटी से ऐसे कागज से पतले घड़े, तसले, खिलौने गढ़ता है कि पकने के बाद बिल्कुल काँच सी खनखनाहट सुनाई देती है। इन माटी के काँचन बर्तनों में अपनी कलाकारी का रंग भरती है माधो की पत्नी और लहरिया की अम्मा, राधिका!

देखने सुनने में माधो से बीस ही बैठे लेकिन दिन-रात अवे की आग के सामने रहने के कारण रंग-रूप झुलसकर मुरझाये पलाश सा हो गया है। नैन नक्श ऐसे धारदार कि कोई हाथ फेर दे तो चिर जाये। बदन से छरहरी है, हथेलियाँ माटी कूरे में गड़ी रहती हैं इसलिये कुछ सख्त हैं पर माटी उनकी सख्ती को अपनी नर्म तासीर से सहेज देती है। अपनी पतली-पतली उंगलियों से वो माटी पर ऐसी चित्रकारी उकेरती है जैसे सुई की नोक से और तलवार की तीखी धार से फूल-पत्ते काढ़े गए हों।

राधिका की ये कलाकारी पूरे घर के कोने-कोने में दिखाई पड़ती है। कहने को दो कमरों का छपरा है लेकिन राधिका ने अपनी इस माटी और फूस की हवेली को किसी अजंता एलोरा से कम सजाकर नहीं रखा है। बाहरी चहारदीवारी पर गेरू से मोर, चिड़ियाँ और कई प्रकार के सुन्दर चौक उकेरे हैं। दीवारों पर भी गुड्डे-गुड़ियों के अतिरिक्त फूल-पत्तियों के नीले, गेरूए और लाल-सफेद रंग से चित्र बने हैं।

कोठरी के भीतर की दीवारों और धरती पर गेरू और चूने से चौक बनाये हैं।

वैसे तो मिट्टी से सबका अपना-अपना रिश्ता होता है लेकिन माटी को आकार देने वाले का घर है तो मिट्टी से उसका अलग ही लगाव है, शायद वैसा ही जैसे जीव बनाने वाले ईश्वर का मिट्टी से होता होगा या फिर उससे कहीं ज्यादा क्योंकि इसी मिट्टी में रंग-भरकर वो अपने जीवन में रंगभर सकता है। उसकी बखरी में बिखरे रंग, मिट्टी उसके रिश्ते का प्रमाण हैं जिसमें इन सबकी जिन्दगियाँ नहाई हुई रहती हैं।

बखरी के चौहद्दे के भीतर एक कोने में माटी से भरी बोरियाँ, चाक, कुछ रंग में सने तसले रखे हुए हैं। दूसरे कोने पर कुछ गहरा सा गड्ढा है जिसमें राख पड़ी रहती है। इसी गड्ढे के इर्द-गिर्द कुछ कच्ची पक्की मिट्टी की गगरियाँ, तसले रखे हैं। बखरी के सामने एक कोठरी है इस पर फूस और बाँस का छपरा उतरा है। पुराना हो गया है इसलिये कहीं-कहीं से फट गया है जो बारहों महीने और साढ़े तीन सौ पैंसठों दिन आसमानी झरोखे का काम करता है। कई बार तो चिरैयाँ, कौवे, गिलहरियाँ भीतर घुसकर अपने खाने-पीने का जुगाड़ कर ले जाते हैं। झोपड़ी के भीतर ही बाँस-फूस की एक दीवार खड़ी करके एक की दो मड़इयाँ बना दी गई हैं। कोने में चौका बना है, कुछ मटमैले माटी के डबले हैं, जिसमें राधिका अपनी गृहस्थी सहेजती है।

फागुन उतरने को था। दोपहरें भी अब अलसाने लगीं थीं लेकिन आकाश आज भोर से ही गहरा काजल लगाकर आया था। ऐसा लगता था कि सावन-भादौं एकसाथ बरस पड़ेंगे। काले-काले बादलों को देख सूरज जैसे किसी कोने में जा दुबका था, थोड़ी-थोड़ी देर में झांक-झांककर देख जाता कि ये कमबख्त काले बादल हटे कि नहीं। पंछियों को लगा फिर साँझ हो चली है इसलिये चिचिया-चिचियाकर अपने बच्चों को घोंसलों की तरफ लौटने का संदेश दे रहे थे। ये कलरव ऐसा प्रतीत होता है मानों सैकड़ों तानपुरों की धुन आकाश में बिखर रही हो और इन सुरों

पर जैसे बादल थिरकने लगे थे। तालाब के पानी में बनती बिगड़ती प्रवाह रेखायें ऐसे नाच रहीं थीं जैसे तानपुरे के तार झंकृत हो रहे हों, हवायें भी जैसे इस आकाशीय कालिख से डरकर जोर-जोर से भागी जा रही थीं। पेड़-पौधे तो यों झूम रहे थे जैसे सोम-रसपान कर आये हों।

इस गीली सी भोर में भी गाँव अपने काम पर निकल पड़ा था। चूल्हों से उड़ता धुआँ जैसे आकाश के घिरे बादलों से हुज्जत लगाता ऊपर.. और ऊपर उड़ने का प्रयास कर रहा था। गाय भैंसें ऐसे रम्हाती हैं मानो ये श्याम रंग के बादल उनके ऊपर श्राप बन बरस पड़ेंगे और वो गुहार लगा रही हैं कि हे सूर्यदेव! इन बदलियों के अस्त्र की काट तो तुम ही हो और आज तुम भी छुपे बैठे हो, तो हम जीवों का क्या होगा?

बादलों का झगड़ा सुनकर राधिका घबराकर सामान समेटती जाती और बुदबुदाती जाती- *सोचा था कि ज्यादा माटी लेकर कुछ खपरे पाथ लेंगे कम से कम छत तो ढँक जायेगी पर जेब में नईयाँ दाने अम्मा चली भुँजाने, ना तो खीसे में दाम हैं और ना माटी, जो दो चार रुपैया हैं उनसे छत बना लें तो चूल्हो सूखो रह जात है करें तो का करें? पर कौनऊ ना कौनऊ उपाय तो करने ही पर है नहीं तो अबकि दोऊ कुठरियाँ ढरक जैहें, कैसे भी हो अबकि छपरा सही करवाना ही है।*

लेकिन वो कहते हैं ना बिघन बिना सगुन कहाँ? बरसाती घटायें उमड़ते घुमड़ते देख माधो, दद्दा को अन्दर लाया ही था कि बूँदें पटपटाने लगीं। राधिका ने बाहर झाँककर देखा तो मुँह के भीतर बातें करते शब्द भी गरज के साथ बाहर आ गये- ऐसे नंगाड़े से बजाते चले आ रहे जैसे किसी ने इनको न्यौतऊआ देके बुलाया हो। राम जाने कौन पछीत खोदी है ईसुर की, जो जब देखो तब हम पे बज्र गिराने चले आते हैं। हे महामाई! कैसी अंधियारी हो आई है? हे पबनदेवता! तनक धीरे बहो हमाओ छपरा बिचारो तुम्हारी जे गुस्सा कौन सह पा है। मोरा बस चलता तो बादलों की इस उमड़-घुमड़ को भी गठरिया में बाँधकर रख देती या फिर अपने छपरे को मोटी सी कमीज पहना देती ताकि जे करियट्टे

बदरा हमाये झीने-छपरे पर कूद-कूदकर भीतर किचकंदो ना कर पायें लेकिन बस यही तो तमाशा है कि बस नहीं चलता। हे महामाई! इस बरस चौमासे तक लाज बनाये राखो, छपरा करवा लूँ सो चाहे जितनी थिरकना, तुम तो जानती हो जितना डर नाहर का नहीं हैं उतना ई टपका का है। पूरी कुठरिया गिलाये से भर जाती है, दुनियाभरे की बास बटोरते-बटोरते देह टूट के राख हो जाये सो अलग।

बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर ऐसा लग रहा था जैसे राधिका की कुड़कुड़ का जवाब देने के लिये और ज्यादा तने चले आते हैं। राधिका बड़बड़ाती हुई कुठरिया में कहाँ कंडे-लकड़ियाँ समेटे, कहाँ कपड़ा-लत्ता समेटकर रखे, इसी जुगत में जूझ रही थी। तभी बाहर बोरियाँ समेटते हुए माधो ने आवाज दी- *ओ लहरिया की अम्मा! इन बोरियों को जरा हाथ लगवा दे, सब मट्टी बह जायेगी, फिर बैठे रहेंगे हाथ पे हाथ धरे।*

राधिका माधो की आवाज सुनकर झल्ला पड़ी- *का-का करूँ, घर की माटी सकेलूँ की बाहर की मटियाई में हाथ लगाऊँ, दिन-रात इस मट्टी से जूझते-जूझते मरी जाती हूँ लेकिन कुछ हाथ नहीं आता। दो हाथ का छपरा तक डरवाने की हिम्मत ना बन पा रही।*

बादलों के छोटे-छोटे गुच्छों से बड़ी-बड़ी बूँदें झरने लगीं थीं, माधो चिल्लाया- *का करती है? आ तो जल्दी, पानी कसके आ गया है।*

राधिका दौड़ी आई, बोरियाँ कुठरिया के भीतर घसीटकर जमा करीं और चिल्ला पड़ी- *धर लो इधर कौन मेघ हमारे सगे हो जाते हैं कि फटे छपरे को छोड़ सब कहूँ बरसेंगे। अब खुद भींजते बैठो और कंडा लकड़ियाँ, मट्टी कूरा बचाते फिरो।*

माधो बोला- *काहे को इतना कुढ़ी जा रही है, हम अकेले थोड़ी हैं संसार में जो जूझ रहे। कोठी वालों के यहाँ तो बरात आने को है, राम जानें का हो रहा होगा? सोचता हूँ देख आऊँ एक बार!*

राधिका लकड़ियाँ पटकते हुये बड़बड़ाई- *घर छोड़ बाकी सब जगत के*

*पालनहार बने फिरो हम सब तो माँगे के आये तो हमाई काहे को ख्यास कर हो।*

तभी छपरे का एक बड़ा सा हिस्सा भरभराकर गिर पड़ा। अब तक बारिशों का झोंका एक छोटे से छेद से टपक रहा था। अब मानो आधा आकाश ही छपरे के भीतर आकर बरसने लगा। राधिका माथे पर हाथ पटककर रोने लगी- *हे महामाई! जिसका डर था वो भी हो गया अब नदी नारे सब ई दो हाथ की कुठरिया से बह कढ़ेंगे।*

माधो अंगौछे से मुँह दबाकर दीवार से टिककर बैठ रहा! कोने में खटिया पर थरथराते हुये दद्दा ने घबराकर पूछा- *अरे का हुआ, का गिरा?* किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया छत से आती बारिशों ने स्वयं अपने भीतर धसे चले आने का कोलाहल मचा रखा था!

दद्दा फिर चिल्लाये- *अरे महामाई ! छपरा गिर गया का, माधो ओ माधो सब ठीक हो ना? बोलो बोलते काहे नहीं दोनों, साँप सूंघ गया है का?*

दद्दा हड़बड़ा कर उठने को हुये तो माधो ने कहा- *परेसान ना हो सब ठीक हैं, छपरा गिर गया है।*

दद्दा ने फिर पूछा- *अरे दइया! लहरिया कहाँ है? बो तो इत्ती देर चुप नहीं रह सकती। तुम दोनों को दुनियाभर की फिकिर है, बिटिया कहाँ है ये किसी को नईं सूझता। बादर देखो तो ऐसे गरजते हैं कि पहलवान की छाती दहल जाये लेकिन ये लहरिया की महतारी को कोई चिन्ता नहीं कि राईभरी मौड़ी कहाँ बिलानी है?*

दद्दा के प्रश्न पर माधो ने राधिका से पूछा- *अरे हाँ! लहरिया कहाँ है?*

राधिका ने इधर-उधर देखा तो लहरिया कहीं नहीं थी- *रामजाने इस बिटिया के तो पाँवन में जैसे पंख लगे हैं, तनक निगाह चूकी और फुर्, अब जाने कहाँ कीचड़ में लोटती होगी।*

माधो बिना किसी तर्क-वितर्क के सिर को बोरी से ढाँककर लहरिया को देखने निकल गया। लहरिया पेड़ के नीचे भर आये पानी को मुट्ठियों

में दबाने की कोशिशों में ऐसी लीन बैठी थी मानो कोई तपस्वी अपने ईश को प्रसन्न करने के लिये तपोमग्न हो।

माधो ने देहरी से ही आवाज दी– *लहरिया ओ लहरिया! पानी में काहे बैठी है?*

बाबू की आवाज सुन लहरिया चौंक पड़ी। माथे से चूती पानी की बूँदों को होठों से भीतर सरूंटती हुई बोली– *बाबू! हमसे भम्मान जी गुस्सा हो गये हैं।*

माधो ने उसे गोद में उठाया और पूछा– *का? भगवान् जी काहे नाराज होंगे तुझसे?*

*.....हमने कहा था ना कि भम्मान जी जब नीचे आयेंगे तो हम मानूँगी, इसलिये ऊपर से इत्ता सारा पानी उड़ेलते हैं!*

माधो हँसा और उसे चूमते हुए बोला– *हट्ट! तुझसे तो कोई गुस्सा रह ही नहीं सकता और भगवान् जी तो बिल्कुल नहीं।*

*......नईं बाबू तुम्हें नईं पता भम्मान जी गुस्सा हो गये हैं, सच्ची में!*

*.....अच्छा बता तो तुझे कैसे पता चला?* माधो ने चलते-चलते पूछा।

*बाबू! जे देखों ऊपर से कैसे गड़गड़ करके नाराज हो रहे हैं अम्मा भी जब गुस्सा होती है तब ऐसई चिल्लाती है और दद्दा भी ऐसई गलगल करते हैं। जैसे हमें और छज्जन को कोऊ नहीं पकड़ पाता ऐसई भम्मान जी भी पकड़ में नईं आ रहे और जोर-जोर से डंडा मारते हैं देखो कैसी पटर-पटर डंडियाँ मार रहे हैं, कित्ती सारी चोट लग गई है हमें।*

माधो के चेहरे पर सावन सी हँसी बिखर गई– *अच्छा! अब तो तू अभी भगवान् जी से कह दे कि भगवान् जी गुस्सा बन्द कर दो अब तू बिल्कुल उधम ना करेगी।*

लहरिया हाथ जोड़ आकाश की ओर मुख कर आँखें मींचकर बुदबुदाई– *भम्मान जी! अब हम बिल्कुल उधम ना करूँगी, ना तुमको बुलाऊँगी हमपे गुस्सा नईं करो...नईं करो...!*

माधो लहरिया की मनुहार पर मुस्कुराता कोठरी में आ गया। बारिश और तेज हो गई थी।

लहरिया ने डरी हुई तिरछी निगाहों से बाबू को देखा फिर आकाश को तो माधो ने उसे आँखों से ही दिलासा दी और कपड़े बदलकर दद्दा की खटिया पर चुपचाप बैठे रहने की हिदायत देकर छपरे से गिरे मलबे को उठाने में लग गया।

कोठरी में पानी ऐसे भर आया था जैसे कोई तालाब हो। दीवारें पिचपिची हो उठीं थीं। मिट्टी, लकड़ी जैसी आवश्यक चीजों पर कथरिया और खटिया डालकर बचाने का असंभव प्रयास करते-करते राधिका हाँफकर रो पड़ी। दद्दा भी ठण्ड के मारे काँपे जा रहे थे, बदन तप आया था।

लहरिया कुछ देर दद्दा की खटिया पर बैठी रही पर उस छोटे से तालाब में टपटप कर नाचती बूँदों ने जैसे उस पर कोई मोहनी डाल दी हो, वो खटिया से उठी और बूँदों के साथ थिरकती, छपछपाती और गाती जाती-

*छप्पक...छप्पक...सात गुईयाँ न्यौतीं, गुल्ला खाए गौंती।*

राधिका, लहरिया को यूँ पानी में उचकते देख बोली- का करती है, दद्दा भींज के बुखार में तप रहे हैं, अब तू भी डूब जा और बीमार पड़ जाना।

इतना कहकर राधिका ने उसे उठाया और खटिया के ऊपर बैठाकर हिदायत दी कि यहाँ से नीचे उतरी तो टाँगे तोड़ दूँगी!

लहरिया मुँह बनाये कुछ गुणा-गणित लगाती खटिया पर बैठी रही फिर उठी और धीरे से बाबू के पास पहुँची-

*भम्मान जी सच्ची में हैं, इसलिये... इसलिये जे तला बना दिया और धड़ाम से हमाई छत को डंडा मारा है!*

माधो कुछ देर उसकी इस सहज स्वीकार्यता को देखता रहा, फिर माथे पर हाथ फिराते हुए बोला- *नहीं बेटा भगवान् जी गुस्सा नहीं होते।*

*तुम्हें कुछ भी नई पता बाबू भम्मान जी सच्ची में बहुत गुस्सा हैं, देखो अम्मा को भी मारा है, रो रई है और कल भी अम्मा*

*ने हमें मारा था। सच्ची में भम्मान जी गुस्सा हो गये बाबू, अब हमको अम्मा भी मारेगी और भम्मान जी भी।*

*कोई ना मारेगा तुझे और जो कोई मारेगा फिर बो दद्दा का डंडा है ना हमाये पास भी।*

लेकिन बाबू की समझाइश पर भगवान् जी के गुस्से का डर लहरिया पर भारी पड़ रहा था। डर के मारे बाबू की छाती से चिपक गई। माधो ने पुचकारा और उसके मुख पर उगती भय की रेखाओं को मिटाने के लिये आकाश को उंगली दिखाकर डपटते हुये बोला– *क्यों गुस्सा हो रहे हो, लहरिया की अम्मा को डंडा से क्यों मारा, अब ना मारना जे देख हमाये पास भी लाठी है, समझ लो।*

एक बच्चे के लिये माता–पिता की गोद से सुरक्षित स्थान संसार में दूसरा नहीं होता, सारे भय एक पल में साहस में बदल जाते हैं। लहरिया भी बाबू की गोद में दुबककर जोर से बोली– *भम्मान जी! गुस्सा नहीं करो, नई तो हमाये बाबू लठिया से तुमको बहुत मारेंगे, इत्ता... इत्ता...।*

बाप–बेटी की बातें सुनकर, राधिका ने पानी उलीचते हुये बुदबुदाई– लट्ठ की मार तो तनक देर की होती है घाव लगे और मिट गये लेकिन करम की मार ऐसी होती है कि इंसान मरता भी है और आह भी ना कर सके। देखने वाले खिल्ली उड़ाके कहें, इसी जनम के करम इसी जनम भोगने पड़े हैं।

राधिका की बात सुनकर माधो बस उसे देखता रह गया, ना जाने क्या था जो राधिका को गड़ रहा था और उसकी चुभन कहीं ना कहीं अब माधो भी महसूस कर रहा था पर उसने कुछ नहीं कहा और लहरिया को गोद में लिये बाहर चला आया। चबूतरे पर चुपचाप बारिश के बंद होने की प्रतीक्षा लिये बैठ गया।

लहरिया ने बाबू की ठोढ़ी पकड़कर अपनी तरफ घुमाई और पूछा– *बाबू! भम्मान जी ने नई मारा तो, जे पानी छपरे में भीतर क्यों बरसता*

*है? छज्जन के यहाँ, हरदेई चाची के यहाँ किसी के यहाँ नई बरसता? और... और.. कोठी पे भी नहीं बरसता, अम्मा कितनी गुस्सा होती है जब ये आता है, इसे क्यों नहीं कहते हमाये घर भी ना आया करे।*

माधो के चेहरे पर छोटी सी हँसी तैर गई– *बेटा! वो हमारी छत पे जो छेद है ना वहाँ से कूदके आ जाता है, अबसे कह दूँगा कि हमाये यहाँ भी ना आया करे, बस थोड़े से पैसे लगेंगे, तो उस छेद को बंद करा देंगे फिर तेरी अम्मा गुस्सा नई करेगी।*

लहरिया– *तो फिर चलो बाबू पैसे लेने चलते हैं?*

माधो– *तू छोटी है अभी, तेरा बाबू लेके आयेगा पैसे।*

लहरिया गोद से कूदकर बोली– *देखो हम कहाँ छोटी हूँ, हम तो बड़ी हो गई, हम पैसे लाऊँगी बाबू!*

माधो– *हमारी लहरिया, जब अपने बाबू के कांधे के बराबर होगी, तब होगी बड़ी, अभी तो देख इत्ती छोटी है, बस हाथ भर की!*

लहरिया– *हाँ.....बाबू! सच्ची हम इत्ती बड़ी हो जाऊँगी?*

माधो ने उसे गोद में लेकर माथा चूमा और अपने बाजुओं की गाँठों में बाँधकर चबूतरे की दीवार से लगकर बैठ गया। आगे क्या, कैसे करना है इसके गुणा-गणित में डूबा था। लहरिया, बरसात में कूदते-फाँदते बच्चों को देखकर छुटककर जाने को हुई तो माधो ने कसकर पकड़कर उसे जाने से रोक लिया लेकिन जब लहरिया ने छज्जन की आवाज सुनी तो उसकी कुलबुलाहट बढ़ गई, बाबू की गोद से छुटककर सीधे पीपल के नीचे पहुँची। माधो पीछे से चिल्लाया लेकिन फिर मन में विचारता हुआ चुप हो गया–

> *यही बेफिक्री ही तो बचपन है कल तो ये भी किसी मड़इया में बैठी इस बारिश के रुकने की आराधना कर रही होगी। क्या पता किसी टूटे छपरे को देख-देख कलेजे को तसइया देती होगी। भगवान् को कोसती होगी। नहीं आज इस बेफिक्रे*

*बालपन को जी ले यही तो खेल खिलौने हैं जो हम गरीब अपने बच्चों को बिना मोल के दे सकते हैं।*

लेकिन ऐसा कौन कहता है कि प्रकृति के ये खिलौने सिर्फ इन माटी में लथपथ बच्चों के लिये ही हैं। ये तो चमचमाते पत्थरों के बीच रहने वाले सजे-संवरे लोगों के लिये भी हैं लेकिन वे इसे मैला होना मानते हैं तो ये उनका दुर्भाग्य है।

लहरिया को बाहर जाते हुये राधिका ने देखा तो गुस्से से कीचड़ भरा तसला पटक दिया, कुछ कहती उससे पहले माधो को अपनी तरफ प्रश्नों भरी निगाहों से एकटक देखते हुये पाया तो पलटकर फिर काम में लग गई। माधो कुछ पूछने को हुआ तो उठकर चली गई।

राधिका के इस अजीब बर्ताव से माधो के मन में सवाल और गाढ़े हो गये थे। राधिका का ये रूप जो इतने सालों में कभी नहीं दिखा था आज अचानक क्यों?

इधर राधिका, घर के साथ-साथ अन्तर्मन में बरस रहे लावे से खुद को ढाँकने की कोशिश कर रही थी। बारिश रुक चुकी थी लेकिन कोठरी में चारों तरफ पानी ही पानी भर गया था। कंडे, लकड़ियाँ आधे गीले हो गये थे, फिसलन भी हो गई थी।

राधिका किचकंदे को समेटते हुए स्वयं को ही झिड़क रही थी- क्यों इतनी चिड़चिड़ी हो चली हूँ, मन की कौन सी ऐसी सख्त छटपटाहट है जो अपनों को ही झुलसाये डाल रही हूँ। इतना गुस्सा क्यों आ रहा है समझ नहीं आता? क्यों मन काबू में नहीं? अब कोई बादलों को मुट्ठियों में भींचकर बरसात तो रोक नहीं सकता? पर जो कोठी पर हुआ... वो रोका जा सकता था फिर क्यों.. सुनती रही और सुन ही लिया था तो उसकी तपिश से अपने ही घर को क्यों बारे डाल रही हूँ!

अपने छोर से आँसू पोंछ राधिका छपरे से बाहर आई तो लहरिया दोनों हाथ मट्टी में धसाये छपी बैठी थी। राधिका फिर तमतमा उठी- *यहाँ*

*बैठे-बैठे देख रहे हो कि बिटिया माटी में छपी बैठी है, ऐसा नहीं कि उठा लें, सब कछु मेरी जान को छोड़ दो बस।*

माधो ने राधिका की सुर्ख आँखों को देखा तो अपने प्रश्नों को नहीं रोक सका, उठकर राधिका के पास जाकर पूछा- *माटी ही तो है खेलने दे, और कोई नया खेल तो नहीं खेल रही जो इतनी नाराज है, आखिर मैं भी तो जानूँ कि बात क्या है? देख रहा हूँ कल जबसे बड़ी पुरखिन के घर से लौटी है, कुछ अलग ही रूप दिखा रही है? कभी दद्दा पर बरस पड़ती है, कभी मुझ पर और लहरिया को मारा भी है?*

राधिका ने कुछ देर माधो को डबडबाई आँखों से देखा और कहा- *कुछ नहीं हुआ, बस थक गई हूँ ऊपर से ये छपरा गिर पड़ा, सब पसर गया है इसलिये बस चिड़चिड़ापन छूट रहा है।*

माधो ने पूछा- *तो फिर लहरिया पर बात-बात पर क्यों गुस्सा कर रही है ऐसा तो कभी नहीं करती?*

राधिका ने कहा- *अरे कछु नहीं.. देखो तुम्हारी सोनचिरैया माटी में गड़ी बैठी है, उठाओ ठंड लग जायेगी, दद्दा को तो बुखार हो ही आया है!*

माधो, माथे पर बल की रेखायें उकेरता हुआ लहरिया के पास गया और पूछा- *तू मानती काहे नईं मना करने पे भी बार-बार माटी में गड़के बैठी जाती है, फिर तेरी अम्मा नाराज होती है, उठ यहाँ से।*

लहरिया ने हाथ मिट्टी में छपछपाते हुए कहा- *बाबू! चूल्हा बना रही हूँ, रोती बनाऊँगी।*

राधिका और माधो के चेहरे पर उदासी की सिलवटों पर आकाश के सफेद बादल सी क्षणिक तरंगे फैल गईं। जीवन का सार और संसार शायद ये बालपन ही है जो फूटे छपरों के आँसूओं में किलोरें कर लेता है। तकदीर के कांटों की भी क्या बिसात जो इन बाल किलकारियों को ठुमकने से रोक सके लेकिन उम्र का पेड़ जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे स्वयं मौन ओढ़े सारे दारुणों को समेटता ठिठका एक स्थान पर

खड़ा रहता है। कुछ देर के लिये माधो और राधिका की उम्र का पेड़ भी लहरिया की नाचती लहरों से लिपटने लगा था।

राधिका हँस पड़ी और बोली- *अच्छा ये रोटी किसे खिलाएगी तू?*

लहरिया अम्मा को हँसता देख बोली- *बाबू को खिलाऊँगी, तुम गुस्सा करती हो इसलिये तुम्हें नहीं दूँगी।*

राधिका- *अच्छा... तू बिटिया हमाई और रोटी बाबू को?*

गीली मिट्टी में हाथ छपछपाते हुये बोली- *नई बाबू की बिटिया हूँ।*

राधिका रूठने का नाटक करते हुए बोली- *ठीक है तो मैं घर से ही चली जाती हूँ, जब लहरिया बाबू की बिटिया है तो बस उन्हीं के साथ रहेगी, अपने साथ दद्दा को भी ले जाऊँगी।*

ये सुनकर लहरिया उठी और अम्मा के गले से लटक गई- *नई अम्मा की बिटिया है लहरिया, अम्मा नई जाएगी, दद्दा भी नई जायेंगे।*

सब के सब खिलखिलाकर हँस पड़े। लहरिया की चंचल लहरों के सुरों से उदासी की चादर पिघल चुकी थी। बारिश ने माटी को मुलायम कर दिया था तो पेड़ भी नहाये धोये से चमकते लग रहे थे। हवा में सर्दी सी हो चली थी।

राधिका ने लहरिया को दूसरे कपड़े पहनाये, छपरा साफ करके चूल्हा सिलगाकर तवा चढ़ाया और रोटी सेंकने बैठ गई। मन के अंगारों पर अब ठंडी राख जम गयी पर माधो के माथे पर प्रश्नों की लकीरें सीना ताने और बढ़ गई थीं। माधो कुछ देर छपरे के भीतर झाँकता रहा फिर अपनी फिक्र को पीछे धकेलता हुआ अपने चाक के आस-पास जमा हुए कीचड़ को बहोरने लगा लेकिन रहा ना गया तो चूल्हे के पास जाकर बैठ गया। राधिका के चेहरे पर भी क्रोध की रेखायें मिटी सी लग रहीं थीं। माधो उधेड़बुन में बैठा था पूछूँ कि ना पूछूँ?

राधिका बोल पड़ी- जानती हूँ क्यों बैठे हो? का बताऊँ तुम्हें किस्सा तो वही रोज का है, हम तुम सब सह जाते हैं, लेकिन बाल बच्चों का

किलपना सहन नहीं होती ऊपर से चारजनों के बीच में जब हकाले जायें तो वो हर एक नजर जैसे घाव पर तेजाब उड़ेलती सी लगती है।

राधिका ने मन में गाढ़ी हुई गाँठों को एक-एक करके माधो के सामने खोलना शुरू किया तो गाँठों की मरोड़ों से पीड़ा बह चली।

# बड़ी पुरखिन

बड़ी पुरखिन की कोठी, गाँव का आदि भी है और अन्त भी, सभी के पुरखे इस देहरी पर मस्तक नवाते आये थे इसलिये गाँव का हर घर इस देहरी पर झुकता है, वैसे कुछ परम्परा में झुकते, कुछ लालसा में। गाँव में अन्दर घुसते ही तालाब है, उसके दाहिनी तरफ से अन्दर की ओर गली जाती है। गली के दोनों तरफ कच्ची अधटूटी झोपड़ियाँ हैं और बिल्कुल आखिरी मोहरी पर है बड़ी पुरखिन की बड़ी सी कोठी।

कोठी क्या गढ़ी है, ऊँची-ऊँची कंगूरेदार अटरियाँ, बाहरी दरवाजा बीस बाइस फुट से कम न होगा, चार अच्छे लम्ब-धड़ंग आदमियों को तर-ऊपर खड़ा करो तब कहीं जाकर उसका छोर छू सकें। फाटक के भीतर बड़ा सा बाड़ा है जहाँ गाड़ियाँ, टैक्टर, खेती-किसानी के सामान से लेकर तमाम मशीनें एक कोने में रखी रहती हैं। फाटक के बिल्कुल सामने एक गलियारा है, यहाँ के किवाड़ इतने छोटे हैं कि बिना झुके चार फुटिया भी प्रवेश ना कर सके। बखरी इतनी है कि किसी बूढ़े को एक चक्कर लगाने को कह दिया जाये तो मान के चलिये स्वर्ग सिधार जाये। बखरी के चारों ओर चौड़े-चौड़े बरामदे, बरामदों के किनारे नीचे ऊपर दो मंजिला पसरी हुई अटारियाँ हैं जिन्हें आजकल के स्टैंडर्ड के हिसाब से सजा-सँवार दिया गया है, पर बड़ी पुरखिन अब भी उन्हें अटरिया ही कहती हैं।

बखरी का दूसरा दरवाजा पीछे की ओर खुलता है जहाँ गाय भैसें रहती हैं। जानवरों के भोजन के साथ ही खेत खलिहान का नांज-पानी यहीं

रखा जाता है। कुल मिलाकर कोठी ऐसी किलेनुमा है कि साफ-सफाई रंग-रोगन का मामला जब आता है तो महीने-दो महीने भर से कम समय नहीं लगता।

बड़ी पुरखिन की पोती रचना का ब्याह है, कोठी में रिश्तेदारों का जमघट लगने वाला है। उस पर बारात भी बड़े शहर से आनी है। पूरे गाँव में उत्साह के साथ भय भी है कि कहीं कुछ ऊँच-नीच ना रह जाये। आखिर शहर के लोग आ रहे हैं, कुछ कमी रह गई तो कोठी तो छोड़ो पूरे टोले की नाक-मूँछ चली जायेगी। फिर गाँव के पास एक नाक-मूँछ ही तो होती है जो छाती ताने किसी के भी सामने खड़ी हो जाती है। यही ना रही तो फिर बचेगा क्या! अब नाक-मूँछ का सवाल है तो देहात के जानवर भी अपना पूरा योगदान देते हैं। देहात के चौहद्दे की विशेषता भी तो यही होती है कि यदि कभी शहर के सामने गाँव के मान का सवाल हो तो सब एकजुट हो जाते हैं।

जन, बच्चे से लेकर बड़े बुजुर्ग तक लगभग सारा का सारा कुरमा काम-काज में लगा था। इस गढ़ीनुमा घर को ब्याह के लिये रंग-बिरंगी पतंगियों, बल्बों से सजाया जा रहा था। भट्टियों पर बर्तन चढ़ने शुरू हो गये थे। सूर्य की किरणें कुछ तीखी, कुछ नर्म सी थीं। किरणों की ये रोशनी चमकीली पतंगियों पर जैसे-जैसे पड़ रही थी वैसे ही एक चकाचौंध रोशनी चारों तरफ फैल जाती। हवा से उड़ती इन पतंगियों की खड़खड़ाहट पक्षियों के सुरों में घुलकर विघ्न पैदा कर रही थी। ऐसा लगता था जैसे इस शोर से चिढ़कर कौवे, गौरैयाँ, कोयलें, टिटीहरियाँ और अधिक हल्ला कर रही हैं।

आकाश पर छाई बदरिया धुलकर सफेद हो उठी थी। पश्चिम में प्रकृति और पुरुष जैसे एकरूप हो गये हों। लगता था जैसे कोई दुल्हन उत्तर में चमकते सतरंगी इन्द्रधनुष का कंगन पहने हथेलियों से घूँघट काढ़े अपने पिया को निहार रही हो। इसी सैन्दुरी रंग में जैसे पुरुष कोई नारंगी बाना पहने, सतरंगी धनुष हाथों में उठाये दुल्हन के आल्ते रंगे पाँवों के

साथ गृहप्रवेश कर रहे हों। दुल्हन के पैरों से छिटककर धान के श्वेत-श्वेत कनूके आकाश में बिखरते चले जाते हों।

कोठी पर मण्डप की तैयारी चल रही थीं। दो दिन बाद मण्डप गड़ना था। घर रिश्तेदारों से भरना शुरू हो गया था। चूल्हे पर रोटी बनाती महिलायें गारीं गा रहीं थीं, बीच-बीच में कभी रो पड़तीं, कभी खिलखिला पड़तीं। एक गीत खत्म तो दूसरे की पूछताछ शुरू हो जाती- 'काये जिज्जी! बो कैसी गारी है हाथ बिटिया के मण्डप तरें पीहर करे?'

दूसरी रुटियारी कहती- 'हाँ... हाँ... बोई गा लो बिन्ना, बहुतई अच्छी गारी है!' और फिर एक तान छिड़ जाती -

*'हाथ बिटिया के मण्डप तरें,*
*पीयर करे मात पिता रो-रो मरे।*
*आये याद हमें बा दिन की,*
*बिनय करी माता देविन की,*
*किरपा हो गई हमपे जिनकी,*
*उनकी मरजी सें हाड़ मिले मुठी भरे। मात पिता...'*

भावभरी गारी सुनकर बखरी में बैठे लोगों की आँखों में विदाई के ख्याल से आँसुओं की कोंपलें उग आईं थीं। बड़ी पुरखिन ने अपने सफेद छोर को मुख पर फेरा और बाहर बरामदे में आकर बैठ गईं।

फक्क सफेद बाल, चेहरे पर खाल की दोहरी तहें हैं, रंग भूरा, नाक में बड़ी सी सोने की पुंगरिया, हाथों में पाव भर की चाँदी की चूड़ियाँ, पाँव में पाव-पाव भर के मोटे-मोटे पैजना, छींटदार हरी किनारी की सफेद धोती। उम्र अन्तिम छोर पर है लेकिन ऐसी कड़कती आवाज कि बड़े-बड़े थर्रा उठें। घर तो ठीक ही है चार गाँवों तक बड़ी पुरखिन का दबदबा है।, मजाल जो कोई बात टाल जाये, मक्खी की नाक पे बैठना तो छोड़ो इतनी हिम्मत नहीं हो पाती कि उनके सामने भन्ना भी ले, धोखे से कभी उसे टहलना हो तो सन्नाटा ओढ़े निकल लेती है।

बाहर के बरामदे में तखत पर बैठी बड़ी पुरखिन, सबको अपने-अपने काम की हिदायतें दे रहीं थीं, सामने से मड़वा गढ़ने वाला रम्मू बढ़ई आता दिखाई दिया, उन्होंने एक जोर की आवाज लगाई-

*'क्यों रे रम्मू! तू आज तक मड़वा लेकर नहीं आया, दो दिन बाद ब्याह के कामदंद शुरू हो जायेंगे, तब तू पसर जाएगा'।*

रम्मू ने राम-राम करके प्रणाम किया और कहा- 'अरे पुरखिन! कौन बिदेश में मड़वा गड़ना है, आज रात बना लूँगा, लकड़िया गीली थी इसलिये देर हो गई'।

पुरखिन ने पान मुँह में दबाते हुए कहा- 'तू हमें नीति ना पढ़ा, तेरी तो हमेशा लकड़ियाँ गीली ही रहती हैं, जानता है बड़े-बड़े लोग आ रहे हैं बरात में, मड़वा की चटक चाँदनी ऐसी हो कि उन शहरियों की आँखें रह जायें, समझे! नहीं तो दस रुपल्ली नेग देकर निपटा दूँगी, ना ही फिर दुबारा तुझसे काम लूँगी, समझ लेना!

रम्मू- अरे पुरखिन! कैसी बात कर दी, पीढ़ियन सें हम तुम्हारो काम करत आ रहे हैं, कभऊँ शिकायत मिली का? और हम तो सेवक हैं, तुमाये आदेश की अवहेलना कैसे कर सकत? मड़वा तो ऐसा बनाऊँगा कि निगाह ना हट पायेगी बरातियन की, जोर-जोर से पूछेंगे कि मड़वा किन्ने गढ़ो!

बड़ी पुरखिन- हओ! ठीक है, ज्यादा बातें ना बना जा यहाँ से, देर हुई तो मोसे बुरा कोई ना होगा।

इतना कहते-कहते बड़ी पुरखिन ने अपनी बहू को आवाज दी- अरी ओ रज्जन! मेहर की गगरियाँ आ गई की नहीं?

रज्जन कमरे में बिटिया की देनी दायजे के लिये दाल, चावल, आटा सबकुछ भर-भरकर रख रही थी। रज्जन ने जैसे ही बड़ी पुरखिन की आवाज सुनी तो जीभ दाँतों में दबा ली- ओ दईया! गगरी के लिये तो माधो को कहा ही नहीं। मोरी मइया! अब पुरखिन को पता चलेगा तो

सबरे पुरखा धरती पर उतार लायेंगीं, अब का कहूँ? रज्जन बहानों की पोटली खंगाल ही रही थी कि बड़ी पुरखिन की आवाज फिर कड़क उठी– जानती हूँ भूल गई होगी। एक काम जिम्मेदारी से नहीं करती और बिटिया का ब्याह ठाने बैठी है। महतारी–बाप ने एक गुन लच्छन नईं दिये हमाई लक्षमी को बस मेहरचौरा करवा लो। मैं न रहूँ तो ना जाने का हो ई बखरी का। सब अपनी मन मरजी के हैं। जिन मिहिरियन से घर–गृहस्थी चलती है उनकी तो सजनौटी ही पूरी नईं हो रही है। राम जाने! मुझ जैसा रूप दिया होता तो पता नहीं आसमान छेदतीं कि धरती धकेलतीं।

उन्होंने पास काम कर रहे लड़के को बुलाया– अरे ओ फुल्ले! माधो के यहाँ दौड़ जा, राधिका को बुलाके ला उससे कहना जितनी गगरियाँ हों लेती आये और बीस गगरे मड़वा से पहले दे जाये।

फुल्ले– हाँ बड़ी पुरखिन! कहकर फर्लांगें भरता सीधे माधो की देहरी पर जाकर ठहरा– *माधो कक्का ओ कक्का!*

माधो बादलों की उन्हार देखकर छपरे पर चढ़ा झीने हुए छपरे के चाकों को कुछ फूस और टूटे–फूटे बाँसों से ढँकने में लगा था, उसने ऊपर से ही आवाज दी– अरे फुल्ले! आज यहाँ की गली कैसे भूल गया रे तू, यहीं आ जा बखरी में।

फुल्ले साँसें भरते हुआ बोला– कक्का! बड़ी पुरखिन ने चाची को बुलाया है, कहा है जितनी गगरियाँ हों लेती आये और बीस मड़वा से पहले दे देने को बोला है।

माधो ने राधिका को आवाज लगाई– *लहरिया की अम्मा... ओ लहरिया की अम्मा! देख तो बड़ी पुरखिन ने बुलाया है।*

राधिका लहरिया को गोद में लिये बाहर आई– *ओ महामाई! का कहा बड़ी पुरखिन ने बुलाया है? अब आई आफत, अब का करेंगे? गगरियाँ तो बनाई ही नहीं, वो इकहत्तर बातें सुनायेंगी।*

माधो ने कहा- *नहीं बनी तो का कर सकते हैं, बता देना जितनी होंगी दे देंगे।*

तुम तो ऐसे कह रहे जैसे हमने कहा और उनने मान लिया, हम कौनऊ उनके समधी तो लगत नईयाँ, परजा हैं परजा।

*अरे तो अब का किया जा सकता है, आकाश के पानी को चुल्लू में भर नहीं लेते, चार दिन से इन बादलों के उत्पात में माटी कैसी हुई है, तुझे पता नहीं है का? अब जो कहेंगी सो सुनना तो है ही।*

फुल्ले संवाद काटते हुए बोला- *चाची! बताओ तो का कहूँ बड़ी पुरखिन से?*

माधो और राधिका ने एक-दूसरे को देखा फिर माधो कुछ सोचते हुये बोला- *तू जा अभी, साथ में ये चार गगरियाँ ले जा, बाकी चाची पीछे से लाती हैं, कहना अभी इतनी ही हैं, बाकी जल्दी बना दूँगा।*

फुल्ले गगरियाँ उठाये चला गया। माधो ने हाथ धोते हुये कहा- *तू भी गजब करती है, जब मैंने कहा था कि चली जाना पूछ आना कितने बरतन कैसे बरतन चाहिये तो क्यों नहीं गई? अब नौतपा सी भूँज डारेंगी बड़ी पुरखिन।*

राधिका बोली- *का करूँ बखत ही नहीं मिला, दद्दा बीमार हो गये, लहरिया को अकेले छोड़ देती उनके पास तो उनकी छाती पे कूद-कूद के दम निकाल देती। फिर एक बात जे भी रही कि उनकी कोई खबर ना आई तो मुझे लगा बरात शहर से आती है तो हमारी गगरियाँ कहाँ रुचेंगी, मँगा ली होंगी शहर से, आखिर सबकुछ तो बाहर से आया ही है, घिटोई जिज्जी, हरदेई सबकी सब लुगाईयाँ भी यही कहती थीं, सो मैं भी निश्चिन्त हो गई थी।*

माधो कुछ नरम हुआ- *ठीक है जिसने जो कहा सो कहा, पर हमें तो अपना कर्तब्ब ना भूलना चइये, अब जाने किसने-किसने का-का कान*

*ना भरे होंगे डुकरिया के, और बो घिटोई जिसे तू बड़ी अपनी सहेली बनाये फिरती है बो तो चौबीस घंटे यही करती है। आजकल तो उसका डेरा वहीं जमा होगा।*

राधिका कुछ बुदबुदाई– *अरे तुम तो ऐसे कह रहे जैसे मैं उसको करेजे में जड़े हूँ। अब कोई आके बैठेगा, अपना सुख-दुख कहेगा तो का उसे लट्ठ मार भगा तो नहीं दूँगी। तुम भले कर सकते हो तो कर लिया करो मैं तो दुसमन के साथ भी नई कर सकती।*

माधो– *जे सब छोड़, गलती तो हो ही गई, ना कामदार के नाते गाँवदारी के नाते से अवसर-काज में पूछना-जाँचना तो हमारा धरम है, पर अब जो हुआ सो हुआ, अब तू तुरन्त गगरियाँ लेकर चली जा।*

राधिका ने लहरिया को गोद से उतारा और गगरियाँ समेटते हुए बुदबुदाने लगी– *पहले से खबर करवा देतीं कि इतनी गगरियाँ चाहिये, अब सीधे बीस कह दीं, अब ना जाने कब सूखेंगी और कब पकेंगी, ऊपर से जे बादर अब तक छाती ताने खड़ा है। दुनिया में दूसरे की तो बिल्कुल बकत नईयाँ, अब प्रान दो.. चाहे जो करो.. गगरियाँ तो चाहिये ही चाहिये... नहीं तो माटी ना देंगी... इधर कुआँ उधर खाई!*

माधो ने माथे की रेखाओं की गठरियाँ बनाते हुए कहा– *क्यों बड़बड़ कर रही है, कुछ नया तो है नहीं, गाँवदारी निभानी नई पड़ती का? गलती हमारी है जब पता था ब्याह है कोठी में तो तैयारी कर लेनी थी।*

राधिका परेशान होकर धीरे से बोली– *का करूँ अब जाने का कहेंगी? डर लग रहा मुझे तो, अब जाऊँ तो आफत ना जाऊँ तो आफत।*

माधो हँसा और बोला–

> *डरती काहे है, बड़ी बूढ़ी हैं दो बातें बोल देंगीं तो का हुआ, हम छोटे आदमी इतना तो रोज सुनते हैं। अब दुनियाभर के पिरवचनन से कुछ ना होगा, काम करना तो पड़ेगा, उनकी खदनिया से तो हमारी रोजी चल रही, सोच के देख अगर ना*

*दें माटी तो का कर लेंगे, कहाँ किससे गिगियाते फिरेंगे। ऊपर से उन्हीं के करजदार हैं। भलमानस हैं जो कभी देहरी पे तकाजा ना किया जब वो इतना करते हैं तो अपना गरब लेके क्यों फिरें हम। माना बड़ी पुरखिन जबान की खरी हैं लेकिन दाऊ तो कितना परेम करे हैं गाँवभर से, उनका मान तो हमें रखना चाहिये ना, जा तू अभी ये गगरी दे आ और जल्दी आ जाना, कहना और गगरियाँ बनाना है।*

राधिका ने कहा- *यही तो है कि जीन-जोरिया उनसे ऐसी बंधी कि छूट नई सकती। अच्छा सुनो! लहरिया जायेगी तो यहाँ-वहाँ दौड़ेगी फिर और नाराज होंगी, मौड़ी को यहीं राख लेना। मैं चुपचाप निकल जाऊँगी।*

माधो ने हामी तो भर दी थी लेकिन लहरिया कब राधिका के पीछे-पीछे दबे पाँव चली गई, ना तो माधो देख पाया, ना ही दद्दा को ही आहट हुई।

बड़ी पुरखिन तखत पर मसनद से टिकी बैठी थीं, राधिका को आते देखा तो बोलीं-

*काये री! तुझे अपने मन से जे भी नहीं लगा कि बिटिया का ब्याह है, थोड़ी बहुत काम समेटवा आऊँ? तुम आजकल की लुगाईयों का गाँवदारी से कोई लेना देना ही ना रहा, हमारे जमाने में तो गाँव की बिटिया ब्याह है तो मानो पूरा-पूरा मौजा काम में लगा रहता था। बिटिया के महतारी बाप को तो पता ही ना चल पाता था कि ब्याह कैसे हो गया... और आज देखो इस उम्मर में काम कर-करके खिजे जाते हैं लेकिन गाँव की चार लुगाईयाँ नई दिखाई देतीं बखरी में।*

राधिका ने बड़ी पुरखिन के पाँव छुये और फुसफुसाते हुए बोली- *का करूँ पुरखिन, दद्दा बीमार हैं और तुम्हारी नातिन के कारण घरी भर को कहीं नहीं निकर पाती हूँ। बड़ी मुश्किल से लुकछिप के आ पाई हूँ।*

बड़ी पुरखिन- *कहाँ छोड़ आई मौड़ी तो तेरे पीछे खड़ी है, अरे दईया! देख तो कैसी माटी-कूरा से सनी है।*

राधिका ने पलटकर देखा तो मुँह में हाथ दिये, लहरिया सिर से पाँव तक मिट्टी से सनी पीछे खड़ी थी। राधिका दाँत भींचते हुए बोली– *तू यहाँ कैसे आई? मुँह खोल माटी खाई है तूने?*

अम्मा की सख्त आवाज सुन लहरिया के चेहरे पर पसरी मुस्कान पल भर में जैसे भय खाकर छू हो गई। मुँह खोलकर दिखाते हुये लहरिया बुदबुदाई– *देखो आ... आ... अम्मा, हमने माटी नई खाई।*

बड़ी पुरखिन माँ बेटी का संवाद बीच में काटते हुए बोलीं– *अपना ये स्वांग घर में करना, अभी तो ये बता कितनी गगरी लाई है?*

राधिका ने कहा– *अभी तो बस आठ हैं, और जितनी बना पायेंगे दो दिन में, उतनी...*

बड़ी पुरखिन ने झिड़कते हुये कहा– *जितनी का? बीस तो चाहिये और छह बड़े मटके भी चइये।*

राधिका कुछ मनुहार के सुर में बोली– *बादल ऐसे तने हैं ऐसे में इतनी जल्दी पुरखिन कैसे हो पायेगा?*

बड़ी पुरखिन ने धोती का छोर झटकते हुए कहा– *ब्याह है इतना तो पता था न तुझे? कि न्यौतार भेजती या तू बासन देना ही नहीं चाहती तो वो भी बता दे।*

राधिका– *पुरखिन! झूठी ना कहूँगी, तुमाई कोई खबर ना आई तो हमें लगा कि इत्ती बड़ी बरात में गगरियों का कौन काम!*

राधिका के इस उत्तर से बड़ी पुरखिन और बिदक गई– *ना बनाना हो तो बता... हम और से मँगा लेंगे... कौन बाजार उटक गये पर तू अब सोच ले कभी तेरे यहाँ से एक बासन ना आयेगा।*

राधिका ने हाथ जोड़े और कहा– *अरे नाराज ना हो पुरखिन! हम बना देंगे, तुम्हें छोड़ कहाँ जायेंगे, अभी जाती हूँ सबेरे आ जाऊँगी।*

बड़ी पुरखिन ने कहा– *अभी आई और चलने को तैयार हो गई, जाके तनक बखरी लिपवा दे।*

राधिका ने अनुनय करते हुए कहा- *पुरखिन पाँव परती हूँ अभी जान दो! लहरिया के बाबू अकेले इतनी गगरियाँ ना बना पायेंगे। उनकी मदद करा दूँ तो मड़वा तक हो पायेगा, अगर बुरो न मानो तो एक अरज और करूँ, अगर कछु कंडा-लकड़ियाँ हों तो दे दो, ई झिर में हमारे सब भींज गये।*

बड़ी पुरखिन बिदकते हुये बोलीं- *ल्यो अब एक और बहानो सुन लो, क्यों री साफ-साफ काहे नहीं कह देती कि बासन ना दे पाऊँगी, जब माटी हम दें, कंडा-लकड़ियाँ भी हम दें तो तेरी का जरूरत फिर?*

*ऐसो ना कहो पुरखिन, अब मैं का बताऊँ? छपरा में हाथभर की फांट है, हवा-पानी से दिन-दिन भसक रहा है। बाँस अलग सड़ गये हैं, डर लगता है कि पानी ऐसई तना रहा तो छपरा गिर ना परे। जितना ईंधन बचा रखा था, ई पानी में सब सितया गया। अब बरसात पे तो महामाई को जोर है!*

बड़ी पुरखिन ने मुँह सिकोड़ते हुए कहा- *ठीक है... ठीक है... भीतर के तो चूल्हों के लिये रखे हैं, वहाँ ढुरऊ बखरी वाली कुठरिया से भर लेना कंडा, पर गगरी परसों सबेरे तक हर हाल में पहुँच जाना चाहिये। वो भी ऐसी रंग-बिरंगी कि बराती देखकर खुश हो जायें।*

राधिका बोली- *बिल्कुल शिकायत ना मिलेगी, ऐसे रंग भरूँगी कि सब दीदें फारे देखते रह जायेंगे।*

इसी बीच लहरिया ढोलक की आवाज सुनकर भीतर के कमरे की तरफ दौड़ गई। बड़ी पुरखिन की निगाह उस पर पड़ी तो उन्होंने एक जोरदार आवाज लगाई- *ऐ... ऐ... मौड़ी रुक! कहाँ को घुसी चली जाती है?*

लहरिया देहरी पर ही ठिठक गई। पलटकर बड़ी पुरखिन की तरफ सिसरियानी सी देखने लगी, राधिका ने झपटकर उसे पकड़ा।

बड़ी पुरखिन तड़तड़ाई- *ये गटा काढ़े का देखती है हमें? जहाँ देखो मुँह उठाये ना घुस जाया कर। राधिका! तुझसे हजार बार कहा है अपनी ई छछूंदरी को एक तो यहाँ लिबाके ना आया कर और जो लैके आई है*

*तो सम्हार के राख। हमें बिल्कुल नईं भाता कि कोऊ बाहरी हमारे घर-दोर में घुसे।*

बड़ी पुरखिन के चिल्लाने की आवाज सुनकर सारे काम करने वाले, रिश्तेदार, औरतें बच्चे बाहर के बरामदे में आ गये, सब टकटकी लगाये राधिका और लहरिया को देख रहे थे। सबकी आँखें जैसे एक-एक करके राधिका के तन पर आकर गड़ रही थीं। राधिका अपने आस-पास इतने सारे लोगों को देखकर सिहर सी उठी, उसने अपना घूँघट खींचा और हाथ जोड़कर बोली- *गलती हो गई! बच्चा है... का जाने कहाँ घुसना है कहाँ नईं... अबसे ना करेगी।*

राधिका उत्तर तो सहजता से दे रही थी लेकिन बड़ी पुरखिन लगातार बड़बड़ाती जा रही थीं। राधिका ने अपने गुस्से पर बाँध लगाने का प्रयास किया लेकिन बड़ी पुरखिन के शब्दों का वेग इतना था कि झटके में टूट गया। उसने लहरिया की पीठ पर एक जोर का हाथ दे मारा। उसकी कलाई पकड़ी और बाहर निकल गई।

लहरिया जोर-जोर से रोने लगी थी, अम्मा का हाथ झटककर भागने को हुई तो राधिका ने उसे एक और तमाचा मार दिया फिर गोद में लेकर चिल्लाई- *चुप बिल्कुल! अब रत्तीभर भी आवाज निकली तो टिटुआ दबा दूँगी। हजार बार कहा पीछे ना आया कर लेकिन ढिठाई नहीं छोड़ती।*

लहरिया सुर दबाये सिसक रही थी, उसकी सिसकियों से राधिका के मन की अग्नि भी कुछ मन्दी हुई लेकिन रह-रहकर इस बार बड़ी पुरखिन का यूँ सबके सामने झिड़कना उसे बहुत बुरा लगा था।

*'जब देखो तब मौड़ी को झिड़कती रहतीं हैं। हमेशा जेई सोचके रह जाती हूँ कि चलो बड़ी बूढ़ी हैं लेकिन आज तो जे भी ना देखा कि पूरी बखरी रिश्तेदारन से भरी है, चार गाँव के कामदार हैं वहाँ। अरे बाल बच्चन में का भेद? कौन उसके घुसने से... घर गंगा से धोना पड़ जाता कि धरती खरच हो जाती कि भीतें धसक जातीं!'* राधिका गुरगुराते हुए

सुबकती लहरिया को कांधे से चिपकाये घर आ गई। उसका लाल मुँह देख माधो हड़बड़ाकर उठा और माटी भरे हाथों से लहरिया को गोद में ले लिया– *का हुआ, ऐसे क्यों रो रही है मौड़ी?*

राधिका बिना किसी उत्तर के पाँव धोने लगी, तो माधो ने फिर पूछा– *अरे बिचित्र है तू! बोलती क्यों नहीं, लहरिया कैसे रोती है इतना, कुछ बक्कुरेगी।*

राधिका ने इतना सुना नहीं कि चिल्ला पड़ी– *तुमसे कह गई थी कि बिटिया को सम्हालना, उसे वहाँ ना ले जाऊँगी।*

माधो– *तो ये तो पीपरा तरें खेल रही थी?*

राधिका– *हाँ बड़ी सरई है तुम्हारी लड़िलिया?*

माधो– *चली गई थी क्या संग में?*

राधिका धीरे से फुसफुसाते हुए भीतर चली गई–

> *का बता दूँ तुम्हें... तुम भी गुर्राते मुझी पे सवार होगे। जब चारजनों के सामने अपनी आत्मा सिसरियानी सी चिपकी खड़ी हो, कोई बेबात उसपर भौंहे ताने नर्राता जाता हो और हम कुछ ना कर सकें तो कैसा कलेजा फूकता है जे तो बोई जाने जिस पे बीते। हमें तो कोई चार जूता मार ले तब भी उफ्फ ना करें पर अपनी कूँख जाई के लिये सबको बुरा लगता है इसमें का अमीर का गरीब? और का जनम की पीरें भी येई अमीरी-गरीबी देखके आती हैं?*

माधो ने आगे कुछ नहीं पूछा। लहरिया को पुचकारते हुए गोद में लिया तो लहरिया रोते-रोते सो चुकी थी पर राधिका का ऐसा गुस्सा आज से पहले कभी नहीं देखा था मन बेचैनी ओढ़े यहाँ से वहाँ भाग रहा था लेकिन भागकर करता भी क्या, इस समय तो मन पर हंटर चलाकर उसे चाक पर घुमाने का वक्त था।

# मनुहारें

अग्नि की लपटें जब तक तमतमाकर बरस नहीं लेतीं तब तक शान्त नहीं होतीं। माधो से मन की पीड़ा कहकर राधिका के अंतस् का ताप भी सिरा चला था। माधो ने उसे ढाँढस बंधाते हुए कहा–

> *जैसे तू अपनी सन्तान को डाँटती डपटती है, समझ ले उन्होंने भी वही किया। जितना ज्यादा उस घाव पर विचार करेगी वो उतनी ही पीड़ा देगा। जिस परिस्थिति में मनुष्य कुछ नहीं कर सकता तो उसे अपने धैर्य और उदारता के अँगूठे तले दबा देना चाहिये।*

राधिका अब शान्त थी, मन से भार हल्का हो गया था। सच ही तो है, जीवन जितना भी कंकरीला होता जाता है, मनुष्य अपनी सहिष्णुता का आकाश, उतना ही बड़ा कर लेता है लेकिन फिर भी शब्दों की चुभन, किसी जिन्दा घाव को रेतने सी हुआ करती है और जब विषैले शब्दों की छैनी, आँखों की भीड़ के बीच में चलाई जाती है तो मनुष्य के हृदय को लहूलुहान कर ही डालती है फिर उसकी सहनशीलता का आकाश, सिकुड़ने लगता है। बड़ी पुरखिन के कहे शब्द, राधिका के लिये भले ही नये नहीं थे किन्तु आज उस कोलाहल के बीच उसको और उसकी बच्ची को घूरती आँखें ऐसी ही चुभी थीं मानों एक साथ सैकड़ों आरियाँ चलाई जा रही हों।

रात्रि और भोर का सन्धिकाल हो चला था। चन्द्रमा अभी डूबा नहीं था लेकिन किरणों की लालिमा आकाश पर जम्हाई लेती बढ़ी आ रही थी।

राधिका उठने को हुई तो लहरिया की साँसें अब भी सहमी सी चल रही थीं। सोते-सोते चौंक रही थी, राधिका ने उसको अपनी छाती से अलगकर करवट दिलायी तो लहरिया ने अम्मा का आँचल कसकर पकड़ लिया। करुण आप्त-हृदय को जब कोई अपना छूता है तो वह रो पड़ता है। लहरिया की छुअन उसे पिघला रही थी, आँखों से नर्म बूँदें ऐसे टपकने लगीं मानों सूर्य की तपिश से टपककर अपना अस्तित्व खोती ओस की बूँदे हों। मन कराह उठा-

*'ये दुनियादारी इसे फटकारती है, हकालती है, उसपर महतारी होकर भी अपनी जायी को कलेजे से लगाने के स्थान पर, मैं अपनी पीड़ा की तपिश भी उसी पर उड़ेल देती हूँ, करूँ भी क्या' जब किसी पर बस नहीं चलता तो मनुष्य की पीड़ा का चीत्कार क्रोध बनकर किसी अपने पर ही बरसता है।*

राधिका ने उसके माथे पर हाथ फेरा चूमा और उसकी नन्हीं-नन्हीं उंगलियों में उलझे आँचल को धीरे से छुड़ाकर उठ बैठी। लहरिया भी कुनमुनाकर उठ बैठी और ठुनकते हुए अम्मा... अम्मा... करने लगी। राधिका ने उसे पुचकारकर उठाया और माधो की गोद में देकर अपने कामों में लग गई। लहरिया का रोना बढ़ा तो माधो अपने कांधे पर बैठाकर गाते हुए पूरी बखरी में यहाँ-वहाँ नाचने लगा-

*हूक्कू... हूक्कू... पालकी, जय कन्हैया लाल की,*
*रतन कली सी सोनचिरैया, दूध-मलाई मेवा खावे।*

जतन सफल रहा लहरिया भी खिलखिलाकर गाने लगी -

*उक्कू... उक्कू.... पालकी जै कनैया लाल की।*
*रतनकली छी सोनचिरैया, दूध-मलाई मेवा खावे।*

दोनों बाप बेटी खिलखिलाते पूरी बखरीभर में नाचे फिर रहे थे। सूरज अब पूरा आकाश पर चढ़ आया था। चबूतरे को लीपते हुये राधिका ने चार बार माधो को बाजार जाने के लिये कहा लेकिन राधिका को अनसुना कर माधो लहरिया के साथ अठखेलियों में मस्त था।

अबकि राधिका कुछ कड़क होकर बोली– *आधी छोड़, पूरी को धावे, आधी मिले ना पूरी पावे, दूध, मलाई, मेवा के सपने देखत–देखत सूखी रोटी से भी हाथ धो बैठोगे। हाथ–पाँव ई लाढ़–लढ़ैती से निकार के माटी में डुबाओ नहीं तो रोटी के लिये भी दाढ़ें तरस जायेंगी। अब ये नाटक नौटंकी बन्द करो और रंग रोगन ले आओ कुछ। देरी हुई तो ब्याह में बासन कैसे पहुँचायेंगे? फिर सुनना डुकरिया की इकहत्तर बातें।*

राधिका को नाराज होता देख माधो ठहरकर बोला– *हाँ... हाँ... ठीक है सब हो जायेगा!*

> *तुम तो हाँ... हाँ... कह देते हो बाकी दुनिया की बुराई मेरी खोपड़ी पे नाचती है... तुम सुनते तो हो नहीं कभी उनकी करई बुरई बातें... सो कछु हरओ गरओ लगत नईंया... अबकि मैं बिल्कुल ना हिरकूँगी... जब देखो तब मुझे अगवानी को भेज देते हो।*

माधो लहरिया को पीठ से उतारते हुए बोला– *अरे ठीक है, ना जाना तू, क्यों सबेरे से मन को कुढ़ाये डाल रही है।*

लहरिया बाबू के कांधे पर और कसकर चिपक रही और ठुनकते हुये बोली– *बाबू! हमें नईं उतरना, हम भी बजार चलूँगी?*

माधो ने लहरिया को गोद में बैठाया और कहा– *नहीं बेटा! बजार में बहुत भीड़ होती है, तू खो गई तो? अच्छा अपनी पुत्तो के लिये क्या लायेंगे... बता तो?*

राधिका बोली– *यही कह–कहकर सिर पे चढ़ाये हो, कल आकाश की तरईयाँ माँगेगी तो का नोंच के लाओगे? अपनी चदरिया तो छोड़ो कथरियाँ देखके बात करना चाहिये।*

*जब तरईयाँ माँगेगी तब सोचेंगे...* माधो ने लहरिया को चूमते हुये कहा।

राधिका जवाब देते हुये कहा–

> *बाल–बच्चों की इच्छा को उतना सरकने दो जितनी आपकी*

*बखरी हो। हाथ–पाँव फटकारना जादा सिखाया तो जो ख्वाहिशें हैं इनके पैर बहुत जल्दी उगते हैं और फिर दोगुनी तेजी से गदबद लगाती हैं। जब वे पूरी ना होंगीं तो हमारे लिये तो तसइया होगी ही उसके खुद के लिये दुःख का कारण बन जायेगा। जब मन की हत्या की जाती है तो जीना बहुत मुश्किल हो जाता है इसलिये कहती हूँ... जोन माटी के गड़े हैं... बच्चा को उतनई बताओ।*

*जाने का हो गया है तुझे? तनक–तनक सी बात पे कितना गुनती है, अरे राईभरी मौड़ी है कोई सोने मोहरें तो माँगेगी नहीं और माँगेगी तो माँगेगी–* अबकि माधो झल्ला पड़ा।

राधिका भी तुनककर बोली– *जिंदगी में किस–किस जतन से एक–एक साँस बचाई है ये बचाने वाला जानता है। जिसने खर्च की हैं वो तो बस मुँह लटकाकर बैठ जाता है। जुद्ध तो जोद्धा ही करता है... वजह तो बस हाथ मीड़ती है।*

राधिका के इस जवाब का उसके पास कोई काट नहीं था। होता भी क्या अपने जीवन को इस मोड़पर डालने में कहीं ना कहीं उसी का तो हाथ था। आँखों में पश्चाताप उभर आया था। राधिका की उसपर टिकी नजरों में वह अधिक देर तक नहीं झाँक सका और चेहरे को घुटनों में गड़ाये चबूतरे पर बैठ गया। बखरी भर में दौड़ लगाती लहरिया, बाबू के पास ठहरी और उनकी ठोढ़ी को अपनी नन्ही हथेलियों में भरकर बोली– *अच्छा....तो फिर हमाये लिये दो चिज्जू लाना, दो पुत्तो और छ्ज्जन जैसी बन्नूक और गोलमिठाई और... और... बाबू का लाओगे?*

माधो ने उसकी इस फरमाइश का बस एक बोझिल सी हँसी के साथ उत्तर दिया– *सब ले आयेंगे बेटा!*

लहरिया बाबू की गोद में घुसकर उनके चेहरे को कुछ देर ताकते हुये बोली– *बाबू! रो रये हो, अम्मा तुमें भी मारी है?*

माधो मुस्कुराया– *नहीं हमारी रानी बिटिया, बाबू कभी नई रोते, अब जा तो तू खेल... बाबू को बजार जाना है... तेरी सारी चिज्जू भी लानी है।*

लहरिया गोद से कूदकर बाहर की तरफ चली गई। माधो के मन पर आज सालों बाद राधिका ने ऐसे तीर से वार किया था। मन उलझ रहा था कि सुलझ रहा था माधो को कुछ समझ नहीं आया। आखिर आज इतने सालों बाद राधिका ने ये उलाहना दी है। ठीक है जो किया मैंने उसके लिये दोषी हूँ पर अब तो वो दोष मिटाया नहीं जा सकता, खुद भी तो यही कहा करती थी पर आज उसके मुँह से ऐसे शब्द सुनना सहज तो नहीं!

आज फिर उन भूलों की टीस उसे खरोचने लगी थी। माधो धरती में ऐसे नजरें गड़ाये बैठा था जैसे उसका गुजरा वक्त अगर इस धरती में गड़ा हुआ अभी कहीं मिल जाये तो उसको नोंचकर खुद से निकाल फेंकेगा पर समय और साँसें बस आगे जाती हैं लेकिन आपके हृदयों में ऐसे घर बना जाती हैं कि चाहकर भी आप तोड़ नहीं सकते। इसकी दीवारें इतनी मजबूत होती हैं कि इंसान इनकी स्मृतियों से और एहसास से कभी बाहर नहीं आ पाता।

राधिका पानी के गगरे लिये कुएँ से लौटी तो लहरिया दो पिल्लों को छाती से चिपकाये बखरी में के कोने में पसरी बैठी थी। बच्चे कईं–कईं करते उसकी पकड़ से भागने की कोशिश करते लेकिन लहरिया फिर पकड़ लेती। जबरन पिल्लों का मुँह खोल–खोलकर उन्हें माटी खिलाने में लगी थी। इस भोजप्राशन में दो चार कच्ची गगरियाँ भी स्वाहा हो गईं थीं। राधिका देहरी से ही चिल्लाई–

> *ऐ...ऐ...ऐ...क्या करती है मौड़ी, मर ना जायेंगे पिल्ले उनके मुँह में माटी ठूंस रही है... अरे राम देखो तो कैसी गगरियाँ सत्यानाश कर दीं और तुम हो कि दीदें धरती में गड़ाये बैठे हो.. जब तक हँसे खेले सो बच्चा बाप का रोये और उत्पात करे, सो महतारी सम्हारे।*

माधो और लहरिया दोनों राधिका की तेज आवाज सुनकर चौंक गये। माधो ने लहरिया को देखा तो झट से उठकर पास गया और बोला- *जे कहाँ से उठा लाई?*

*पीपरा के पास से बाबू! जे भौत रोते थे!* लहरिया ने तिरछी आँखों से अम्मा को देखा और फिर बोली- *अम्मा! भूख लगी है इनको, कित्ता रोते हैं बिचारे!*

*अरी... महामाई! भूख लगी है तो ये माटी थोड़ी खाते हैं, जो तू ठूँसे जा रही है....* राधिका ने हाथों से पिल्लों को झटकते हुये कहा।

*खाते हैं अम्मा हमने देखा है जे जीभ से ऐसे... ऐसे... करके माटी चाटते थे। इनके हाथ नई हैं ना इसलिये... इसलिये... अच्छे से नई खा पा रये थे... इसलिये हम खबा रई हूँ...*

राधिका और माधो दोनों खिलखिलाकर हँस दिये- *अरे विधाता, कहाँ से इतनी अकल दे दी इसको... अरी बिट्टो रानी जे इतने छोटे हैं.... कछु नई खाते बस अपनी अम्मा का दूध पीते हैं।*

*अच्छा... जैसे हम पीती हूँ?*

*हाँ, वैसे ही!*

*फिर इनको भी पिला दो अम्मा, कित्ते भूखे हैं, कितना रोते हैं.*

राधिका ने माथा पीट लिया। माधो ठहाका मारकर हँसा तो राधिका से भी ना रहा गया और खिलखिला पड़ी। माधो ने लहरिया को पकड़ने की कोशिश की तो वो छिटककर पिल्लों को छाती से चपेटे और दूर बैठ गई। माधो उसके सामने बैठा समझाता रहा कि *ये अपनी अम्मा का दूध पीते हैं तेरी अम्मा का नहीं....* लेकिन लहरिया तो पाँव पटकती, ठुनकती बस एक ही रट लगाये थी-

*नई, हमें नई पता इन्हें तो अम्मा दूध पिबायेगी! राधिका कुछ बोलती तो माटी में लोट-लोटकर पाँव फटकारती और चिल्लाती- इनको दूध पियाओ अम्मा!*

माधो ने अबकि पास जाकर उसे पकड़कर कहा– *अरे... माटी में क्यों लोट रही है? जे बहुत छोटे हैं इन्हें इनकी अम्मा से दूर किया तूने तो इनकी अम्मा तुझे काट खायेगी।*

*नई काटेगी बाबू...* लहरिया ने पिल्लों को पकड़कर बाबू की गोद में रखते हुए बोली– *पहले देखो... तो कित्ते रोते हैं... बाबू... अम्मा को कुछ समझ नई आता...*

*हे महामाई का समझाऊँ इसको!* माधो बुदबुदाता हुआ फिर लहरिया को पुचकारा– *बेटा! इनकी अम्मा इनको दूध पियायेगी, जे तो तेरी अम्मा है अगर जे इनको दूध पियायेगी तो इनकी अम्मा गुस्सा नहीं होगी... फिर जब तुझे भूख लगेगी तब तू का करेगी?*

लहरिया खिसियाती हुई बोली– *जब भूख लगेगी तो हम इनकी अम्मा का दूध पी लूँगी, अभी तो... अभी तो... इनको भूख लगी... अम्मा दूदू पियाओ।*

राधिका ने चुपचाप गगरी उठाई और हँसते हुये भीतर चली गई। राधिका को यूँ मुस्कुराता देख माधो को ऐसा लगा जैसे उसके सुलगते मन पर किसी ने पानी उड़ेल दिया हो उसने लहरिया का माथा चूमा और अपनी छाती से लगाकर बोला– *पहले जे तो बता... बाबू बजार से कौन सी चीज्जू लायेंगे... अपनी लहरिया के लिये...*

*बजार! चीज्जू!* लहरिया की आँखें चमक उठीं, अब लहरिया अपनी फरमाइशों के आगे पिल्लों की भूख भूलकर बाबू को चीजें बताने लगी– *बाबू तुम सब भूल जाते हो... बताया तो था पुत्तो, बन्नूक, कंपट...*

*ठीक है... ठीक है..., सब लाऊँगा अब तू छ्ज्जन, कल्लू और सबको नहीं बतायेगी कि तेरे बाबू बजार से चीज्जू लायेंगे।*

*हाँ... हाँ...* लहरिया ने अपनी आँखें बड़ी कीं और चिल्लाती हुई भाग गई– *हमाये बाबू बजार से चीज्जू लायेंगे... चीज्जू... चीज्जू!*

माधो ने पिल्लों को उठाकर बाहर छोड़ा और कुर्ता-पैजामा पहनते हुये

राधिका से कहा– *सहारग अच्छी है, फिर मेला भी आने को है सोचता हूँ जा ही रहा हूँ तो कुछ रंग–रोगन ज्यादा ले आऊँ तो काम अच्छा हो जायेगा, कुछ पैसे रखे हैं का तेरे पास?*

राधिका चूल्हा सिलगाते हुए बोली– *पइसा मेरे पास... मैं तो कहने वाली थी कि कुछ बचे तो थोड़ी दार लेते आना और तुम मुझी से पूछते हो।*

> *माधव हँसते हुये... पैसे के बारे में तो ऐसे कह रही जैसे तुझे पता नहीं कि कितना है। मैंने कौन कहीं लुका छिपा रखा है। ये एक सौ सत्तर रुपये हैं इनसे तो मटकों के लिये ही रंग–रोगन पूरा ना परेगा। बाकी पुतरियों के लिये कहाँ से ला पाऊँगा? चलो अभी जितना है उतने का ही ले आता हूँ। बड़ी कोठी से शायद कुछ मिल जायेगा तो पुतरियों के लिये बाद में ले आऊँगा।*

राधिका धीरे से फुसफुसाई– *हूँह... बड़ी कोठी की गाँठ से तो ना छूटे पथरा.... पइसा की बात करते हैं।*

माधो ने उसकी तरफ देखा और शब्दों में साँस भरते हुये बोला–

> *मन शान्त रखा कर। खुद को काहे इतनी तसईया देती रहती है। ईसुर ने चोंच दी है... चुन जैसा देंगे खा लेंगे लेकिन ऐसा तो नहीं जो नहीं खा सकते उसको सोचना भी पाप है इसलिये खुद को ऐसे ना झुलसाती रहा कर... एक छत तले आग जलती है तो सब दीवारें तपती हैं।*

माधो की बात सुनकर राधिका पलभर को उसे टकटकी लगाये देखती रही। उसको जैसे शब्दों की जरूरत ही नहीं थी पर मन उससे बातें कर रहा था, कह रहा था– देख ना, ये वही इंसान है जो कभी एक शब्द सुनने पर आकाश का तमतमाया सूरज, धरती पर उतार लाता था। ऐसा लगता था जो सामने पड़ेगा... उसे झुलसा डालेगा पर अब इतना सहज है कि तू कितने ही उलाहने देती रहे बस हँसकर टाल देता है। जब ये

इतना बदल सकता है तो तू क्यों अपने मन की अग्नि पर लोटाभर जल नहीं छिड़क पाती।

माधो खाना खाकर उठ गया, उसने कपड़े पहनते हुये राधिका को हिदायत दी – *लहरिया को देखे रहना। आजकल बहुत फिरती है, कुत्ते-बिल्ली तो ठीक कीट-पतंगा अलग पकड़ लेती है। कौनऊ जहरीला जीव पकड़ लिया लेने के देने ना पड़ जायें। दद्दा को कहे जाता हूँ वैसे, पर तू देखती रहना दद्दा को कौन टिमता है इतना।*

अपने अन्तर्मन में डूबती उबरती राधिका, माधो की आवाज से बाहर आई। शाम तक लौटने का कहकर माधो झोला उठाये बाहर चला गया, बाबू को जाता देख लहरिया पीपरा तले से ही चिल्लाई- *बाबू! चीज्जू लाना... और पुत्तो भी... और बन्नूक भी!...*

माधो कुछ पल उसे देखता रहा फिर जेब टटोली, मुस्कुराया और चला गया। इधर राधिका चूल्हा-चौका समेटकर माटी माड़ने बैठी ही थी कि लहरिया अबकी बार सुअर के दो बच्चे छाती से चिपकाये फिर चली आई और गले से गटर-गटर की आवाज निकालती हुई बोली- *अम्मा भूख लगी इनको भी... दूध पिया दो... बाहर ऊआँ.. ऊआँ.. करते थे।*

अभी-अभी ठहरे प्रवाह को जैसे फिर कोई धक्का दे गया। राधिका के मुख पर दोपहर सा चटकता रंग उतर आया। माटी भरे हाथों से ही माथा पीटते हुई तड़तड़ाई- फेंक इसे अभी... कहाँ से उठा लाई... बस नहीं चलता इसका नहीं तो आकाश में थिगरिया लगाये, चल बाहर...चल..।

अम्मा को गुस्सा होते देख लहरिया सुअर के बच्चे को लिये बाहर के बजाय दौड़कर कोठरी में घुस गई। राधिका दाँत किटकिटाते हुए चिल्लाकर पीछे भागी-

> *हे महामाई! भीतर घुस गई सुंगरिया का बच्चा लिये, हड़ गई ई बिटिया से, जैसे-जैसे बड़ी हो रही है वैसई उत्पात बढ़ रहे हैं। प्रान खाने पे उतारू है, दद्दा तुमने भी ना देखा इसे, वैसे तो रेंगती पटार को भी भाँप जाते हो!*

दद्दा गलगलाते से सुर में बोले– *इतनी नजर होती तो खटिया पे काहे सड़ता रहता और मुझे कौन वो बता के ले गई भीतर जो मुझ पर खिरझियाती है।*

लहरिया सुअर के बच्चों को लिये कुठरिया भर में दौड़ रही थी। कभी कथरियों पर चढ़ती, कभी बक्सों पर, बच्चे भी उसकी गोद से कूदकर चूल्हे में दुबककर बैठ रहे। राधिका को तो जैसे काटो तो खून नहीं, मुँह बाये बस देखती रह गई। जैसे-तैसे उसने सुअर के बच्चों को उठाकर बाहर छोड़ा तो लहरिया जमीन पर पसरकर हाथ पाँव पटक-पटककर रोने लगी– *हमें छोटा बच्चा चइये, चइये।*

राधिका ने अबकि लहरिया की पीठ पर एक तमाचा जड़ा और पकड़कर नहला दिया। लहरिया रोते-रोते चिल्लाई– *दद्दा! अम्मा मारी.. दद्दा अम्मा मारी...*

राधिका ने उसे झकझोरते हुए डपटा– *दद्दा और बाबू ही तो खोपड़ी चढ़ाये हैं तुझे... दिन पे दिन नये-नये उत्पात करती है... चल कपड़ा पहन...* लेकिन लहरिया छुटककर सीधे बाहर दद्दा की छाती से जा चिपटी और बिसूरते हुए बोली– *दद्दा! अम्मा मारी!*

दद्दा ने उसके माथे पर हाथ फेरा और कहा– *तू काहे उधम करती है, खुद भी मार खाती है और मुझे भी सुनवाती है... चल अब चुप हो जा, जे ले बताशा... दो दिन से जाने का हो गया तेरी अम्मा को बात-बात पे बस खिरझियानी गइया सी मारने दौड़ती है।*

लहरिया बताशा लेकर सिसकते हुए दद्दा की गोदी में बैठ गई, राधिका भीतर से धमकाते हुई बोली– *अब अगर कुत्ते-बिलइयाँ पकड़ के लाई तो हाथ-पाँव तोड़ दूँगी तेरे। अभी सब काम समेट के बैठी फिर इस मौड़ी ने छूत का कर दिया, नथुनन आ गई हूँ, जाने कब बड़ी होगी।*

दद्दा ने नाराज होते हुए कहा– *अब ना करेगी... ज्यादा किलकिल ना कर, बिल्कुल ही कसाई हो गई है का... कल भी मारा था उसे और आज*

*फिर धुनक दिया... जादा हाथ सौरयाते हैं तो भीतों पे पटक लियाकर अब खबरदार जो एक और हाथ छुबाया मौड़ी को तो...*

*हाँ... हाँ... मैं ही किलकिलयाऊ... मैं ही कसाई.... सबकुछ मैं ही हूँ, बाकी तो सब माटी के माधव है। कुछ ना बोलूँगी जब सबकी मूँछें उखारेगी तब समझ आयेगा। माटी रौंदने वाले हैं और इतना भी नहीं जानते कि अगर गगरी को ठोंका पीटा ना जाये तो टेढ़ी-टापटी हो जाती है।*

*हओ.. हओ.. बड़ा ज्ञान बघारती है, छोड़ दे मौड़ी को यहीं, यहाँ रहेगी तो ना उधम करेगी, ना तू चिल्लायेगी।*

*हाँ तो ऐसे ही बैठी रहेगी का, कपड़ा लत्ता भी ना पहराऊँ फिर बुखार ताप हो गया तब भी मैं ही गरियाई जाऊँगी...* राधिका जबरन लहरिया को दद्दा की खाट से उठा लाई। लहरिया गोद में हाथ पाँव फटकारते हुये रो रही थी- *नई अम्मा! दद्दा पास जाना... छोड़ो... छोड़ो...*

राधिका ने कोठरी में आकर अपने पैरों की चौकड़ी के बीच उसे दबाकर बैठाया और कपड़े पहनाती तो लहरिया उतार देती, फिर पहनाती फिर उतार देती, अबकि राधिका ने उसे पुचकारा, चूमा, प्यार से मनाने की भी कोशिश की लेकिन बचपन लचीला होता है तो चट्टान सा जिद्दी भी हुआ करता है। रोते-रोते उसके नाक-लार सब एक हुआ जाता था, बस एक ही रट लगाये थी- *दद्दा अम्मा को मारो... हमें अम्मा मारी, छोटा बाला बच्चा चइये!*

राधिका ने उसे पुचकारकर कहा- *अच्छा पता है तुझे? दद्दा की कितनी तबियत खराब है... तू उनके पास रहेगी तो बो सो ना पायेंगे तो और बीमार हो जायेंगे।*

लहरिया कुछ गम्भीर होते हुये बोली- *सच्ची अम्मा?*

*सच्ची में लहरिया... फिर तेरे दद्दा भगवान् के पास चले जायेंगे और कभी नई आयेंगे!*

लहरिया की आँखें चमक उठीं, चिल्लाकर बोली– *अच्छा दद्दा मर जायेंगे तो फिर बोई तो भम्मान को लायेंगे हमाये पास अम्मा.... तुम कुछ समझती नहीं हो...*

राधिका ने अपनी हँसी रोकी और लहरिया का मुँह दबा लिया– *का कहती है मौड़ी... डुकरा ने सुन लिया तो धरती आसमान एक कर देगा, चुप हो जा!*

लेकिन लहरिया पिंजरे की पंछी सी फड़फड़ाकर राधिका के हाथ से छूटी और दोगुने सुर में चिल्लाती हुई सीधे दद्दा के पास रुकी– *दद्दा! अम्मा ने बताया कि तुम सोये नई तो मर जाओगे तो तुम सोना नई, ठीक है! हम तुमको सोने नई दूंगी।*

दद्दा ने जोर से डंडा फटकारा और कहा– *अब आई मन की मुँह में, तू तो दिन–रात जेही भजती है कि डुकरा कब मरे, कब टंटा पटाये!*

राधिका ने देहरी से ही कहा– *दद्दा! कैसे लरका बच्चन की बातन में पड़ते हो, उसे समझाने के लिये कुछ कहा... उसने कुछ समझा और तुमाये पास आके कुछ और ही बोला।*

दद्दा लहरिया को गोद में बैठाये जोर से बोले–

> *आहा... हा... अंधरा हुआ हूँ बहरा नई, उड़ती चिरैया को भी सुन लेता हूँ। मुझसे ये तेहा ना दिखाया कर माधो की दुलैन! सबेरे से तेरी बकर–बकर सुन रहा हूँ, पहले मोरे लरका को सुनाती रही अब मेरी बारी है, काये है ना?*

इतना कहते–कहते दद्दा का गला भरने लगा–

> *मैं ही दुसमन हूँ सबका, अपनी आंतजने भी अब बातें सुनाते हैं... जिनसे नेह का धागा जुड़ा है उनके लिये भी शूल बनता जाता हूँ... आ जाये माधो सो कहूँगा उससे कि तू ही कुआँ में काहे नई फेंक आता मुझे... सारा टंटा ही पटा जाये।*
>
> *राधिका ने करुण स्वर में दद्दा! रामधई जो मैंने ऐसा कछु*

*बिचारा भी हो, तुम बच्चा की बात को बतंगड़ ना बनाओ। मान लिया मुझसे गलती हो गई पर मैं ऐसा कभऊँ नहीं सोच सकती। मेरा बस चले तो तुम्हें मोतियों से तोल देती। तुम ही हमाई छाया हो, देहरी के मान हो, तुमसे ही हम सबकी आड़ है दद्दा। अपने मन में इतनी सी बात की गाँठ ना बाँधो।*

राधिका की यूँ रुआँसी सी आवाज सुन दद्दा कुछ नरम पड़ते हुये बोले-

*मैं कोई कलेश करने को थोड़ी बैठा हूँ, तू जा भीतर! जब बिदाई का समय होता है... ऐसे में तनक सा तीखापन भी जहर सा काम करता है...*

*कलेजा छलनी हो उठता है जब पता चलता है कि जिन बाल बच्चों के लिये सुख का तो छोड़ो प्राणों का भी मोल ना किया वोई सन्तान हमारे मरें की मनौती मनाती फिर रही... तो आत्मा बिलबिला उठती है...*

राधिका अब कोई तर्क, कोई सान्त्वना ना दे सकी। लहरिया को उनकी गोद से लेकर चलने की कोशिश की तो वो दद्दा की छाती और जोर से चिपक गई।

दद्दा ने लहरिया को चूमा और कहा- *जा बेटा अम्मा को परेसान ना कर जा फिर बतासा दूँगा।*

लहरिया झट से बोली- *नईं अम्मा को और डाँटो तुम, तब जाऊँगी, अम्मा हमें मारी है!*

राधिका, लहरिया को पकड़कर भीतर ले जाने को मुड़ी तो लहरिया छुटक कर चिल्लाती हुई भाग गई- *हम सबसे गुस्सा हूँ। घर छोड़के जा रही हूँ। दद्दा तुमने अम्मा को नईं डांटा!*

*अरे पकड़ तो मौड़ी कहाँ को गई?*- दद्दा ने हड़बड़ाते हुए कहा।

राधिका ने कहा- *कहीं ना जायेगी यहीं बैठेगी पीपरा तरें, तुम आराम करो, मैं लिवाये लाती हूँ।*

राधिका इतना कहकर लहरिया के पीछे जाने को हुई तो दद्दा फिर बोले-

*बेटा! बुरा ना मानना... बुढ़ापा है... इस उमर में चिड़चिड़ापन हो जाता है इसलिये गुस्से में बक जाता हूँ...*

*मैं तो दुरभागी हूँ... मेरे पीछे तू मन में कलेश ना रखना... मैं तो रोज मनाता हूँ कि हे ईसुर! उठा ले पर सुनता ही नहीं पर जब तक हूँ... इसी देहरी की माटी हूँ... इसकी रखवारी धरम है मेरा... उससे ना टरूंगा।*

दद्दा की आँखों से बहे आँसूओं ने उनके मुख की सिलवटों में उलझकर कुछ अनपढ़े चित्र गढ़ दिये थे। राधिका के गले में भी लहरें उमड़-घुमड़ करतीं बाहर आने को आतुर हो चली थीं पर राधिका ने उन्हें निगलते हुए दद्दा के पाँव छूते हुये कहा-

*दद्दा! ऐसो ना कहो, ना दुखी हो हम सब हैं अच्छे हैं बुरे हैं जैसे हैं तुम्हारी सन्तान हैं। अपनी नातिन का मुँह देखो, चाहो तो लठिया मार लो लेकिन गलती माफ कर दो।*

दद्दा ने थरथराते हाथों से अपने गालों की तहों में उलझा पानी पोंछा और सोचते हुये बोल उठे-

*ना बेटा! उठ... उठ... मैं जानता हूँ तू ऐसा कभी नईं सोच सकती... आज तेरा करेजा दुखा होगा इसलिये ऐसे बोल कह गई... दद्दा हूँ तुम्हारा... मूल से जादा ब्याज प्यारा होता है... हजार गलतियों के बाद भी छाती से लगाऊँगा... अब जा लिवा तो ल्या उसे।*

दद्दा ने लम्बी साँस ली और खाट पर लेटकर आसमान ताकते स्वयं से शिकायत करते हुये बुदबुदाये-

*जाने कौन सवार हो जाता है? का जरूरत थी इतना बोलने की? मन कैसा जिद्दयाने लगा है... कोई बाल-बच्चा तो हूँ नहीं जो तनक-तनक सी बातों पे तुनकता फिरूँ... देखो तो*

*जीवन में क्या-क्या ना देखा तब आपा ना खोया... अब अपने ही बाल-बच्चों पे जहर उगलता हूँ।*

मनुष्य का हिया ईश्वर ने सम्भवतः इसलिये नरम बनाया होगा ताकि वह कठोर से कठोर भावों को उसमें समाता चला जाये लेकिन इस कोमल मन पर जब करुणा का भाव पड़ता है तो यह भी रो पड़ता है। बस फर्क इतना है कि कोई क्रोध करके रोता है, कोई अश्रुपान करता है।

# पीपल के तले

पीपल के सामने मैदान में गाँवभर के बच्चों का जमघट लगा था। बच्चों की खिलखिलाहट, लड़ाई-झगड़े, बातें गूँज रहीं थीं। कुछ बच्चे, कबड्डी खेल रहे थे, कुछ लड़कियाँ गुड्डे-गुड़िया लिये शादी ब्याह रच रही थीं।

बच्चों का एक झुण्ड तय कर रहा था कि कौन सा खेल खेला जाये, सबके अलग-अलग मत थे। आखिरकार छज्जन सरदार बनकर उभरा। छज्जन वैसे है तो छह बरस का लेकिन हड्डियों पर खाल ऐसी चिपकी है कि उम्र का पता ही नहीं चलता, खैर! छज्जन ने पूरी चतुराई से आदेश पारित करवा लिया कि घोड़ा-दिमान-साई खेला जायेगा। चित्त-पट किया गया तो दाँव सरदार छज्जन पर ही आ पड़ा। अब कोड़ा कैसे बने, इस मण्डली में तो सब बनियानधारी थे। कपड़ों की अमीरी दो के ही पास दिख रही थी.. एक तो कल्लू और दूसरा सरदार खुद। क्या किया जाये पर दोनों कमीजधारियों में विचार-विमर्श हुआ। आखिरकार दोनों अपनी शर्टों को कोड़े में तब्दील करने का बलिदान देने को राजी हो गये। दोनों की कमीजों को उमेठकर कोड़ा बना लिया गया और शुरू हुई घोड़ा-दिमान-साई लीग चैम्पियनशीप!

मण्डली में सभी ने अपनी-अपनी रणनीति बनाई, इशारे तय हो गये कि कौन, कैसा इशारा करके कोड़े की मार से बचायेगा.. घेरा बन गया... छज्जन सरदार ने हुँकार भरी- घोड़ा-दीमान-साई....

बैठी हुई प्रजा ने सुर में सुर लगाते हुये पूरी ताकत से आवाज दी– *पीछे देखो मार खाई...*

छज्जन चिढ़ते हुये बोला– *किसी ने रुबंटयाई करी तो फिर मैं दाँव ना दूँगा।*

सबने छज्जन को भरोसा दिलाया था कि कोई बेईमानी नहीं करेगा पर फिर भी दोस्ती से बड़ा कोई खेल थोड़ी होता है, दोस्त को बचाना तो पहला धर्म है तो फिर थोड़ी सी बेईमानी करने में क्या हर्ज़ है। सबके सब मन में यही बुदबुदाकर अपने सामने वाले को अँखियों के झरोखे से आश्वासन दिलाते हुये खेल के मैदान में टूट पड़े।

जिसके पीछे चुपचाप कोड़ा रख दिया जाता उसके सामने बैठा दोस्त आँखें नचाकर पीछे रखे कोड़े की सूचना देने का प्रयास करता। यदि भाँप लिया तो ठीक वरना ले दना दना... दौड़ा दौड़कर कोड़े पड़ते। सारे बच्चे तालियाँ पीटते हुये दोनों महारथियों का हौसला बढ़ाते, कोई कहता– भाग.. भाग.. कोई चिल्लाता... पकड़... पकड़..., ठहाके लगते, चुनौतियां दी जातीं– आने दे बेटा मेरी बारी... फिर बताता हूँ...

इन बच्चों की पंछियों सी चिचियाहटें आकाश छूती सी लगती थीं। सारे पेड़ों के पत्ते और ज्यादा हल्ला मचाते से लग रहे थे जैसे शाखाओं से हठकर रहे हों कि उन्हें भी खेलने जाना है। इन सबके बीच ये बड़ा सा पुराना पीपल का पेड़ तो जैसे इन बच्चों का दादा है, जिस दिन ये यहाँ इकट्ठे नहीं होते उस दिन इसके पत्तों की खड़खड़ाहट बढ़ जाया करती है। ऐसा लगता है जैसे आवाज दे-देकर एक-एक बच्चे को पास बुला रहा हो।

सूर्यदेव चाहे कितना भी कोप बरसायें... ये खिलखिलाहटें इसी तरह दोपहर के आलस को मुँह चिढ़ाया करती हैं। बरखा रानी कितनी ही नाचें लेकिन ये कलरव उनके साथ और थिरकने लगता है। फिर शीतकाल के तो कहने ही क्या? वो तो इनकी दोस्त है बड़ी ऐंठ के साथ कहती है–

*बारन खें मैं बोलत नईयाँ... ज्वान लगें मोरे भईया...*
*बूढ़न खें मैं छोड़त नईया... चाहें ओढ़ें सात रजईयाँ...*

लेकिन आज इन खिलखिलाहटों के बीच एक हँसी कम लग रही है। किसकी है... किसकी है...? अरे हाँ... वहाँ देखो वो हँसी कोने में मुँह लटकाये बैठी है। कनखियों से खेलते बच्चों को बार-बार झाँक लेती है। मन लालच के मारे लड़ा-मरा जा रहा है उससे, पर वो है कि ये कहकर उसे झिड़क दे रही है कि चुपचाप बैठ जा अभी तो मैं गुस्सा हूँ। फिर गाल सुजाये सबको बस घूरने लगती है। ये गुमसुम हँसी है लहरिया जो अम्मा की डाँट से रूठकर पीपल के पीछे दुबककर बैठी है।

राधिका लहरिया को मनाने के लिये उसके पास आई तो लहरिया घूमकर बैठ गई- *जाओ... जाओ... हम नई जाऊँगी... तुमने हमें मारा, दद्दा को भी डाँटा है... हम गुस्सा हूँ...*

राधिका ने उसे पुचकारा, दुलारा- *हमाई लहरिया तो रानी बिटिया है, गुस्सा थोड़ी होती है... अभी अम्मा की पीठ पर नमक की बोरी बनकर लद जायेगी और घर चलेगी, है ना?*

लहरिया अब भी नहीं जाने की रट लगाये रही तो राधिका ने कहा - *अब ना तुझे मारूँगी, ना डाँटूगी, और देख तो कित्ती देर से दद्दा बतासा लिये बैठे हैं। कह रहे थे लहरिया ना आई तो बतासा छज्जन को दे देंगे।*

बतासे का लालच भी काम ना आया- *हमें नई चइये बतासा, दे दो छज्जन को...* राधिका ने उसे गोद में लेने की कोशिश की तो छिटककर कभी यहाँ सरक जाती कभी दूसरे कोने पर- *नई जाना....नई जाना....तुम मारती हो, अब बाबू से शिकात करूँगी हम, बो डाँटेंगे।*

देहरी पे फुल्ले को देखा तो राधिका उठकर चली आई। जाते-जाते उसने छज्जन से कहा कि लहरिया को देखे रहना कहीं जाये ना। इतना कहकर काम करने चली गई, आखिर गगरियाँ भी तो देनी थीं।

छज्जन ने हामी भरकर लहरिया को आवाज दी- *लहरिया, ओ लहरिया!*

लेकिन लहरिया पीठ करके चेहरा धरती में गड़ाये सिकुड़कर बैठी गई। छज्जन दौड़ता हुआ उसके पास आया- *का हुआ लहरिया! आज तू हमाये साथ नहीं खेलेगी?*

लहरिया ने आँखें बड़ी करते हुए कहा- *नहीं हमें नहीं खेलना! और उठकर दूसरी तरफ सरक गई।*

छज्जन ने फिर पूछा- *अरे बता तो हुआ का है, काहे मुँह फुलाये बैठी है, किसी ने मारा है?*

लहरिया इस बार झल्ला पड़ी- *नईं खेलना, तू भग जा यहाँ से, हम सबसे कुट्टी हूँ।*

छज्जन ने मुँह बनाया- *चिल्लाती क्यों है, ना खेल... हमें का? तू कुट्टी तो मैं तो और पहले कुट्टी!*

छज्जन फिर अपने दल में *घोड़ा दिमान साई....* चिल्लाता शामिल हो गया वहाँ से उसकी नजर लहरिया पर जब पड़ती तो कभी जीभ बिराता, कभी तरह-तरह की हस्त मुद्रायें बनाकर चिढ़ा देता। कोई और दिन होता तो लहरिया बाल पकड़कर लड़ लेती लेकिन आज ना तो किसी से झगड़ा कर रही है ना ही कुछ बोल रही है। वैसे भी इस मण्डली की सबसे छोटी सरदारनी है इसलिये छज्जन को छोड़ बाकी सब उसके साथ खेलने से दूर भागते हैं।

छज्जन का मन बार-बार लहरिया की तरफ जा रहा था। दोनों की क्षणभर भी नहीं पटती लेकिन छज्जन के लिये लहरिया उसकी सबसे अच्छी दोस्त है, उससे गुत्थम-गुत्था, कुट्टी, लड़ाई-झगड़ा सबकुछ मंजूर है लेकिन लहरिया बोलना बन्दकर मुँह फुलाये बैठी हो तो छज्जन उसे मनाये बिना नहीं रहता। लहरिया छज्जन को एक बार झिड़क चुकी थी लेकिन थोड़ी ही देर में छज्जन ने फिर से आवाज दी- *ओ लहरिया! आजा ना खेलेंगे! क्यों गुस्सा है, बता तो सही?*

लहरिया ने बित्तेभर की जीभ निकालकर उसे बिराते हुये बोली - *नईं*

*खेलना... नईं खेलना... नईं खेलना!*

लहरिया को मनाने के चक्कर में छज्जन के रणनीतिक साझेदार यानि कल्लू को दे दनादन कोड़े पड़ गये और दाँव भी उसी पर आ पड़ा। फिर क्या था, साझेदारी टूटी और कल्लू उस्ताद खीझते हुये बोले-

> *क्यों बुलाता है उसे। थोड़ी जोर से लग जाये तो रो-रोकर सबको बुला लेती है फिर हम सबको डाँट पड़ती है और उसके चक्कर में तूने मुझे कोड़े भी घलवा दिये, अब देख तुझे कैसे सड़ासड़ बजवाता हूँ!*

छज्जन कुछ डरा लेकिन ठहरा तो सरदार, वो डरते हुये कैसे दिख सकता है- *मैंने तो बताया था तूने ही नहीं देखा तो मैं क्या करूँ और बेचारी कितनी देर से अकेली बैठी रो रही है, चल उसे मनाके खिला लेते हैं।*

कल्लू ने त्योरियाँ चढ़ाते हुये छज्जन को धक्का दिया और बोला- *तो जा आरती उतार उसकी और उसी के साथ खेल।*

उफ्फ... धक्का... वो भी छज्जन सरदार को! आह... छज्जन सरदार तिलमिला उठा और बदले में उसने भी कल्लू को जोरदार धक्का मारा और दौड़कर सीधे लहरिया के पास रुका।

छज्जन को देखकर लहरिया फिर चिल्ला पड़ी- *हमें नईं खेलना... नईं खेलना... नईं खेलना, भग जा।*

छज्जन ने कहा- *अरे एक ही रट लगाये है और तू इत्ता चिल्लाती क्यों है? आज जरूर तेरे बाबू ने मारा है, क्यों?*

लहरिया ने ना में सिर हिलाया। छज्जन- *तो फिर किससे नाराज है, मुझसे... लेकिन मैंने तो आज तुझसे कुछ कहा ही नहीं?*

लहरिया- *नईं... अम्मा से, अम्मा ने हमें मारा!*

छज्जन- *तो अपनी अम्मा की शिकात बाबू से करना।*

लहरिया- *हम्म!*

छज्जन– *अच्छा सुन तो, जब तेरे बाबू या अम्मा बुलायेंगे तो तू फिर गुस्सा होकर यहीं बैठ जाना, ठीक? चल अभी अपन खेलेंगे?*

मन तो पहले ही लालच में डूबा कुलाँचें भर रहा था। उस पर ये प्रस्ताव क्या बुरा है– अहा! मजा आ गया, गुस्सा भी दिखाती रहेगी और खेल का खेल लेगी। लहरिया कूदकर उठी और घोड़ा–दिमान–साई लीग में शामिल होने पहुँच गई। पर मामला फिर उलटा हो गया, सारे बच्चे जोर–जोर से चिल्लाने लगे–

*नई घोड़ी दाम दे...दस नए का पान दे।*
*नई घोड़ी दाम दे...दस नए का पान दे।*

लहरिया मुँह बनाते हुए बोली– *हम दाम नई दूँगी।*

लेकिन कोई उसे बिना दाम दिये खिलाने को तैयार नहीं हुआ। छज्जन सरदार की चतुराई भी काम ना आई क्योंकि दल की बागडोर अब कल्लू के पास सरक गई थी। उसने अकड़ते हुये कहा–

*दाँव देना है तो दे नहीं तो भग जा यहाँ से... बड़ी आई दाम नई देगी.. बित्तेभर की है और ऐसे ऐंठती है जैसे बड़ी कहीं की महारानी हो!*

छज्जन की सारी मनुहार पर फिर पानी फिर गया। लहरिया ने कल्लू की पीठ पर जोर का घूँसा रगड़ दिया और भागकर फिर पीपल के पीछे की तरफ जा बैठी।

कल्लू लहरिया के पीछे दौड़ा तो छज्जन ने टंगड़ी फँसाकर गिरा दिया मामला फिर छज्जन की तरफ मुड़ गया, कल्लू ने एक जोर की झन्नाटेदार लात घुमाकर छज्जन को मारी और बोला– *मैं मना करता था, तू उस पगलैट लहरिया को लिवा के लाया... फिर मुझे पटक दिया। अब आना बेटा हमारे साथ खेलने, देख लेंगे तुझे...*

इतना कहकर कल्लू अपने गुट को लेकर मैदान के दूसरे छोर पर चला गया। छज्जन लहरिया को घूरते हुए चिल्लाया–

*बड़ी आई, मुझे कुटवा दिया अब तो तुझे मजा आ गया होगा ना, ले देख तेरी बजह से मेरे सब दोस्त कुट्टी करके चले गये और तू है कि अब भी मुँह बनाये बैठी है, चाची ना कह गई होती तो हिरकता भी ना तेरे पास।*

लहरिया मुँह फुलाये फुलाये बोली– *हट्ट... हमनें तुझे नई कुटवाया?*

छज्जन लहरिया के पास आकर बैठ गया। कुछ देर चुप्पी साधे दोनों बैठे रहे फिर छज्जन ने मुख पर उदासी लपेटकर कहा–

*तेरी तो बस अम्मा मारती है बाबू तो कित्ता चाहते हैं तुझे... पर पता नहीं क्यों, मेरी तो अम्मा जब रोती है तो भी मुझे ही मारती है, बाबू भी और भईया भी पर मैं तू कूदकर भाग जाता हूँ फिर पकड़ ही नहीं पाता कोई, तू क्यों ना भागी?*

लहरिया– *हम अभी छोटी हूँ, सो नई भाग पाती, तू तो कित्ता बड़ा है।*

इन शिकायतों के आदान–प्रदान को जैसे बादलों ने सुनकर ऐसे तड़तड़ाना शुरू कर दिया जैसे गड़गड़ाहट की भाषा में अपना दुखड़ा भी रोना चाहते हों कि उनकी भी अम्मा ने उन्हें मार–मारकर दौड़ा दिया अब उनकी आँखों से जैसे कुछ–कुछ बूँदे भी टपक चली हों।

छज्जन ने आकाश की तरफ देखा और ऐसे बोला जैसे शब्द दौड़ लगाकर बारिश से बचते–बचाते बात कर रहे हों– *चल... चल... अब पानी बरसने वाला है, घर चल जल्दी?*

लहरिया– *बरसने दे, हम नई जाऊँगी!*

छज्जन– *ठीक है तो मैं भी यहीं बैठा रहता हूँ।*

लहरिया चिल्लाई– *तू भग जा, हमें किसी से बात नई करनी... नई करनी... नई करनी, इतना कहकर छज्जन को जोर का धक्का दे दिया।*

छज्जन – *तू हर बार मुझसे क्यों लड़ती है? मैंने का किया है, तुझे बैठना है अकेले तो बैठ। वैसे मेरी अम्मा कहती है इस पीपल पर चुड़ैल रहती*

*है जो बच्चे अकेले बैठे रहते हैं उन्हें झोले में डालकर ले जाती है।*

लहरिया आँखे बड़ी करके बोली– *सच्ची..?*

छज्जन ने सुरों में डर भरते हुए कहा–

> *सच्ची में लहरिया, उसके जे बड़े–बड़े नाखून हैं... दाँत ऐसे बाहर निकले हैं... पाँव भी उल्टे होते हैं, छम... छम... छम ... करके आती है और बच्चों को घप्प से खा जाती है।*

लहरिया डर के मारे रोने लगी, उसने छज्जन को उठकर एक जोर का घूँसा रगड़ दिया। छज्जन खिलखिल करता लहरिया को चिढ़ाता हुआ भाग गया– *मरखू बिलौटन... मरखू बिलौटन!*

अब लहरिया उलझन में थी कि भाग जाये यहाँ से या फिर बैठी रहे। भाग गई तो बाबू, अम्मा को नई डांटेंगे और ना गई तो चुड़ैल ले जाएगी। ओहो कैसी दुविधा आन पड़ी थी बालमस्तिष्क में... लहरिया पेड़ से सरककर चबूतरे के छोर पर बैठ गई पर बिना अपनी बात मनवाये घर जाना उसे कुछ जँचा नहीं। सोचा चुड़ैल ले जायेगी तो अम्मा और परेशान होगी, तब तो और मजा आयेगा, हाँ नहीं जाऊँगी।

इस बीच पवनदेव के सितार के तार और तीव्र हो गये थे, पीपल खड़खड़ करता झूमने लगा। मानवों में नैसर्गिक तर्क क्षमता होती है वे सुख का वरण सहज कर लेते हैं।

लहरिया को अब निश्चय करना था कि छज्जन की बताई काल्पनिक चुड़ैल से डरे जो दिखती भी नहीं या फिर इन नाचते पत्तों के साथ खेल ले? हवा से ऊपर को फूलती अपनी घंगरिया देख मन मोर हो उठा तो सारी दुविधाओं को कुचलकर चुड़ैल के भय को किनारे किया फिर मिट्टी और पत्तों को गुलाल सा उड़ाती कूदने फाँदने में मस्त हो गई पर जैसे ही कोई आते दिखता मुँह धरती में गड़ाकर रूठने का स्वांग रचकर बैठ जाती।

कुछ देर बाद घिटोई नाइन सिर पर डलिया रखे चली आ रही थी। उसने

लहरिया को कूदते देखा तो दूर से ही आवाज दी- *लहरिया, तू अकेली यहाँ का करती है?*

घिटोई की आवाज सुनकर लहरिया पेड़ की ओट में दुबककर बैठ गई। तब घिटोई ने पास आकर कहा- *तू यहाँ अकेले क्यों बैठी है? कुबेरा होने को है, बादर भी दड़दड़ाते हैं, चल घर, महतारी परेसान होती होगी।*

घिटोई ने लहरिया का हाथ पकड़ा तो उसने ठुनकते हुए झटके से हाथ छुड़ाया और बोली- *हमें नईं जाना, तुम जाओ, भग जाओ!*

घिटोई ने डलिया सिर से उतारकर कमर में दबाई और कहा- *अरे! देखो तो तेवर बिटिया के, जाती हूँ तेरी महतारी ही ले जायेगी।*

घिटोई राधिका की झोपड़ी की तरफ बढ़ गई, पीपल के पेड़ से ज्यादा दूर नहीं थी, घिटोई वहीं से चिल्लाती हुई लम्बे-लम्बे कदमों से भीतर पहुँच गई- *अरी लहरिया की अम्मा! कहाँ है री?*

दद्दा ने टोका- *कौन?*

घिटोई ने सिर झुकाते हुये कहा - *अरे दाऊ जू! मैं हूँ घिटोई, नातिन वहाँ अकेली रिसानी बैठी है जाके लिवा काये नईं लाते।*

> *कबसे चिल्ला-चिल्लाकर गला धँस गया मेरा लेकिन जिद्दिन महतारी की बिटिया भी तो वैसई है... ऐसे आयेगी का? ना महतारी जाती है और ना वो आती है। मेरी लठिया लुका के अलग धर गई है... कितनी बार आवाज दे चुका लेकिन कौनऊ नईं सुनता... बूढ़ा हूँ बड़बड़ाता रहूँ... का फरक परता है किसी को...*

घिटोई भी छोर झटककर राधिका को आवाज देती भीतर चली गई, राधिका ने दरवाजे से झाँका और बोली- *आओ जिज्जी!*

घिटोई ने डलिया उतार चबूतरे पर रखी और बोली- *काये री बिटिया बंजारन खें दै दई का, कौनऊ खोज खबर है कि नहीं? कुबेरा हो चली है, पानी बरसने के लिये सजा बँधा खड़ा है और तेरी बिटिया वहाँ पीपरा*

*के नीचे मुँह उरमाये बैठी है। मैंने कहा चल तो खिरझियाती है।*

राधिका– *छक गई हूँ जिज्जी मौड़ी से... भमीरी सी भन्नाती है... जितना मनुहार करो उतनई हठी होती जा रही है सो आज मैंने ठान ही लिया है... देखती हूँ कब तक बैठी रहती है।*

घिटोई ने थोड़ा झिड़कते हुये कहा –

> *आहा... हा... वैसे तो बड़े टोटके टेमने जानती है। इतना नई जानती कि साँझ की बेरा पीपरा के नीचे बाल–बच्चा को अकेले नई छोड़ा जाता और बाप कहाँ है लहरिया का? वैसे तो बड़ा गले में ढुलनिया सा लटकाये फिरता है, अब कहाँ गया?*

राधिका– *बजार गये हैं, आ गये होते तो अपने आप मना के ले आते। उनकी तो छाती चढ़ी रहती है, मान भी जाती है, बस मेरी नई सुनती।*

घिटोई– *रे महामाई! इन खसम लुगाई का कुछ समझ नहीं आता, ऐसी कौन बात पे रिसानी बैठी है जो घर आने का नाम नहीं लेती।*

> *अब का बताऊँ जिज्जी जे बिटिया पेट में मूँछें लिये पैदा हुई है सबेरे से छोटे–छोटे दो पिल्ले उठा लाई और बोलती है कि अम्मा इनको भूख लगी दूध पिबा दो.. मैंने इतना समझाया लेकिन ना मानी, फिर उसके बाबू ने बजार से सकल चीज ल्याने को रिझाया तब मानी। जब ये चले गये तो ना जाने कहाँ से सुंगरिया का बच्चा दबा लाई और सबरे बिछौनों पे लुटा मारा, चूल्हे में घुसा दिया। फिर कहती है ये भी भूखा है इसे भी दूध पिबाओ... चिल्लाया, डाँटा–डपटा ना मानीं तो मैं का करती दो तमाचे दिये और उन बच्चों को छुड़ाकर बाहर फेंका फिर पूरी कुठरिया लीपी, बखरी लीपी, चूल्हा पोता, उसको सपराया, खुद दोबारा सपरी। अब जा के दो रोटी पेट में डारीं हैं।*

घिटोई हँसते-हँसते दोहरी हुई जाती थी- *धन्न है तोरी बिटिया! तू अब तक इसे ऊपर का दूध नहीं देती। ढाई तीन बरस की हो रही, जे सब तो करेगी ही। अब बोलने समझने जो लगी है।*

राधिका ने कहा- *अब तो फिर भी कम कर दिया... दिन में दो बार चिपकती है... पर छोड़ती नहीं... तुम्हीं उपाय बताओ का करूँ कितनी कोसिस करी लेकिन छोड़ती ही नहीं फिर सोचा ऊपर का तो मिल नई पाता चलो जब छोड़ेगी तब छोड़ देगी।*

घिटोई- *बो सब तो ठीक है... कब तक छाती से चिपकाये रहेगी? तुझे कमजोरी ज्यादा हो गई तो जे घर-दोर कौन देखेगा? नीम पीस के लगा ले... देख कैसे सात दिन में दूध छोड़ती है।*

राधिका - *सही है, छुड़ा दूँगी अब पर बहुत मुश्किल होगी। पूरी भमानी है, इतनी जिद्द करने लगी है कि छक गई हूँ, हना पे चना चाहिए, दत्ती बाँध-बाँध रोती है। समझ नई आता का करूँ इसका, कैसे समझाऊँ? तुम ही कोई गड़ा, तबिजिया बना दो, शायद शान्त हो जाये, मुझसे तो सम्हराये नहीं सम्हरती... तुमाओ भी तो लरका है छज्जन... कितनी शान्ति से खेलता फिरता है लेकिन जे हमाई बिटिया सबके कान काटे डालती है...*

घिटोई- *हूँ... इसके ऊपर कोई नहीं है ना इसलिये और जिद्दियाती है। लरका हो जातो तो बखरी को उजेरो तो होतो ही और मौड़ी ढँक जाती, तो अपने आप शान्त हो जाती।*

राधिका धरती खुरचते हुए बोली-

> *अब जो है सो येही है, कौन तुम जानती नईया कि का-का किया एक सन्तान के लिये। ईसुर को देना होता तो दे ना देता दूसरा... लहरिया के बाबू तो कहते हैं महामाई सबका भला बिचार के ही बरदान देती हैं... इतनी कुव्वत तो है नहीं कि दो-दो को पाल लें, दो ज्वार की रोटी तो मुसकिल से होती*

*है... कर्जा उतारते- उतारते कमर टूट रही है, ऐसे में दूसरे को पालना भी तो सहज नहीं।*

घिटोई ने राधिका के कांधे पर हाथ रखते हुए कहा-

*लरका बच्चा... सब अपना-अपना भाग लेके आते हैं लेकिन फिर भी बात तो ठीक ही कहता है माधो... अब हमाये जैसी किस्मत हर कोई की तो होत नईयाँ, राण भई बैठी थी कि ऐसी किस्मत जगाई महारानी ने कि दूध करूला करती हूँ। हैं जरूर सौत के लड़का, लेकिन खाई थरिया नई उठाने देते।*

राधिका भौंहें मरोड़ते हुए बोली- *सही है तुम्हारे जैसे भाग कहाँ? हम तो एक राईभरी बिटिया नई सम्हार पा रहे, तुम तो चार-चार आदमी सम्हारती हो, महामाई का बरदान हर कोऊ तो नई पा जाता।*

घिटोई ने इतराते हुए पल्ला झटका और गर्व भरते हुए बोली- *तू चिन्ता ना कर बिल्कुल, अबकि नौरात में तबिजिया पहरा दूँगी, ऐसी शान्त हो जायेगी कि तू भी का कहेगी।*

*हाँ जिज्जी! कर दो तो तुम्हारी जै हो जाए, महतारी हूँ कसाई थोड़ी जितना उसे चिल्लाती हूँ, उतनी छाती मोरी भी फटती है... सोचती हूँ देखो तो कैसे-कैसे जतन नई किये ई सन्तान के लिये अब मारती फटकारती हूँ... पर कहाँ तक ना रोकूँ कभी तो सखत होना ही पड़ता है। आज पिल्ला, सुंगरिया को दूध देने की जिद्द करती है कल ना जाने का माँगे। हम कौन धन्नासेठ हैं जो बाल-बच्चा को मूड़ पे बिठाये फिरें। एक ना एक को तो करा होना ही पड़ता है। अब बाप दुलारता है तो महतारी को छाती करी करनी पड़ती है आखिर इतनी सी ही तो बनी ना रहेगी। कल सयानी भी होना है तो अपनी चदरिया के भीतर रहना और सहना सब सिखाना पड़ेगा ही और जात की बिटिया पराये घर जाना है जो बाप-महतारी लाढ़कर-करके बिगार लें तो वही लाढ़ ससरे में शूल बन जायेगा।*

घिटोई - *सही कहती है री, पर चिन्ता ना कर... मैं सब ठीक कर दूँगी। ऐसा गड़ा पहराऊँगी कि पानी की धार सी सीधी हो जायेगी... पर चल अभी तो लिवा ला मौड़ी को, पानी बरसईया है।*

राधिका- *आज ना जाऊँगी मनाने, पानी बरसेगा आप आ जायेगी।*

घिटोई ने राधिका का हाथ पकड़ा और बोली- *चल तो, तू भी लड़के बच्चों सी रिसानी बैठी है... महतारी है जा उठा मौड़ी को... मोसे आती तो ले आती देख तो बादल कैसे तड़तड़ाते हैं।*

अम्मा को आते देख लहरिया और सिकुड़कर बैठ गई। राधिका ने पुचकारकर लहरिया को गोद में उठा लिया, अबकि लहरिया ने भी कोई ना-नुकुर नहीं की, आखिरकार चुड़ैल का डर भी तो लग रहा था। लहरिया माँ के कांधे से चिपककर अँगूठा चचोरते हुए बोली- *अम्मा! बाबू, बजार से जित्ती चीज्जू लायेंगे, सब हमाई हैं ना छज्जन को दूँगी ना घिटोई चाची को।*

घिटोई और राधिका दोनों ठहाका मारकर हँस दी। राधिका की गोद से घिटोई ने उसको अपनी गोद में लेते हुए कहा- *अच्छा, हमाई लहरिया अपनी चीज्जू चाची को ना देगी पर हम तो तेरे बाबू से ले लूँगी।*

लहरिया ने घिटोई के ऊपर जमकर हाथ-पाँव फटकारे और उसकी गोद से कूदकर चिल्लाती हुई कोठरी में घुस गई- *नई दूँगी चीज्जू...नई दूँगी।*

अचानक घिटोई के गले में उभरे लाल-लाल निशानों को देखकर राधिका ने पूछा- *जिज्जी! जे गले पर कैसे निसान हैं? आँखें भी कछु सूजी सी लगती हैं, का बात है?* घिटोई बात को टालते हुए बोली-

> *तेरी बिटिया पूरी महामाई का बरदान है बिजली के करेंट सी छिटकती है! जानती है रणापे में मैंने बहुत तकलीफें देखीं पर मजाल जो कभी मेरी आँख में पानी का छींटा भी आया हो। अब तो सुहाग और सन्तान के सौ सुख देख रही हूँ लेकिन जो तेरी कूँख की इस कंकड़िया को कलेजे से चिपका के*

*ठंडक पड़ती है... बो कहूँ नहीं मिलता। छाती जुड़ा जाती है, रस भर आता है जैसे आँखन में, कौन जनम की सगी है मेरी।*

राधिका मुस्कुराई और बोली- *बात ना टारो जिज्जी, तुमाई सब चतुरई समझ रही हूँ, अब साँची कहो का हुआ है?*

*अरे कुछ नई री, तू तो जासूसन बन गई। सबेरे भीत छाप रही थी, पाँव रपट पड़ा और गिर परी बस और का होना है। मुझे कौन जम दण्ड परे होंगे।*

इतना कहकर घिटोई डलिया उठाकर जाने को हुई तो राधिका ने हाथ पकड़कर उसे रोका और बैठा लिया-

*जिज्जी! दुनियाभर की खबरें सुना देती हो लेकिन अपनी देहरी की अगन से अकेली झुलसती रहतीं बताओ तो आखिर बात का है? बहुत दिनों से पूछना चाहती थी पर हिम्मत ना हुई... पर आज तो तुम्हें बताने ही पर है... इतना तो मैं भी समझती हूँ कि कौन घाव कहाँ से मिला है?*

पीड़ा में सहानुभूति और प्रेम की छोटी सी बूँद भी अमृत सी होती है, सारी पीड़ाओं पर जैसे मरहम हो, अन्दर की वेदनारूपी पीप अपने आप बाहर आने लगती है।

घिटोई की देह जैसे ढीली पड़ गई हो, आँखों को इधर-उधर नचाते हुये अब भी दर्द की बूँदे उड़ा देना चाहती थी पर राधिका की नर्म हथेलियों की गर्माहट ने जैसे सबकुछ अपने काबू में कर लिया था। घिटोई के गले में विपरीत धाराओं से झगड़कर आखिर शब्दों ने अपना रास्ता बना ही लिया-

*अब का कहूँ? कैसे का बताऊँ या नहीं समझ नहीं आ रहा? दुनियाभर के सामने ऐसा परदा डाल रखा है कि अपना किया ही साँप बनके लपटा है छाती में..फेंकूँ तो कौन जवाब दूँ... ना फेंकूँ तो प्रान दूं। जादा कुछ कह नहीं सकती बस इतना*

*कहूँगी कि कूँख का ककरा और माँग का रंग कितना ही गड़े निकालके फेंक नईं सकते।*

राधिका ने काँधे पर हाथ फेरा और कहा–

*जिज्जी! तुम कितना ही लुका–छिपा लो मैं सब जानती हूँ कि कैसे नाहर से दर्राते हैं बाप–बेटे तुम पे लेकिन तुम ना तो किसी से कुछ कहती हो ना बताती हो। काहे पंचायत में नहीं रखतीं, ना हो तो थाने चली जाओ, कब तक सहोगी!*

*नहीं राधिका! बइयर का जीवन बड़ी मुसकिल भरा होता है। जगहँसाई होगी और कुछ नहीं दुनिया में औरत जात का कोई नहीं होता, बस जूझें जाओ। जो आज बड़े हिमायती बनके आयेंगे कल बोई सब पीठ पीछे ठठा करेंगे, झकरीली ही सही कम से कम अभे आड़ तो है ही। तुझसे बहन सा मोह है बिल्कुल, तूने घाव पे हाथ धरा तो कराह उठी, पर राधिका तुझे महामाई की सौगन्ध है जो किसी से चर्चा भी करी।*

*ना... ना... जिज्जी तुमाई सौं... बिल्कुल फिकिर ना करो, गाँठ बाँध ली किसी को एक शब्द ना कहूँगी। कभी कोई दरद हो तो कह दिया करो... कछु ना होगा कम से कम जी तो हल्का हो ही जाता है।*

अपने दर्द का बँटवारा करके मन के किसी कोने में घिटोई भी अपने दर्द में आराम महसूस कर रही थी। उसने झट से आँसू पोंछे और मुख पर पहले सी चपलता लाकर बोली–

*अभी चलती हूँ, बड़ी कोठी जाना है... ना पहुँची तो डुकरिया सुना–सुना के करेजा हलकान कर देगी। जबसे उनकी बिटिया का ब्याह का सुदा है मोरे तो प्रान लेने पे उतारू हैं... अभी जुदैंया छिटके खौंड़ा से सब नाज पानी निकरवाना है और जे बादर अलग छाती ताने खड़े हैं... ना जाऊँगी तो कहेगी टारती*

*है, इसलिये सूरत तो दिखा ही आऊँ, बड़ी पुरखिन गली ताकती बैठी होंगी... देर हुई तो लाख सुनाएंगी।*

राधिका– *हाँ, जाओ। चाहे जो होबे अब गाँवदारी तो निभाना ही है, मुझे भी बुलवाया था, पहले दुनियाभर की चिरौरीं करने पड़ीं... जैसे-तैसे नरम पड़ी सो जा हमाई सुपुत्री के मारे दस बातें सुनने परीं।*

घिटोई– *अब हम तुम इसके अलावा कर का सकते हैं, बड़ी छाया तरे हमारा तुम्हारा कौन अस्तित्व रह जाता है, खौंड़न के आगे हम तो धान के कनूका भी ना ठहरे।* इस पर राधिका सोचते हुये बोली–

*हमारे तो प्रान सूखे जा रहे जितनी गगरियाँ बनाईं अगर बजार में चली जातीं तो कुछ पास कौड़ी हो जाती, कुछ काम करा लेते। इस बार पूरा छपरा गिर गया सोचा था उतरवा लेंगे पर अब तो लगता है रही सही आस भी गई... बदरियाँ अलग दुसमन भई हैं, चौमासे से पहले ही ऐसे उमड़ती-घुमड़ती फिरने लगी हैं, जैसे सावन-भादौं लगे होबें।*

घिटोई ने पूछा– *कितनी मँगाई हैं डुकरिया ने गगरियाँ।*

राधिका– *आठ तो दे आई हूँ... बीस और बनानी है अभी, अब का बताऊँ हमारी ही कमबख्ती ठहरी पहले से बना लेनी चाहिये पर कोई खबर ना आई थी तो निश्चिन्त हुये काम कर रहे थे। सोचा शायद बरात शहर से आती है तो गगरियों की काहे जरूरत पड़ेगी लेकिन अब एकदम से बज्र सा पटक दिया।*

घिटोई कुछ सोचते हुए बोली–

*हम्म... सही है, सबने ये ही सोच रखा था। जब ओली हुई तो हम भी निश्चिन्त थे कि कौन यहाँ से करेंगे, शहर की पढ़ी-लिखी बिटिया, लरका वाले भी शहरी, देहात से ब्याह कौन करेगा, पर अब एकदम से पता चला कि सब यहीं होना है... बड़ी पुरखिन की इच्छा थी कि आखिरी ब्याह कोठी से*

*हो, येई से सब मान गये... मुझे तो अभी बाड़े की सफाई भी जल्दी-जल्दी में निपटानी है।*

राधिका ने लम्बी साँस भरते हुए कहा- *शहर से होता तो अच्छा ही था, कम से कम कुछ तो काम बन जाता। अब उनसे तो दमड़ी भी मिलने की आशा नहीं।*

घिटोई ने भौंहें नचाई और बोली-

*हाँ, बात तो ठीक है लेकिन का कर सकत हम तुम, डुकरिया इतनी कंजूसन है कि एक दमड़ी हाथ छुड़वाने में पसीना छूट जाये... अब चलूँ नई तो और देर हो जायेगी...*

*अरे हाँ! एक बात तो पूछना भूल ही गई, ये डुकरा बाहर काहे खटिया डाले बड़बड़ा रहा है, घर-निकारा दे दिया का?* इतना कहकर घिटोई ठठा के हँस दी।

राधिका कुछ कहती उससे पहले माधो भी बाजार से आ गया। घिटोई के सवाल का उत्तर देते हुए बोला- *काहे भौजी! घर-निकारा देने पर ही बाहर खटिया डारी जाती है का?*

*अरे काहे को उल्टा बोलता है रे माधो... मैं तो बस ऐसे ही पूछ रही थी। चल राधिका फिर आऊँगी!...* घिटोई इतना कहकर बड़ी कोठी की तरफ निकल गई।

माधो ने राधिका की तरफ तरेरते हुए कहा- *लाख बार कहा है इससे ज्यादा लाग-लपेटी ना किया कर, करिया बिलार के अँसुआ है जे औरत जिस देहरी पे गई बिना रंतभौंर मचें नहीं रह सकत। मुझे फूटी आँख नई सुहाती, दुनियाभर की बातें यहाँ से वहाँ करती फिरती है फिर घरों के बीच के संग्राम का देहरी-देहरी जाके चटखारे लेती है।*

राधिका- *तुम्हें तो फालतू में चिढ़ने की आदत है उससे। बेचारी सौत के दो-दो मुसटंडों को पाल रही है अकेले और आदमी वहाँ बाहर गाँव बैठा गुलछर्रे उड़ाता है, मारता-कूटता है सो अलग... उससे दो बातें का कर*

*लीं... सुख-दुःख का कह लिया तो तुम्हें आगी छुब जाती है।*

हाथ-पाँव धोते हुए माधो बोला- *गाँवभर में तो बड़ी पहलवानी करती फिरती है, अपने घर से नईं निपट पाती, सब भरम है देखती नहीं गरब तो ऐसा जताती है जैसे बन्ने को नईं... कौनऊ सरग के राजा के घर-ब्याही हो... जिस दिन खुद पर परेगी तब तू मूड़ बजाती बैठ जायेगी।*

राधिका कुछ कहती उससे पहले लहरिया बाबू को जोर से चिल्लाता सुन आँखें मलते हुए आई और बोली- *बाबू! चीज्जू?*

माधो ने चार कंपट निकालकर उसके हाथ पर रख दी तो लहरिया ने झट्ट से मुँह में रखली और फिर हाथ आगे बढ़ा दिया- *बाबू! हमाई पुत्तो, हमाई बन्नूक सब कहाँ है?*

माधो अचकचाते हुए बोला- *बेटा बरसात होने वाली थी ना तो सारे पुत्तो वाले दुकान बन्दकर भग गये थे। देख हम ये रंग लाये हैं अपनी रानी के लिये सबसे अच्छी पुत्तो बनायेंगे।*

लहरिया हाथ-पाँव फटकारते हुये रोने लगी- *नईं बाबू! पुत्तो चइये... अभी चइये...*

राधिका माथा सिकोड़ते हुये बोली- *दिनभर में अभी तो मुश्किल से मानी थी फिर मचल गई। इसकी हर दिन जिद्द बढ़ रही है कुछ समझाओ... ऐसे पुचकार-पुचकार के मनौती करते रहोगे तो बिगर जायेगी... दिन-रात ये ही कहती हूँ... तनक कर्रे होओ!*

माधो ने लहरिया को पुचकारा तो छिटककर दूर खड़ी हो गई- *हाँ कितनी बड़ी हो गयी जो बिगर जायेगी... तनक सी बच्चा है... बो ना खेले रुठे तो का हम और करेंगे जे सब... धीरे-धीरे सब अपने आप समझ जायेगी...*

माधो ने लहरिया को दौड़कर पकड़ा और बाँहों मे झुलाते हुये उसे चुप कराने की कोशिश करने लगा- *हमायी रानी बिटिया है, अबकि बार बाबू जब बजार गये तो तेरी सारी चीज्जू लेकर आयेंगे।*

लेकिन लहरिया का रोना और बढ़ गया। रोते–रोते कहती –

*छ्ज्जन की अम्मा सबकुछ बाजार से लाती है, सुखनी के बाबू ने उसे पुत्तो दिबाई है, कल्लू के बाबू ने गाड़ी दिबाई है, बस हमाये बाबू ने हमें पुत्तो नईं दिबाई। हमें चइये अभी चइये!*

माधो उसे दुलारते हुये बोला–

*हम्म! पर पता है लहरिया बजार की पुत्तो तो तनक में टूट जाती है। सुखनी, कल्लू, छ्ज्जन सबकी चीज्जू चट्ट से टूट जायेगी, देखना... पर हम तो अपनी लहरिया के लिये ऐसी पुत्तो बनायेंगे कि सब लोग कहेंगे, लहरिया अपनी पुत्तो हमें दे दो!*

लहरिया आँखें बड़ी करते हुए सोचकर बोली– *सच्ची बाबू? तो कब बनाओगे हमाई पुत्तो?*

*जल्दी बनाऊँगा बेटा!* – इतना कहकर माधो उसके माथे पर थपकियाँ देकर गोद में झुलाने लगा। लहरिया तो पिता की स्नेहभरी गोद में सो गई लेकिन माधो दीवार से टिका, खुली आँखों से रात को बढ़ते हुये देख रहा था। अंधेरे के साथ–साथ मन पर बेटी की ख्वाहिश का बोझ भी बढ़ रहा था। बाजार से लाये रंगों को देर तक देखता रहा, क्या करता बहुत तौला था लहरिया की पुतरिया ले या ये रंग? पर मासूम ख्वाहिश पर, ये कमबख्त रंग भारी पड़ गये थे, वैसे ये कहने को तो रंग थे पर इनकी चमक का मोल उसने लहरिया के ख्वाहिश भरी आँखों से निकालकर चुकाया था।

# घिटोई

हवायें घटाओं को अपने आँचल में दबाकर उड़ा ले चुकीं थीं और सूरज आकाश को नारंगी रंग में रंगकर अस्त हो रहा था। डलिया कमर में दबाये घिटोई ने कोठी का फाटक खोला तो बाहरी बरामदे में तखत पर बैठीं बड़ी पुरखिन सुपारी कतर रहीं थीं। फाटक खुलने की आवाज सुनी तो जोर से बोलीं – *कौन है फाटक पे?*

घिटोई ने वहीं से आवाज दी– *मैं हूँ बड़ी पुरखिन घिटोई!*

बड़ी पुरखिन ने थोड़ा जोर से कहा– *आजा... बड़ी जल्दी आ गई... पूरी जुदैंया चढ़ आती... तब आती तू!*

घिटोई मचिया सरकाकर बैठ गई– *ना पुरखिन! मढ़िया के बाड़े में सफाई हो रही... बस ये ही कारन देर हो गई... फिर निकली तो गैल में माधो की लुगाई मिल गई।*

बड़ी पुरखिन ने पान बनाकर होंठ तले दबाया और बोलीं–

> *बहानों में तू आकाश में थिगरिया लगा दे! लौलइया परें आई है जाने का काम करायेगी का नहीं, अब चली जा बखरी में खौंड़ा खुला है। रचना की महतारी है वहाँ चार कुन्तल पिसिया निकाल लेना, सबेरे सब नांज धुबने जायेगा।*

घिटोई ने मचिया तखत के पास सरकाई और सुपारी कतरते हुये बोली–

> *हओ! वो सब तो अभी तनक में करा देती हूँ। पर जानती हो बड़ी पुरखिन! आजकल तो धरम को जमानो नईयाँ...*

*काये घिटोई ऐसा का हो गया जो तू धरम-अधरम की तखरिया लिये बैठ गई?...*

*....बड़ी पुरखिन! तुम तो माधो की कितनी मदिद करतीं, इतने बरस का कर्जा लिये बैठा है बो, फिर भी तुम खदनिया की माटी को दाम ना के बराबर लेतीं लेकिन उसको रत्तीभर एहसान नईया, पता है, अब गगरीं ब्याह में बिना पइसा के देनी होंगी ये सोच-सोच के उसकी लुगाई कुढ़ी जा रही है?*

बड़ी पुरखिन ने भौंहें-सिकोड़ीं और पान की पीक को थोड़ा गुटककर खरखराते हुये बोलीं-

*अच्छा! इतनी मरी जाती है तो बिना पइसा छुऊँगी भी ना उसकी गगरियाँ... फिर हरामजादी! छुये हमाई खदनिया की माटी और हमारा धन लिये बैठी है इतने सालों से बो, उसका तो ब्याज भी इतना है कि सालभर मुफत बासन दे... तब भी पूरा ना परे लेकिन हमारा सपूत तो बड़ो दयाबन्त है का कर सकत हम। कहता है ब्याज ना लेंगे... अब बताऊँगी कि देखो कैसी बातें करती है बो माधो की लुगाई...*

*...हाँ सही है, मैंने भी कही बड़ी पुरखिन! कन्या के ब्याव में तो आन गाँव के अनजाने लोग-लुगाई भी अपने दिये का मोल नई लेते। भला धरम का कौनऊ मोल हो सकता है का! फिर तुम तो गाँवदारी के हो, तुम्हारो तो कर्तब्ब है तो तुनककर कहती है ये ही कर्तब्ब निभा-निभा के तो मरे जाते हैं...*

*...अच्छा.. जानती है घिटोई... जब मेरे पास आती है तो कंठ से सुर नहीं फूटते। पीठ पीछे जैसे सुआ के गले में कंठी रच आती है अबकि माधो की लुगाई आये तो ऐसी खबर लूँगी कि जीवनभर याद रखेगी।*

घिटोई अब बड़ी पुरखिन के पाँव दबाते हुए बोली-

*ना, ना बड़ी पुरखिन! ऐसा ना करना... मोरा नाम आया तो बेकार की मुँहजोरी हो जायेगी... एक ही गाँव में रहना है, हम गरीब-गुरुआ बैर-भाव लेके थोड़ी जी सकते... तुम तो जेठी बड़ीं हो... ऐसी तन-तन सी बातों से का फरक पड़ता है... बैसे कुछ ना कहना बड़ी पुरखिन... बिटिया छोटी है बिचारी की, दिनभर उत्पात करती है तो क्रोध में कछु निकर जाता है मुँह से, क्षमा बड़न को चाहिये... छोटन को उत्पात!*

बड़ी पुरखिन ने झटके से पाँव छुड़ाया-

*हओ... अब यहाँ बैठी-बैठी जादा ज्ञान ना बघार, जा काम कर... ब्याह में चार दिना भी ना रह गये हैं और काम है कि चैत सो पसरो परो है, समिटाये नहीं समिट रहा, दीन-दुनिया छोड़ तेरी अपनी बता गाँवभर की लगाई-बुझाई करने में रत्तीभर नहीं चूकती लेकिन काम के बखत ऐसे आती है जैसे बड़ी कहीं की कलेक्टरनी हो, थन्ना छूके चली जाती है।*

घिटोई- *ऐसो ना कहो बड़ी पुरखिन, तुम्हारी एक आवाज पे दौड़ी चली आती हूँ... वर्ना है किसी में है हिम्मत जो घिटोई से काम करा ले।*

इतना कहकर घिटोई भीतर जाने को हुई तो बड़ी पुरखिन ने कहा -

*बड़ी बाभा बताती है रानी रूपमती, जे भी बतायें जा कि मढ़िया के बाड़े की सफाई हो पाई कि नईं कि बस यहाँ से वहाँ बस बतियाती घूम रही है।*

घिटोई जाते-जाते ठहर गई क्या बताये क्या ना बताये मन बहाना गढ़ ही रहा था कि बड़ी पुरखिन ने कहा-

*का स्वांग गढ़ूँ यही सोचती है ना? तेरी तो रग-रग से चिन्हार हूँ... का मूड़ मारें तेरे साथ... हम खुद ही देख आते हैं।*

घिटोई झटके से पलटी और बोली-

*अरे ना पुरखिन! तुमसे कोई स्वांग रच सकता है भला, उड़ती*

*चिरैया के पर गिन लेतीं तुम तो... इतना तो मैं भी जानती हूँ! तुम बिल्कुल फिकिर ना करो, तुम्हारे जाने की का जरूरत, बिल्कुल सफाचट्ट करवा दी है। लड़कों ने सब बिल्कुल चमाचम कर दिया है, आखिर हमारी भी जिम्मेदारी बनत है। रचना बिन्नू अब अकेली कोठी की थोड़ी हैं... गाँवभर की बिटिया हैं।*

*हाँ... हाँ... ठीक है, जा तू काम कर, इतना कहकर बड़ी पुरखिन मन ही मन बुदबुदाईं– इसका कौन भरोसा एक की अट्ठारह जोड़ती है। आज खुद ही देख आती हूँ जाके... अपने कामदार को आवाज देकर बताया कि वे लहर माई के बाड़े तक जा रही है, कोई पूछे तो बता देना।*

बड़ी पुरखिन मढ़िया की तरफ निकल गईं। घिटोई के मन में शंका हो आई थी कि कहीं बड़ी पुरखिन बाड़े की तरफ चली गईं तो गाँजे की पौध ना देख लें अगर देख ली तो मेरे प्रान ले लेंगी, लरकन को जेल होगी सो होगी, आदमी मोरी पूजा अलग करेगा। कैसे भी करके मुझे वहाँ जाना ही होगा। उसने बैठक में झाँका तो बड़ी पुरखिन नहीं थीं, अब तो घिटोई को काटो तो खून नहीं। उसने अपना झोला उठाया और जाने को हुई तो रचना की अम्मा की आवाज आ गई– *अरी कहाँ को चली, अभी तो आई है?*

*अभी आती हूँ दुलइया, तनक मोहलत दे दो!* इतना कहकर लम्बे-लम्बे डगों से बाहर की ओर निकल गई।

रचना का ब्याह मढ़िया के बाड़े से ही होना था। पीछे की तरफ टेंट लगने की तैयारी थी और वहीं पर गाँजे के कुछ पेड़ लगे थे। घिटोई ने लड़कों से लाख बिनती की थी कि पौध काट डालें या उसे काट लेने दें लेकिन ना तो खुद काटी ना ही उसे उखाड़ने दी। अब बड़ी पुरखिन बाड़े का मुआयना करने निकल पड़ी थीं।

घिटोई ने खोरों-खोरों से लगभग भागते हुये अपनी कुठरिया पर जाकर दम ली। दोनों सुपुत्र गाँजे का धुआँ उड़ाते ताश खेलने में मगन थे।

घिटोई दाँत किटकिटाते हुए बोली- *अरे हरामियों! तुम्हें पैदा होते ही काये ना गण्ड दिया तुम्हारी महतारी ने कम से कम जे कुकरम ना देखने पड़ते... खुद तो मर गई... मोरी छाती के लाने छोड़ गई जे बिष बेलें।*

घिटोई हंसिया उठाकर पौधों पर टूट पड़ी- *अभी लुघरिया लगाती हूँ इस नासपरी गाँजन की पौध में... ना रहे बाँस ना बजे बाँसुरी।*

बड़ा लड़का झटके से उठा और बोला- *नाटक ना कर ज्यादा, पौध को हाथ भी लगाया तो थुथरी गुधल दूँगा तेरी।*

घिटोई ने झटके से हंसिया एक पौध पर मारी और बोली-

> *अरे कीरा पर-पर मर हो तुम सब... जो तुम्हारी अपनी महतारी होती, उसको भी जेई बखान करते का! मोरी तो जब देखो तब इज्जत-बेज्जती करत रहत हो। अब आ रही मुखिया की डुकरिया सो जेहल धरी।*
>
> *पहले ही बताये देती हूँ कि मैं तो थाने में कदम ना धरूँगी फिर चाहे गाँवभर में तुम्हारी करतूतें उजागर हो जायें, जिसके दम पे मुझ पर ऐसे नाहर से दर्राते हो वो तुम्हारा बाप... ठेके पे मुँह औंधाये डला रहता है।*

छोटा लड़का कुछ लथराती सी आवाज में चीखा- *आन दो डुकरिया को हम भी देख लें आज... बड़ी ठेकेदारनी बनी है... ढकेभर की नहीं और मर जायेगी।*

घिटोई दाँत पीसती हुई बोली-

> *आहा... हा... ज्यादा नर्रा ना, बड़ा सूरमा बना है। एक लट्ठ को नईयाँ, मुखिया जोर के बोल भी जायें तो बाप-बेटा तीनों के तीनों ठांड़े मूत दोगे... हा-हा बिनती करते फिफियाते घूमोगे... मोरी जो गत होगी सो होगी ही... बड़े लड़ैया बने हैं,*

*अपने पाँवन पे तो स्थिर खड़े नहीं रह सकत, बातें ऐसीं करत हैं कि जैसें आगी खें लत्ता की पुटरिया में बाँध लैंहें... आज ई नासगये गाँजे का जे टंटा खतम कर ही देती हूँ... सुख की दो घड़ी नईयाँ इसके मारे, हर घड़ी ऐसो लगत है जैसे तलवार की धार घिची पे धरी है, तनक टरे कि खच्च!*

घिटोई ने चूल्हे में दबा कंडा उठाया और गाँजे के पास पहुँची कि छोटे लड़के ने घिटोई का टेंटुआ पकड़ लिया और गुर्राया– *आज इसका काम खतम ही कर दो... जाने कितना प्रान खाती है... रोज-रोज की किटकिट ही खतम। सबेरे की इतनी जल्दी भूल गई... एक बार भी ना सोचूँगा कि महतारी है और पलभर में चिरैया दबा के निपटा दूँगा... समझी!*

बड़े लड़के ने हाथ छुड़ाया और बोला– *ऐ मूरख! का करता है... सारा ब्यापार छिन जायेगा फिर भूखे मरने की नौबत आयेगी... मरने दो कितना टर्राएगी, अभी तो जे समेटो कहीं वो मुखिया की डुकरिया आ गई तो सही में मुसीबत हो जायेगी।*

इस बीच घिटोई छुटककर भाग खड़ी हुई सीधे तालाब के पास जाकर साँस ली–

*अपनी जाँघ उघारो तो अपनी लाज जाती है अब किससे का बताऊँ की अपने सपूत ही जब राक्षस बने सवार हों। अच्छा होता जो वो देवी निपूती होती... नईं तो पैदा होते ही टिटुआ दबा देती। खुद तो सरग राजा हुई और ये छुट्टा साँड मोरी जान को छोड़ गई। कैसे का करूँ समझ नईं आता... भई गत साँप छछूंदर केरी, कुछ पूछना तो छोड़ो शब्द निकारना ही गुनाह है। किसी से कछु कह भी नईं सकती। जब गाँवभर ने रोका था कि उस शरबिया से ब्याह ना कर तब तो खसम की खुमारी में मर गई, अब भुगत घिटोई! मैं तो कहती हूँ मर जायें ठठरीबंधे, गाँवदारी के सामने का भरम टूटता है तो टूट जाये का करेंगे खिल्ली ही करेंगे और का।*

कुछ देर बाद फिर बुदबुदाई– *ना... ना... ऐसा नहीं कर सकती, अपने कूँख जाये को किसके भरोसे छोड़ूंगी... अब जो महतारी का धरम है सो करे देती हूँ... मोरो लरका पलपुस जाये फिर तो सरगे जाओ... हम तो आज मरे सकारें दूसरो दिन, और ना मरे तो देहरी–देहरी पे हमारे लाने चूल्हे सिलगे हैं!*

घिटोई मन में बुदबुदाती हुई आगे बढ़ी तो देखा, बड़ी पुरखिन माधो की देहरी पर खाट पर बैठी बड़बड़ा रही थीं– *क्यों रे माधो! ऐहसान तो छोड़, तुझे हमारे लिये गगरियाँ बनाने में आफत आती है। तेरी लुगाई को बड़ी आगी छुब रही है, बता तो हमने कब तुझे तेरी गगरियों का दाम नई दिया?*

माधो हाथ जोड़कर बोला– *ना... ना... बड़ी पुरखिन! आप से ही तो हमारी रोजी चल रही... हम ऐसो कभी नई कह सकत और हमारी खुद एक बिटिया है... जानत हैं बिटिया के ब्याह में दिये दान से बड़ा का धरम... ऐसा बिल्कुल नहीं है।*

बड़ी पुरखिन तुनककर बोलीं– *अब तेरा धरम मुफत में बिल्कुल ना लेंगे, अपनी के लिये सम्हार के रख कहीं खरच ना हो जाये। तेरी एक–एक दमड़ी चुका दूँगी। कोई कुबेर के कंडों से नई पकती तोरी गगरियाँ जो हम ना दे पायेंगे।*

राधिका देहरी पर आँखें गड़ाये चुपचाप सुन रही थी, माधो आँखें तिरछी करके राधिका को गुस्से से देख रहा था।

दिन ढल आया था, पेड़ों के कारण अंधेरा जल्दी ही दिखने लगता था, बड़ी पुरखिन– *मन ही मन बुदबुदाई लो जो काम करने निकली थी वो हो नई पाया और अंधेरा हो चला... दिखाई देना भी बन्द हो गया... अब घर ही जाती हूँ... मढ़िया कल देखूँगी।*

बड़ी पुरखिन के लौटने की बात सुनकर ओट में खड़ी घिटोई ने एक लम्बी साँस भरी और तेजी से कोठी की तरफ दौड़ गई– *डुकरिया पहुँचे*

*उससे पहले पहुँच जाऊँ। नहीं तो अब जे दस बातें सुनायेगी, घिटोई तो बनी ही है घुट-घुट के मरने के लिये है।*

इधर बड़ी पुरखिन लठिया टेंकती हुई कोठी को जाने को हुईं तो माधो ने कहा- *चलो! मैं छोड़ दूँ!*

बड़ी पुरखिन ने झिड़कते हुए कहा- *हट्ट! अभी इतनी असद्ध ना हुई हूँ कि गली चलते आदमियों से सहारा लेना पड़े... जिंदगी बीत गई इन खोरन में बिना देंखें गली के ककरा तक नाक जाऊं...*

माधो ने पाँव छूकर राम-राम कहा और उन्हें विदा किया। उनके जाते ही राधिका पर उबल पड़ा-

> *देख लिया लगा दी ना दियासलाई... बड़ी हिमायती बनी थी उसकी... कितनी देर भई यहाँ से गये उसे? कहत-कहत जीभ घिस गई कि उस घिटोई के सामने देखभाल के बोलाकर लेकिन राम कहो जो तू मेरी सुन ले जबकि तू जे भी अच्छे से जानती है कि वो एक की अट्ठारह जोड़ के चुगली लगाया करती है फिर भी तुझे बस वो ही एक संगिन मिलती है... अब सुन लिया ना आत्मा तृप्त हो गई कि नहीं? सोचता हूँ जितना मुखिया से बना के रखूँगा... उतना काम आयेगा लेकिन नित नई मुसीबत... अब राम जाने का-का गुनेगी डुकरिया।*

राधिका धीरे से बोली- *ठीक है बक लेन दो, चार बातें सुनाने के बाद कुछ पैसा दे देंगी तो का बुराई है... सुन लेंगे, कम से कम कुछ तो कर पायेंगे।* इस पर माधो माथा सिकोड़ते हुए बोला-

> *ऐसी बातें करती है जैसे कुछ जानती ही नहीं। झाल भरा कर्जा है उन्हीं को चुकाना है हमें... वो तो मुखिया दाऊ कछु नईं कहते लेकिन अपनी महतारी की बात कब तक ना सुनेंगे और बड़ी पुरखिन को नईं जानती का तू... चार जनों के*

*सामने गायेंगी वो तो ठीक ही है। नाम भर का पइसा देंगी और माटी का मोल बढ़ाने का बहाना मिल जायेगा सो अलग ... इतनी सी बात तुझे समझा-समझा हार गया हूँ कि गरज जिसकी हो झुकना भी उसे ही पड़ता है।*

राधिका चुपचाप सुन रही थी, लहरिया ने बाबू को जोर-जोर से चिल्लाते सुना तो सिसरियानी सी अम्मा से चिपककर खड़ी हो गई। लहरिया को रुआँसा देख माधो चुप हो गया और उसे गोद में उठाकर बोला- *का हो गया लहरिया को! मुँह डार के काहे खड़ी है?*

लहरिया बाबू के मुँह को अपनी हथेलियों से दबाती हुई बोली- *अम्मा को नई डाँटो, बाबू! हम रोने लगूँगी।*

माधो हँसा और बोला- *चिल्लाता थोड़ी हूँ, बस हम तो बातें कर रहे थे जोर-जोर से, तेरी अम्मा के कान में कूरा जमा हो गया है ना इसलिये।*

लहरिया तपाक से बोली- *तो हमें नीचे उतारो बाबू! हम झाड़ू लगा दूंगी अम्मा के कान में!*

लहरिया के जवाब से राधिका और माधो दोनों हँस पड़े। सारे मान-अपमान एक छोटी-छोटी बातों से ऐसे दूर हट जाते हैं जैसे किसी ने आकाश से कोई जादुई छड़ी फेर दी हो। माधो ने लहरिया को दुलारते हुए राधिका से कहा- *कल कोठी पे चली जाना, अब बवाल खड़ा हो गया है तो संभालना तो हमें ही पड़ेगा।*

राधिका ने हामी भरी और अन्दर चली गयी। लहरिया माधो के गालों पर हाथ फेरते हुए बोली- *बाबू! हम भी जाऊँगी कोठी पे, वहाँ पे कित्ते अच्छे-अच्छे घर हैं।*

*हाँ! ठीक है, हमाई रानी बिटिया, कल अम्मा के साथ जायेगी। अब जा दद्दा के पास खेल, बाबू को काम करना है।*

दद्दा का नाम सुनते ही लहरिया के मन का सवाल उठ बैठा-

*बाबू! जे बताओ दद्दा कब मरेंगे? अम्मा कहती थी हम उनको*

*सोने नई दूँगी तो दद्दा मर जायेंगे... हमने तो उनको सोने नई दिया फिर काये नई मरे?*

*अरे... अरे... चुप! सबेरे बताया था ना... ऐसा नहीं कहते और लहरिया की अम्मा! तूने जे सब इससे काये कहा?*

लहरिया बीच में ही बोल पड़ी- *नई बाबू अम्मा को नई डाँटो, दद्दा रोते थे कहते थे भम्मान के पास जाना, और अम्मा भी!*

*का कह रही है मौड़ी... दद्दा रोते थे, का हुआ?*

माधो लहरिया को लिये उठकर सीधे दद्दा के पास गया, इधर राधिका ने माधो की बात सुनी तो सहम गयी-

*लो अब हुआ बवाल, आज जाने किसका मुँह देखके उठी थी। अब लहरिया के बाबू प्रान ले लेंगे मेरे, का था, क्यों था? जानेंगे बाद में। आज का दिन ही अठैन भरा था, एक बवाल शान्त तो दूसरा उखर पड़ता है। राधिका चुपचाप देहरी पर आकर खड़ी हो गई। का हुआ दद्दा लहरिया का कहती है कि तुम रोते थे, इसने फिर कुछ कहा क्या?*

राधिका ने कहा- *उसे ना तरेरो, दद्दा को लहरिया बार-बार परेशान करती थी तो मैंने कहा जादा परेशान करेगी तो दद्दा चले जायेंगे... इसने जाके दद्दा से कह दिया सो बस....*

दद्दा अपने गले में फँसे कफ को हकालते हुए बोले-

*जान दे माधो तनक सी बात के पीछे सबेरे से बतबड़ो हो गओ अब और ना बढ़ा। बाल-बच्चा की बात पर मैंने नासमझी करी अब तू अपना दिमाग ना उरझा। दिनभर का थका माँदा आया है जा ब्यारी कर फिर काम में भी जूझना है... जा उठ यहाँ से।*

राधिका अपनी सफाई में कुछ कहती उससे पहले ही माधो ने गम्भीर होते हुये कहा-

*बिटिया के सामने कछु ऐसी बात नहीं कहना चाहिये जो उसके दिमाग में घर बना ले और किसी की आत्मा को कष्ट पहुँचाये। आज जो हुआ सो हुआ आगे से ऐसा ना हो जे बात मगज में डाल लो।*

राधिका ने लम्बी साँस भरी– *रामधई! आज बड़ी बिपद टर गई, तनक भी दद्दा ने उन्सारी कर दी होती तो इनने तो आज मेरे पुरखे उतार लाने थे धरती पर।*

दिनभर की उठापटक के बाद आखिर रात हो चली थी। आज सबके मन अशान्त थे, जैसे आज की भोर कोई मथनी लेकर आयी थी और सबको पूरी तरह से मथकर चली गयी पर अच्छी बात ये होती है कि समय कितना भी मुश्किलों भरा हो आखिरकार उसे डूबना ही होता है।

# कागज का मन

सबेरे से चार बार फुल्ले आकर बड़ी पुरखिन का संदेशा लेकर आ चुका था। माधो सिर पर गमछा लपेटे, कई झरोखों को सहेजे तन पर मटमैली बण्डी और अधरंगा नेकर पहने माटी में चाक से घड़े उतारने में लगा था, उसके हाथ दोगुनी गति से चल रहे थे।

*अब यहीं बैठ जाता हूँ कक्का, सबेरे से पुरखिन इत्ते बार दौरा दई हैं कि छक गया हूँ।*

फुल्ले ये कहते हुये बखरी में ही बैठ गया। अब राधिका भी अवा लगाने के लिये कंडे इकट्ठे करते हुये, बड़बड़ाकर रूखेपन से बोली–

*सबेरे से देहरी खौंद डारी फुल्ले, अरे हाथ हैं कौनऊ मशीन नहीं बन जायेंगे तो ले ही आऊँगी। बड़ी पुरखिन को तनक सबुर नईयाँ। अब जल्दी-जल्दी करके दे दीं तो और छोटी सी भी खोट रह गई तो दस बातें खुद सुनायेंगी।*

*मैंने कहा भी था... बड़ी पुरखिन इतनी जल्दी ना हो पायेगा। तो तुनककर बोलीं थीं... ज्यादा नखरे ना कर, तेरे यहाँ से ले रहे हैं, नई तो सहर से मँगा लेते हम तो। सोचा था एकबार की माटी से खपरा पाथ लेंगे लेकिन..ना तो बो माटी देंगी और ना ही पइसा... अब ना जाने जे छपरा कैसे सम्हरेगा।*

माधो ने राधिका को रोकते हुये कहा–

*बसकर बो फुल्ले यहीं बैठा है और उसके सामने रामायन सी*

*बाँच रही है, बैसई वो रिसानी बैठी हैं और उसने तनक भी उन्सारी कर दी तो और आफत हो जायेगी और इतना काहे परेसान है जब दुनियाभर के संकटों से जूझकर हम निकल आये तो जे छपरा कौन गैल का है, रही पइसा की बात तो बो बड़ी पुरखिन हैं... बड़ी पुरखिन... उनके हाथ से तो मैल भी ना छूटेगा, दस रूपये भी दे दें एक गगरी के तो भली समझो, नईं तो कहो ये कहके टरका दें कि खदनिया के हिसाब से काट लेना।*

राधिका– *बात तो ठीक है, खूब जानती हूँ उनको, जितनी बड़ी कोठी उतना ही हिया छोटा है, पर गाँवदारी तो छाती पर धरी है, बैर तो ले नईं सकते।*

माधो ने राधिका को चुप कराकर फुल्ले से कहा–

*तू कब तक यहाँ समाधि लगाये बैठा रहेगा, अब गगरियाँ पकने में तो अपना समय लेंगी, अवा में तो बैठ ना रहेंगे और ना ही तेरे बैठने से गगरियाँ कहेंगी कि लो हम जल्दी पक जाते हैं, तू अभी जा बड़ी पुरखिन से कहना बिल्कुल परेसान ना हों मैं समय से लेके आ जाऊँगा गगरियाँ।*

फुल्ले हामी भरकर बेमन से चला गया। तभी लहरिया आँखें मींड़ते हुये बखरी में आ गई। लहरिया ने इतनी सारी गगरियाँ और माटी देखी तो ऐसे चहक उठी जैसे कोई खजाना देख लिया हो। दौड़कर बाबू की पीठ पर सवार हो गई और बोली– *बाबू! क्या कर रहे हो?*

माधो ने गगरी को धरती का सहारा दिया और उसे गोद में लेकर चूमते हुए कहा– *गगरी बना रहे हैं, रानी बिटिया।*

लहरिया – *क्यों बना रहे हो?*
माधो– *बड़ी पुरखिन के यहाँ जाना है।*
लहरिया– *क्यों जाना है?*

माधो– *रचना दीदी का ब्याह है ना!*

लहरिया– *तो हम भी बनाऊँ?*

माधो – *ना मेरी अम्मा! जा तू यहाँ से। बीतेभर की है और सवाल इतने करती है कि जवाब देने वाला हाँफ जाये... देवता भी साँस लेते होते तो तुझे जवाब देते-देते काठ की मूरत बन जाते... जा खेल बाहर... माटी में सनके ना बैठ लहरिया... अम्मा नाराज होंगी।*

*ना बाबू! हम भी बनाऊँगी गगरी, ऐसे-ऐसे* – माटी पर हाथ पटकते हुये बोली।

माधो ने परेशान होकर राधिका को आवाज दी– *ले तो जा यहाँ से, जाने कितना मोह है माटी से, तनक साँस पाई नहीं... सनके बैठ जाती है।*

राधिका पास आकर बोली– *माटी से मोह क्यों ना होगा, माटी गोंठने वाले की बिटिया जो ठहरी, हुनर कहीं अलग से तो आता नहीं, बाप-महतारी से ही आता है!*

लहरिया को राधिका ने गोद में उठाया तो वो पाँव फटकारते हुये चिल्लाने लगी– *हम भी मटका बनाऊँगी, अम्मा छोड़ो! हमें भी बनाना।*

राधिका – *चुप! जे मटके बड़ी पुरखिन के यहाँ जाना हैं, एक भी खराब हुआ तो प्रान ले लेंगी। देखा था ना कैसे गुस्सा कर रही थीं तुझ पर।*

लहरिया ने ठुनकते हुए कहा– *नई करूँगी खराब अम्मा! हमें भी बनाना, नई करेंगी गुस्सा बड़ी पुख्खिन... हमें बनाना...*

लहरिया को उसकी हठ से डिगाने का एक ही तरीका होता था कि उसका ध्यान दूसरी तरफ लगा दिया जाये, राधिका ने उसे गोद में बैठाया और दुलारते हुए कहा–

> *हमाई लहरिया तो कितनी सुन्दर है, चल तो तेरी नजर उतार दूँ! राधिका ने झाड़ू उठाई और लहरिया के इर्द-गिर्द घुमाती बुदबुदाने लगी– दाई की, दद्दा की, माई की, बाप की, पुरा की पड़ोस की, गैल की घाट जीकी नजर लगी हो ऊकी*

*आँखें चटर-चटर हों...और झाड़ू पर थू-थू करती हुई झाड़ते हुए बाहर ले गई। अरे वाह! हम तो भोत सुन्दर हूँ अम्मा.. . दद्दा की भी नजर उतारूँगी हम... बो भी भोत सुन्दर हैं, इतना कहकर लहरिया ने अम्मा के हाथ से झाड़ू छीनी और सीधे दद्दा के सामने जाकर ठहरी और बुदबदाई- नजर बड़मबड़म...बड़मबड़म...आँखें चटपट बड़मबड़म...!*

ऊँघती सी बखरी में खिलखिलाहटें गूँज गई, अब नजर उतरने की बारी बाबू की थी लहरिया झाड़ू लिये बाबू के पास पहुँची तो राधिका ने उसे गोद में उठा लिया, लहरिया कसमसाकर गोद से कूदी और बोली- *अम्मा! तुम्हें कछु समझ नई आता, अभी बाबू की नजर भी तो हम उतारूंगी और अपनी भाषा में नजर टोटका उतारती झाड़ू फेरने लगी।*

राधिका हँसते हुये उसे गोद में लेकर बोली-

*देखा हमाई लहरिया कित्ती सुन्दर है, कैसे चटपटा के नजर उतर गई पर जे सुन्दरी माटी में डूबेगी तो बुरई हो जायेगी और फिर बड़ी कोठी के ब्याह में ना जा पायेगी... देखा था ना बड़ी पुरखिन कैसी नाराज होती थीं फिर तू ऐसे माटी में छप के जायेगी तो तुझे दूर से ही भगा देगी।*

बड़ी कोठी का नाम सुनते ही लहरिया ठहर गई और बड़े गौर से अम्मा की बातें सुनी-

*हाँ अम्मा! पर हम तो नहा लूँगी तो फिर सुन्दर बन जाऊँगी, अभी हम बाबू की नजर उतारूँगी फिर मटका बना लूँगी और हन्नी कर लूँगी?*

राधिका सिर हिलाते हुए गुरगुराई -

*सब तर्क हैं बिटिया के पास! बेटा! अगर हम और बाबू मिलके मटका बनायेंगे तो पैसा आयेगा फिर अपने छपरे में पानी नई बरसेगा। तेरी पुत्तो भी आ जायेगी लेकिन अगर तू*

*भी हमारे साथ बनाने बैठ गई तो हमें पानी कौन पिबायेगा, फिर हम दोनों प्यासे मर गये तो ना मटके बनेंगे... ना पैसे होंगे और ना तेरी पुत्तो आयेगी अब बता तू क्या करेगी?*

लहरिया– *अच्छा तो तुम भम्मान जी के पास चले जाओगे, ना तो अम्मा फिर भम्मान जी को भी ले आना।*

राधिका ने अबकि मिट्टी का लोंदा जमीन पर पटक दिया कुछ देर उसे टकटकी लगाकर देखती रही फिर बोली– *ठीक है हम चले जायेंगे भगवान् के पास पर तू सोच ले कभी ना आयेंगे तेरे पास। हम दोनों छू मन्तर हो जायेंगे फिर तू चिल्लाती फिरेगी तो भी ना आयेंगे। अब बता क्या करें जायें भम्मान के पास?*

लहरिया सहमकर अम्मा की छाती से चिपक गई– *नईं अम्मा... छू मन्तर नईं होना... हम पानी पिलाऊँगी... मटका भी नईं बनाऊँगी और भम्मान भी नईं चइये!*

राधिका ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा– *जा तू अब छज्जन के साथ खेल बाहर।*

लहरिया– *फिर हम पानी कैसे पिलाऊँगी?*

राधिका– *हम बुला लेंगे, अभी जा पनमेसरी।*

लहरिया खिलखिलाती हुई बाहर पहुँची तो बच्चे कुश्ती खेल रहे थे। छज्जन और कल्लू पहलवान थे बाकी सब तालियाँ पीट–पीटकर चिल्ला रहे थे, जे पटका... ए धचाक... कल्लू छोड़ना नईं, इस बार तो पटक ही देना, बहुत शान दिखाता है अपनी बन्दूक की! मार–मार!

लेकिन बच्चों के इस उत्साहवर्धन का कोई फर्क नहीं पड़ा, छज्जन दाँव जीत गया। अपनी पिस्तौल जेब से निकालकर मुँह से धांय–धांय की आवाज निकालता और फिर *'हमाये कान में नील का डोरा हम नईं जानत लगे बचे, भग जाओ सब'* चिल्लाते हुये चारों तरफ दौड़–दौड़कर सबको चिढ़ाने लगा। लहरिया कुछ देर तो चुपचाप खड़ी रही फिर जोर

से बोली– *छज्जन! हम भी धांय-धांय करूँगी, अपनी बन्नूक दे दे!*

छज्जन बन्दूक उसके मुँह तक ले गया और बोला– *ले, जैसे ही लहरिया ने लेने को हाथ बढ़ाया तो बित्तेभर की जीभ निकालकर हवा में लहराता चिल्लाते हुए दौड़ने लगा, ति...ली...ली...ली, ले...ले...ले...आ..आ.. बन्दूक ले।* लहरिया गुस्से से मुँह फुलाये उसे घूरती खड़ी रही जैसे अभी खा जायेगी।

छज्जन फिर बोला– *अच्छा... तू धूरा में लोट जा तो पक्का दे दूँगा।*

लहरिया चीखी– *कुत्ता, हलामी!*

छज्जन उसके पास आकर बोला– *का कहा तूने? गारी देती है ? कहाँ से सीखी, रुक जा तेरी अम्मा को बताऊँगा?*

लहरिया डरी पर उसने छज्जन के हाथ से बन्दूक छीनी और चबूतरे पर रखकर उसपर जोर से कूद पड़ी, बन्दूक चार टुकड़ों में टूटकर धराशाई हो गई। अब तो छज्जन के गुस्से का ठिकाना नहीं था, उसने लहरिया के बाल पकड़े और एक जोर का घूँसा पीठ पर दे मारा, लहरिया रोने लगी और छज्जन के बाल पकड़ गई। लड़ाई बढ़ती देख सब बच्चे तितर-बितर हो गये, कल्लू लहरिया के दरवाजे से चिल्लाता हुआ भागा– *चाची! लहरिया और छज्जन कसके लड़ते हैं।*

राधिका झटपट उठी और देहरी से ही चिल्लाई– *अरे क्यों लड़े मरे जाते हो, जे दोनों जाने कौन जनम के बैरी हैं, घरी भर पटे बिना नहीं रहते और क्षिनभर पटती भी नहीं?*

उसने दौड़कर दोनों को अलग किया– *क्यों रे छज्जन काहे मारता है, कितनी छोटी है लहरिया तुझसे?*

छज्जन बाल संभालते हुये– *चाची! इसने मेरी बन्दूक चुरकन कर दी।*

राधिका ने लहरिया का कान पकड़ा– *क्यों तोड़ी तूने उसकी बन्दूक?*

लहरिया– *हमनें नई तोड़ी अम्मा, पीपरा की चुलैल ने तोड़ी।*

छज्जन– *झूठ क्यों बोलती है, तूने ही तो पैरों से कुचर डाली?*

राधिका– *अब ये पीपरा की चुड़ैल किन्ने बताई तुझे?*

इतने में छज्जन दौड़ लगाकर दीवार की ओट में छुप गया, राधिका चिल्लाई– *छज्जन! बिटिया को उल्टा-सीधा डरवाया तो तेरी अम्मा से सीधे शिकायत करूँगी। कोई चुड़ैल नहीं होती, अब बता तूने क्यों तोड़ी उसकी बन्दूक, बड़ा भइया है ना बो?*

लहरिया– *अम्मा! बो कहता था... धूरा में लोट जा तब बन्नूक दूँगा, हम माटी में छप जाती तो तुम छू मन्तर हो जाती फिर पइसा नईं आते और हमाये छपरे में बरसात बन्द नईं होती।*

लहरिया के इस मासूम से उत्तर पर क्रोध करे या फिर उसे छाती से लगा ले राधिका समझ नहीं पा रही थी, उसने लहरिया का हाथ पकड़ा और घर की तरफ ले जाने लगी।

दीवार के पीछे छुपा छज्जन चिल्लाया– *अब आना तू हमारे साथ खेलने, तेरी मेरी कुट्टी!*

लहरिया ने भी मुड़कर नाखून दाँत से काटकर कुट्टी का इशारा किया और अम्मा से बोली– *अम्मा! बन्नूक चइये!*

राधिका ने कुछ ना कहा, लहरिया फिर बोली– *अम्मा ! बन्नूक चइये!*

राधिका बोली– *बन्दूक से गोली निकलती है और वो धांय से धस जाती है फिर लहरिया सब छू मन्तर हो जाते हैं, अब बता तुझे सबको छू मन्तर करना है का?*

लहरिया ठहरकर बोली– *पर छज्जन भी तो धांय-धांय करता था वो क्यों ना छू मन्तर हुआ, और तुम भी नईं, और हम भी नईं।*

राधिका ने कहा– *जैसे ही सब लोग छू मन्तर होने वाले थे वैसे ही बन्दूक टूट गई और सब बच गये।*

लहरयिा सुर खींचते हुए बोली– *अच्छा... इसलिये छज्जन रोता था ना अम्मा, कि सबको छू मन्तर नईं कर पाया?*

राधिका ने उसे दुनियाभर की पट्टी पढ़ाई तब जाकर उसके सवालों पर लगाम कसकर भीतर ले जा पाई।

इधर छज्जन रोता हुआ दौड़ा जा रहा था कि घिटोई रास्ते में ही टकरा गई, बेटे को ऐसे रोते हुये भागते देख जैसे उस पर कोई बिजली टूट पड़ी हो। घिटोई पीछे दौड़ी और उसे पकड़कर भींच लिया–

*का हुआ रे! भइया ने मारा है का? दिखा कहाँ मारा, लड़खड़ाती और भय से डूबती उबरती बोली तू अभी घर ना जाना बिल्कुल बाबू तड़तड़ाया बैठा है, चुप हो जा कोऊ ने देख लओ तो पूछ बैठे है, चुप हो जा।*

छज्जन छटपटाकर अम्मा के आलिंगन से छूटा और बोला–

*नईं अम्मा, भइया ने नईं... लहरिया ने मारा... उसने हमारी बन्दूक भी तोड़ दी।*

घिटोई किटकिटा के बोली– *इतनी हिम्मत उस भुण्टिया सी मौड़ी की कि मोरे मौड़ा को मारे... चल तो देखूँ उसे।*

छज्जन छाती ताने अम्मा का हाथ थामे सीधे लहरिया की देहरी पर रुका। घिटोई देहरी से ही चिल्लाई –

*ओ बड़े बाप की महारानी... बित्तेभर की है नईं और मोरे लरका से उरझने चली है।*

राधिका बाहर आई– *का हुआ जिज्जी, ऐसे क्यों चिल्लाती हो?*

घिटोई तेज आवाज से चिल्लाते हुये– *ये तेरी सुघरकुमारी मोरे लड़के को मारे और मैं चिल्लाऊँ भी ना!*

माधो दाँत किटकिटाता कुछ कहने को उठा ही था कि राधिका ने उसे आँखों से ही रोकते हुये कहा– *तुम भीतर जाओ, लुगाईयों का झगड़ा है हम निपट लेंगी।*

माधो मन पर धीरज का बंध कसे घिटोई को घूरता हुआ बाहर निकल गया जिस पर घिटोई तुनककर बोली–

*काये को भगा दिया कह देती जो कहना था। तेरा खसम भी दर्रा लेता। जन बच्चे से लेकर तुम सब ऐसे शेर हुये हो जैसे हम इनका दिया खाते हों।*

राधिका ने उसके कांधे पर हाथ फेरते हुए कहा– *अरे बाल बच्चों के झगड़े में काहे पड़ती हो जिज्जी, वो तो आज लड़े, कल मिल जायेंगे।*

लेकिन घिटोई कहाँ मानने वाली थी, हृदय में जब क्रोध और भय का समावेश एकसाथ हो तो सभी शत्रु प्रतीत होते हैं और मनुष्य उससे बचने के लिये अपनी जान लगाकर चीखता है और वो सबकुछ करता है जो उसके भय को जीतते हुये उसके क्रोध को शीतल कर दे।

*घिटोई जोर से बोली.... हाँ मिल जायेंगे बड़े, अब तेरी सोनचिरैया को हिरकने ना दूँगी अपने मौड़ा के पास... ऐसी बढ़ी है बिटिया कि किसी को कुछ समझती ही नहीं... गाँव भरे के कान काटते फिरती है... नौखी लढ़ेत्तरी भई है तुम्हारी।*

अपनी अम्मा के ऊपर घिटोई को यूँ चिल्लाते देख लहरिया ने एक पतली छड़ी उठाई और अम्मा के आगे तनकर खड़ी हो गई– *हमाई अम्मा को नईं डांटो!*

घिटोई हाथ फटकारते हुए बोली– *देखले राधिका जे है तोरी बिटिया कैसी शेरनी सी तन के खड़ी हो गई... का करेगी रे... मारेगी मुझे... मार तो, देखूँ तनक कित्ता दूध पिबाया है तेरी महतारी ने!*

राधिका उसे पकड़ पाती उससे पहले लहरिया बिजली से घिटोई के हाथ में चिपक गई, उसके दाँतों की चुभन से घिटोई कराह उठी– *अरी दईया! मार डारो... मार डारो...*

राधिका ने झट से लहरिया को पकड़ा, लहरिया का चेहरा लाल होकर थरथरा रहा था, वो अपनी पूरी शक्ति लगाकर शेरनी सी चीखी– *हम मार दूँगी, हमाई अम्मा को नईं डांटो।*

राधिका ने उसका मुँह दबाकर आँखें दिखाई– *हट्ट! ऐसा नहीं कहा*

*जाता का हो गया है कोई नहीं डाँटता तेरी अम्मा को चुप बिल्कुल चुप।*

घिटोई अब तो और बिलबिला उठी थी– *अरे राम! आओ देखो तो कैसा हकल खाया है जे बित्ताभर की मौड़ी ने... आज तो इसे ना छोडूँगी, राधिका सम्हार ले नई तो अच्छा ना रहेगा।*

राधिका भी अब चिल्ला पड़ी– *का अच्छा ना रहेगा... तुम ऐसी मुझ पे दर्राओगी तो बच्चा है... महतारी की आड़ तो लेगा ही।*

घिटोई बोली– *छज्जन अब तू इसके पास हिरका भी तो टांगे काट दूंगी तेरी, मैं तो इसे बहन सा मानती थी लेकिन देखो दोनों महतारी-बिटिया ऐसे गटा काढ़े देखती हैं कि खा ही जायेंगी बिल्कुल।*

राधिका भी झिड़कते हुये बोली–

> *अरे जाओ तुम का हिरकने ना दोगी... हम खुद ही ना साथ खेलने देंगे अपनी मौड़ी को... बच्चा के सामने बड़ी नाहर बनी हैं... घर के परदों के भीतर चाहे घाव कर दिये जायें तो बक्कुर नई फूटता, बाहर बाल-बच्चों के झगड़े में ऐसे चली आई हैं कि जैसे किसी ने बज्र पटक दिया हो...*

छज्जन को खींचते हुए राधिका ने फिर कहा– *दिखा तो रे छज्जन! हमाई लहरिया के तनक-तनक से हाथों से कितने घाव लग गये तुझे।*

घिटोई कुछ अचकचाई, अब क्या कहे समझ नहीं पा रही थी, उसी ने तो सारी चिट्ठी-पतरी राधिका के आगे खोली थी अब झुठलाये भी तो कैसे, थूक गुटकते हुए बोली–

> *ज्यादा ना बोलना चईये राधिका, मैं तो घबड़ा गई थी, इसलिये बोल गई... तू तो एक बोल भी ना टरी, और जे देख कैसा हकला है... इस छुटंकी ने।*

राधिका थमते हुये बोली–

> *महामाई की किरपा है तुमपे... और महामाई के परसाद से जे बिटिया मिली है... इसलिये तुम्हें मानती हूँ, इतनी देर से*

*जिज्जी.. जिज्जी कर रही थी और तुम हो कि चढ़ी चली आती थी, तो का करती मैं।*

घिटोई ने छज्जन को झकझोरा और सिर पे एक चपत लगाते हुए बोली–

*जे लौंडा भी, तनक सी बन्दूक टूटने पे ऐसे रोता था जैसे किसी ने हाथ–गोड़े टोर डाले हों... अरे तनक सी तो मोड़ी है, भटा–भटा से हाथ हैं, कितने घाव लग गये थे रे तुझे।*

अपना दाँव अपने पर ही आते देख छज्जन ने छड़ी ताने खड़ी लहरिया को तरेरा और अपनी अम्मा से हाथ छुड़ाकर भाग गया।

राधिका ने कहा– *छोड़ो जिज्जी कही–सुनी माफ... बाल बच्चन की बात है... अभी लड़ते हैं और अभी मिल जायेंगे... आओ बैठ लो... सुस्ता लो... चिल्लाते–चिल्लाते थक गई होगी।*

दोनों हँस पड़ीं, घिटोई तो बैठना ही चाहती थी, हाथों में हुये घावों से खून छलछला रहा था पर उसने इन घावों को चूड़ियों से ढँक लिया था, होठों के किनारे नीले निशान थे, जिनपर गहरे लाल रंग का परदा डालने की कोशिश की थी, एक नहीं दो–दो पान चबाये थी, जान–बूझकर पीक होठों के बाहर लपेट रखी थी, गले में उंगलियों के निशान थे जिन पर उसने अपनी धोती का आँचल डाल रखा था पर राधिका को सबकुछ ऐसे साफ दिख रहा था जैसे किसी ने अपने ऊपर पारदर्शी का नदी का परदा ढांक रखा हो। लहरिया अब भी घिटोई के सामने अपनी अम्मा की गोद में तनी बैठी थी, घिटोई ने उसे यूँ गुस्सा देखा तो खींचकर अपनी गोद में बैठा लिया–

*अरे लहरिया... तू तो बड़ी बहादुर है रे, अपनी अम्मा के लिये तूने जे भी ना देखा कि सामने तुझसे चार गुना बड़ी ऊँटनी खड़ी है...*

घिटोई ने उसे चूमा तो वो झटक कर फिर अम्मा के पास बैठ गई, एकटक घिटोई को तरेरे जाती थी। राधिका और घिटोई दोनों ने उसे देखा

और हँस दीं– *देखो तो कैसी नटेरती है कि खा ही जायेगी... अरी रानी बिटिया... अब ना लडूँगी तेरी महतारी से... ले, जे पकड़ लिये कान।*

लहरिया हँस दी और उसकी गोद में बैठ गई, उसकी खनखनाती हाथभरी चूड़ियों से खेलते हुए बोली– *जे हमें दे दो चाची!*

घिटोई बोली– *जब तू बड़ी हो जायेगी तो इतनी बिलात दूँगी, पर अभी तो तेरे हाथ बहुत छोटे हैं!*

*ना चाची हम पहन लूँगी, दे दो ना...!* लहरिया जोर से हाथ झटकते हुए बोली। इस बार पीड़ा से घिटोई कराह उठी– *अरी दईया! मर गई!*

राधिका ने तुरन्त लहरिया से उसका हाथ छुड़ाया– *का हुआ जिज्जी, ज्यादा जोर से लग गई का?*

*अरे! कुछ तो नहीं!* घिटोई ने अपनी आह पर हँसी का आवरण डालते हुये कहा। राधिका सरककर घिटोई के पास आई और हथेली को अपने हाथ में लेते हुये कहा– *जिज्जी मुझसे तो ना लुकाया, छिपाया करो!* दर्द थामे बैठी घिटोई की सहनशक्ति छूट पड़ी, सिसकते हुये बोली–

> *का बताऊँ, तू तो जानती है छह महीना हो गये कोठी पे हाथ घिसत-घिसत, सब नांज-पानी बनवाया, घर दौर लिपाया-पुताया, कितना काम नहीं होता कोठी में, चार-चार आदमियों का काम अकेले छाती फारके करती हूँ, छ्ज्जन के स्कूल में फीस देनी थी तो बड़ी मुश्किल से सौ मूड़ मारें के बाद उनने कछु रुपैया दये। उस हरामी आदमी को जाने कहाँ से भनक लग गई, छाती चढ़ आया... कहता है पैसा दे! तो मैंने कहा– छ्ज्जन की फीस चुकानी है... बस फिर क्या था मार-मार के सोंड़रा कर दिया... जब खुद थक गया तो अपने सांडों से ठुकवाया... मैं गिगियाती रही लेकिन ठठरीबंधों पर दया की तो छाया भी ना दई है महामाई ने... पर मैं भी कम ढीठ नईं, इतनी ठुकी पर पैसे तो ना दिये।*

राधिका बोली- *पैसा जान से जादा तो ना होते, फेंक देतीं।*

*.... कैसे फेंक देती, मास्टर ने खबर पहुँचाई थी कि फीस ना भरी तो नाम कट जायेगा और ऐसा हुआ तो मोरा लरका भी बरबाद हो जायेगा... जे नीच जीने ना देंगे... उसे भी अपने जैसा बना लेंगे, फिर तो मेरा जीते जी मरना हो जायेगा... इसी एक डरैया के सहारे आगी में तैरती हूँ।*

राधिका बोली- *तो कुटती रहीं कुछ ना किया?*

घिटोई ने आँसू पोछते हुए कहा-

*का कर सकती हूँ मैं? पैसे दबाये और भागी जान बचा के, हरामी मुसटंडे पीछे से कहते हैं तेरे लड़के के फका-फका करके फेंक देंगे जो अबसे ऐसा किया... अब समझ नई आता का करूँ... का नई? उसी ततोस में भगी चली आ रही थी गली में छज्जन रोता मिल गया तो मैं बिल्कुल बेभूल हो गई कि जानें मौड़ा को मारा है का... बस उसी तेहा में तुझसे लड़ने चली आई।*

राधिका फिर घिटोई को समझाते हुये बोली-

*जिज्जी! कौनऊ बात नहीं, ऐसे लड़ाई-झगड़ा तो चलत रहत है पर तुम अपने को सम्हारो... थोड़ी तो हिम्मत दिखाओ... अब कब तक सहोगी... रपोट करो या फिर उठाओ लट्ठ।*

*.... कैसे करूँ राधिका... वो तीन-तीन पहाड़ से मुसटंडे और मैं ढकाभर की औरत... एक हाथ की भी नईयाँ... अब तू ही बता क्या करूँ!*

राधिका इस बात कर कुछ सोचते हुये बोली- जिज्जी! अभी कुछ देर पहले ही देखा ना कैसे, जब छटांक भर की बिटिया अपनी महतारी के लिये तुमाये सामने तन के खड़ी हो गई थी... जे भी ना देखा कि तुम तो बहुत बड़ीं हो उससे... जिज्जी ताकत मन से आती है... सोचो अगर

छज्जन पर कल बे सब गड़ौंसिया लेके चढ़ आयें... तब भी का ऐसई भग जाओगी।

घिटोई के पास कोई उत्तर ना था, वो बस लहरिया को देखती फिर अपनी देह के घावों को टटोलती, मन कुछ रच रहा था, देह कुछ गढ़ने लगी थी, पर शायद अब भी बीज ही था। कुछ देर चुप्पी साधे बैठी रही फिर बोली – *चलती हूँ... कोठी के चार काम हैं... दुःख* दरद *में सब बिसर रहा... यहाँ बैठी-बैठी रोती रहूँ तो का करूँगी...*

इतना कहकर घिटोई कराहते हुए उठी और पाँव घसीटते हुये चलते हुये फिर मुड़कर राधिका को किसी से कुछ ना कहने की कसम याद दिलाती और बार-बार पलटकर लहरिया को देखती रही फिर अपनी हथेली पर उभरे उसके नन्हे-नन्हे दाँतों के निशान...

# अधजले पंख

आज बादलों के कोरे साफ हैं, सूरज भी चमचमाता हुआ निकला है, सबकी जान में जान आ गई क्योंकि आज रचना का मण्डप है। बारात के लिये रसोई की तैयारियाँ भी होने लगी है। शहर से सारा माल-पानी आकर रख गया। कोठी के एक छोर पर ढोलक की थापें गूँज रही हैं, तो दूसरे छोर पर पूड़ियाँ बेलती, काम करती महिलाओं की हँसी, गारियाँ गाई जा रहीं हैं इसी बीच पुरुष जानबूझकर महिलाओं के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं... जब नाम लेकर कोई गाली पड़ जाती है तो हँसते हुए भौंहों से नटते-रीझते हुये निकल जाते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में सब इस चुहल का हिस्सा बनने के लिये किसी काम का बहाना लिये चले आते हैं।

महिलायें कहती हैं- *अरे! इन लुगअन को ऐसी गारीं सुनाओ री कि धोती पकरें-पकरें भगे फिरें, देखो तो हेर-फेर के यहीं को झुले जाते हैं, इनका मन नहीं लगता काम में।*

ठहाकों और शरारतों ने माहौल को खूब रंगमय बनाया हुआ है। दूसरी तरफ पढ़ी लिखी दुल्हनिया के कमरे में अलग किस्म की मस्ती चल रही है। कमरे में गाना बज रहा है- मेंहदी है रचने वाली... हाथों में गहरी लाली.... कुछ लड़कियाँ नाच रहीं हैं, कुछ उसका सामान अटैचियों में भरते हुए मस्ती कर रही हैं। जो विवाहित हैं वे पति को रिझाने-सताने के गुर सिखा रहीं हैं तो उनमें से ही दो-चार जिनकी उम्र कुछ ऊँची हो आई है वे ससुराल में पहनने, ओढ़ने, चलने, बैठने, बोलने के ढंग बता रहीं हैं और जो कुछ बची लड़कियाँ जो ब्याह की देहरी पर बैठी

हैं वे बस महारानी बनी रचना को निहारते हुए अपने ब्याह की काल्पनिक सैर कर रहीं हैं।

इन सब भिन्न-भिन्न रंगों से रची-बसी धुनों के बीच कोठी के पीछे बच्चों का झुण्ड एक अलग ही कलरव करता गूँज रहा है। दिनभर धूरा-माटी में लोटने वाले इन बच्चों को उनकी माँओं ने बिल्कुल राजाबाबू सा सजाकर निकाला है। राधिका ने भी लहरिया को आसमानी रंग की फ्रॉक, माथे पर काली सी टिपकी, बालों में गुलाबी फीता बाँधकर भेजा है। हो भी क्यों ना... ऐसे अवसर रोज-रोज थोड़े ही आते हैं, चार गाँव के मेहमान जुड़े हैं। इतने बड़े-बड़े लोग आये हैं शहरों से, माटी सने बच्चों को देखकर क्या सोचेंगे, कैसे बाल बच्चे हैं यहाँ के मैले कुचैले। नाक मुँह सिकोड़े फिरेंगे! अब वे सब इन्हें देखते हों या ना देखते हों पर हर माँ के मन में अपने बच्चे को तैयार करते समय यही ख्याल दौड़ रहा था।

चूँकि बच्चों ने बक्से से निकले नये कपड़े पहने हैं इसलिये और चहक रहे हैं। अपने-अपने कपड़ों की शान को चेहरे पर ऐसे चढ़ाये फिर रहे हैं, जैसे उनसे अच्छा तो जग में कोई है ही नहीं। इनकी आँखों में किसी नये-नये आकाश छूते परिन्दों से कम खुशी नहीं चमक रही हैं। भौहों से एक दूसरे को बिरा-बिराकर कह रहे हैं, देख ले! तेरे कपड़े से ज्यादा मेरे कपड़े चमकते हैं। लहरिया भी अधनई फ्रॉक का उत्साह भरकर आई है। सब बच्चों के साथ सजे-धजे गाँव में खेलती फिर रही है। कोई संगीत की धुनों पर मटक रहा है तो कोई किसी को चिढ़ाता फिर रहा है और कुछ बिल्कुल चुपचाप बैठे सबकुछ देख रहे हैं मानो मुआयना इंस्पेक्टर हों।

कुछ बच्चे कभी गलियों में झिलमिल लड़ियों को सजता देखते तो कभी हलवाई के कड़ाहे की ओर दौड़ जाते हैं... कड़ाहों के सामने घेरा लगाकर बैठे हैं... इतनी भाँति-भाँति की मिठाइयाँ, खाने के व्यंजनों को देख-देख जैसे मुँह से तो छोड़िये... आँखों से भी लार टपकी जाती हो।

जीभ बार–बार होठों पर नागिन सी लहरा जाती है। ये बच्चे कभी हलवाई को देख रहे हैं... या कभी कढ़ाहे में तलते काले–काले रसगुल्लों को... या कभी दूसरी तरफ काटी जा रही बर्फी को...

लहरिया बर्फी की तस्तरी के पास खड़ी कुछ देर देखती रही फिर चुपके से एक बर्फी उठाकर मुँह तक लेकर गई ही थी कि हलवाई चीखता हुआ दौड़ आया–

> *अरे! जे चेंटीपेंटा देखो तो सब जूठा किये देते हैं, ऐ... लहरिया! अभी मिठाई महामाई पे भी नईं चढ़ी और तूने जुठार दी... छोड़... तुरन्त छोड़... कैसे उठाई बर्फी तूने, हलवाई ने लहरिया के हाथ से बर्फी छीनी और माथे पर एक चपत लगाते हुए बोला... भागो सब यहाँ से नहीं तो लाठी उठाता हूँ अभी... बड़ी पुरखिन को बुलाऊँगा सो अलग!*

लहरिया हाथ छुड़ाकर भागी... पीछे–पीछे सब बच्चे भाग खड़े हुये। सबने सीधे तालाब के पास जाकर साँस ली।

छज्जन बोला– *अच्छा हुआ जो हम भाग लिये... नहीं तो आज तो बड़ी पुरखिन अपने डंडा से ऐसी सुटाई करती कि ऊपर से नीचे तक सूज जाते।*

लहरिया कुछ सोचते हुए बोली– *बड़ी पुख्खिन सबको मारती हैं इसलिये सब इतना डराते हैं।*

छज्जन ने कहा– *अरे नहीं, जे मिठाई तो जब बरात आयेगी तब मिलेगी, हम सब अच्छे–अच्छे कपड़ पहनकर आयेंगे!*

*तो आज भी तो अच्छे कपड़ा पहने हैं, बक्सा वाले!* कल्लू ने कमर पे हाथ टिकाकर कहा।

*अरे पागल! जे तो थोड़े कम अच्छे बाले हैं, बरात बाले तो चमचम कपड़े होते हैं। लाइट में झिलमिल करने वाले!* छज्जन अपनी कांधे उचकाकर अपनी होशियारी झाड़ते हुए बोला

लहरिया आँखें नचाते हुए बोली– *हाँ...! सच्ची में... लेकिन तुझे किन्ने बताया?* इस प्रश्न पर छज्जन इतराते हुये बोला–

*जब मैं खेलने यहाँ आ रहा था, तब अम्मा ने कहा था, कुछ खाने-पीने का सामान ना छूना, जब मैंने पूछा क्यों? तो बताया कि जब खूब ढोल-बाजे बजेंगे, बरात आयेगी, हम सब झिलमिल वाले कपड़े पहनेंगे तब मिलेगी मिठाई, और पता है जिसके कपड़े सबसे अच्छे होंगे... उसे सबसे ज्यादा मिलेगी।*

कल्लू ताली पीटते हुए बोला– *अरे वाह! तब तो बरात में मैं ऐसे चमचमाते कपड़े पहनूँगा कि तुम सब देखते रह जाओगे। मेरी बुआ लाई थी पिछले साल... वोई लाल वाला कुरता, खूब चमकता है!*

*छज्जन ने टेढ़ा सा मुँह बनाते हुये बोला... हूँ.... देखना मेरे कपड़े सबसे चमचम होंगे, मेरी अम्मा लाई थी मेले से, वही पहनकर नाचूँगा ढोल पे और खूब मिठाई खाऊँगा। तुम सबसे जादा... आहा... कितना मजा आयेगा।*

सुखनी भी कहाँ पीछे रहने वाली थी, होंठ मरोड़ते हुए बोली–

*मेरे पास तो खूब झिलमिल घंघरिया है। इतने सीसा लगे हैं उसमें कि तुम सबका मुँह दिख जाये। अम्मा ने कहा था कि जब बरात आएगी तो वोई पहनाऊँगी, देखना तुम सब देखते रह जाओगे, इत्ता अच्छा है।*

लहरिया इन सबके चेहरों पर बिखरती खुशी देख खुश हो कूदी और बोली– *हम भी पहनूँगी... हम भी पहनूँगी!*

छज्जन ऐंठकर बोला– *आहा... हा... कैसे कूदती है जैसे इसकी अम्मा इसे नई फराक पहरायेंगी! तेरे पास तो सितारे वाली फराक भी नहीं है, तुझे तो मिठाई भी नहीं मिलेगी और तो और घुस भी नहीं पायेगी भीतर!*

लहरिया सिसरियानी सी आँखें तरेरती कुछ देर तो बैठी रही लेकिन जब सब के सब अँगूठे हवा में लहराते हुए हँस दिये, तब वो भी जोर से

हँसी और बोली– *हमाई अम्मा! भी हमें घंघरिया पहरायेगी सबसे अच्छी वाली देख लेना, नईं पहरायेगी तो हम तो खुद पहन लूँगी।*

कल्लू कुछ सोचते हुए बोला– *अगर अभी मैं अच्छे कपड़े पहन के आऊँगा तो, वहाँ से मिठया कक्का ना भगायेंगे, हाँ... हाँ... मैं तो अभी जाता हूँ।*

इतना कहकर कल्लू अपने घर की तरफ दौड़ गया, पीछे से सुखनी ने भी चौक लगा दी। छज्जन पीछे से चिल्लाता रहा– *अरे आज अच्छे कपड़े पहनने से थोड़े ही मिठाई मिलेगी, तुम सब पागल हो!*

लहरिया ने पूछा– *तो कब मिलेगी, बनती तो आज है?*

छज्जन तालाब किनारे बैठकर मिट्टी से गाड़ी बनाने बैठ गया और बोला– *जब बरात आयेगी तभी तो मिलेगी!*

लहरिया कुछ अनमनी होकर उसके बगल में बैठ गई और बोली– *अब जे का बना रहा है तू?*

छज्जन माटी पर हथेलियाँ घुमाते हुये, नाक सरूंटता, जीभ होठों पर फेरता हुआ, लम्बी सी साँस भरकर बोला– *गाड़ी बना रहा हूँ, इसे मैं इतनी तेज दौड़ाऊँगा कि देखना बड़ी कोठी की गाड़ी भी पीछे छूट जायेगी, तू बैठेगी मेरी गाड़ी पर?*

लहरिया चहकते हुए बोली– *हाँ... हाँ... हम भी बैठूँगी।*

छज्जन– *तो आ फिर तुझे भी मेरे साथ गाड़ी बनानी पड़ेगी।*

लहरिया– *नईं हम माटी ना छुऊँगी, अम्मा कहती थी मिट्टी में ना छपना, नईं तो कोठी ना ले जायेगी।*

छज्जन– *फिर तुझे नहीं बैठाऊँगा अपनी गाड़ी पर।*

लहरिया– *क्यों नईं बैठायेगा? हम तो बैठूँगी।*

छज्जन– *तू मेरा कहा नहीं करती इसलिये नहीं बैठाऊँगा।*

लहरिया ने मुँह बनाते हुए कहा– *ना बैठाना... मैं अपने बाबू से*

*बनवाऊँगी... तुझसे कट्टी और ये ले बना ले तेरी गाड़ी!...* इतना कहकर एक लकड़ी उठाकर छज्जन की माटी की गाड़ी पर दे मारी।

छज्जन ने अपनी गाड़ी को टूटते देखा तो गुस्से से उबल पड़ा– *तूने उस दिन मेरी बन्दूक तोड़ दी थी, और आज मेरी गाड़ी तोड़ दी।*

छज्जन ने उठकर लहरिया की पीठ पर दो घूँसे जमा दिये। लहरिया उसके बाल पकड़कर खींचने लगी तो छज्जन ने भी उसके बाल पकड़ लिये, दोनों गुथ्थम-गुत्था होकर चिल्लाने लगे।

राधिका मटके लिये कोठी पर जा रही थी। छज्जन, राधिका को देख ठिठक गया। राधिका ने घूँघट उठाकर लहरिया को तरेरा और बोला–

> *क्यों पहलवानी कर रहे हो दोनों, जब देखो तब बस लड़ते रहते हो, अलग काहे नहीं खेलते और छज्जन तुझसे कितनी छोटी है लहरिया... फिर भी तू ऐसे मारता है... कहूँ क्या तेरे बाप से तेरी शिकायत।*

बाप का नाम सुनते ही डर के मारे छज्जन की आँखें निकल आईं, वो तेजी से दौड़कर कोठी के बगल वाले पेड़ के पीछे छुप गया।

राधिका ने लहरिया को डपटा– *क्यों इतना लड़ती है तू, गाँवभर से बैरादारी मोल ले लूँ, जा तो तू घर जा, बाबू बुलाते थे तुझे।*

लहरिया ठुनकते हुए बोली– *ना अम्मा! हम भी कोठी जाऊँगी।*

राधिका ने उसे झिड़का– *अरे! समझ नहीं आता तुझे, बड़ी पुरखिन कैसी चिल्लाई थी उस दिन याद नहीं... अबकि तो मारेंगी भी... जा तू... मेरे पीछे ना आना... आती हूँ कुछ देर में।*

लहरिया– *बड़ी पुख्खिन के पास ना जाऊँगी... सच्ची अम्मा! पर ले चलो वहाँ... और... और... तुम ही तो कहती थी, माटी में ना भिड़ेगी तो ब्याह में ले जाऊँगी, हम तो मिट्टी नईं छुई अम्मा, जे देखो हाथ!*

राधिका– *जाने कितनी हठी होती जाती है... तू कोई पुरखिन से कम है का! चल लेकिन वहाँ तनक भी उधम ना करना... ना ही यहाँ-वहाँ*

*भीतर घुसना... वरना बड़ी पुरखिन इस बार लट्ठ लेकर मारेगी... तुझे भी और मुझे भी।*

लहरिया ने हामी में सिर हिलाया और अम्मा की धोती का छोर पकड़े साथ-साथ चल दी। पेड़ की ओट से निकलकर छज्जन भी पीछे-पीछे आँखें बचाता चल दिया, कोठी में घुसने का बहाना मिल गया था।

लहरिया अम्मा की धोती का छोर चबाते हुए धीरे से बोली- *अम्मा! जब बरात आयेगी... हम भी अच्छी वाली घंघरिया पहनूँगी ना? छज्जन कहता था... तेरे पास तो है ही नहीं इसलिये तेरी अम्मा ना पहरायेगी।*

राधिका ने कहा- *जे का पहरे है और अच्छी कैसी होती है!*

लहरिया ठुनकते हुए अम्मा का छोर ताने खड़ी हो गई, राधिका का घूँघट सरकने लगा था, राधिका भी स्थिर होकर दाँत मीसते हुए फुसफुसाई- *लहरिया! कुट जायेगी तू... इत्ते सारे जनों के बीच उघारा किये देती है, ...चुपचाप चल अभी नई तो फिर कभी ना लाऊँगी कोठी पे।*

लहरिया ने अम्मा का आँचल ढीला किया और तिरछी निगाहों से तरेरती हुई चलने लगी।

राधिका बुदबुदाई - *इतनी सारी गगरियाँ को सम्हारूँ कि इस बिटिया के नखरों को!*

लहरिया अब चुपचाप चल रही थी, कोठी के भीतर जाने का ये सुनहरा मौका नहीं जाने देना चाहती थी। राधिका तेज कदमों से गगरियाँ लिये सीधे कोठी के भीतर बखरी में जाकर ठहरी। गगरियाँ धरती पर धीरे से रखते हुए, चारों तरफ नजर दौड़ाई तो बड़ी पुरखिन पीछे के बरामदे में बैठीं सुपारी कतरती हुई सबको कामों की हिदायत दे रहीं थीं।

लहरिया चकित सी चारों ओर घूम-घूम के देख रही थी, चिकमिकी रंग बिरंगी लड़ियों पर सूरज की किरणें जैसे-जैसे पड़ती, वे और अधिक चमचमा उठतीं और चमकीलापन किसे नहीं भाता, फिर ऐसी चमक धमक से बालमन का तो लगाव कुछ अधिक ही होता है।

लहरिया ताली–पीटकर कूदती हुई चिल्लाई– *अरे वाह... कितनी चमकती हैं जे तो...*

राधिका ने झट उसका मुँह दबाया और होठों पर उंगली रखकर चुप रहने का इशारा किया। आँखों से समझाया कि बड़ी पुरखिन ने तुझे यूँ चिल्लाते देखा तो शामत आ जायेगी। लहरिया, आँखों की भाषा समझ गई, आखिर पिछली बार उसी पर तो बीती थी तो कैसे ना समझती।

चारों तरफ बंधे आम के बंधनवारे ब्याह के गीतो से झूमते से दिखाई पड़ रहे थे। ढोलकों और ठहाकों से जैसे कोठी का हर कोना निकलकर आंगन में झूमकर नाचता सा लगता था। बखरी में मण्डप सजाया जा रहा था। फूलों की सजावट वाले शहर से आये थे जिन्हें सारी जनानियां घूंघट उठा–उठा के देखतीं और ऐसे चमक उठतीं जैसे कोई आकाश का सुन्दर सितारा आसमान से उतर आया हो। हो भी क्यों न ऐसी सजावट देहातों में रोज–रोज तो नहीं होती।

पर इस चमचमाते सुगंधित माहौल में एक कड़कड़ाती आवाज ऐसी लगती थी जैसे बरखा की बूँदों से लिपटकर सुगन्ध बिखेरती धरती को बीच–बीच में दामिनी तड़तड़ाकर डराने का प्रयास कर रही हो... पर इन रंगों ने इस चटकती दामिनी को भी समाहित कर लिया था... जैसे, सब के सब आह्लाद भरे साज–सिंगार के साथ–साथ विवाह की लोक रस्मो–रिवाज को पूरा करने में व्यस्त थे।

राधिका ने आवाज दी– *बड़ी पुरखिन... ओ बड़ी पुरखिन! गगरियाँ ले आई हूँ, देख लो।*

बड़ी अम्मा होंठों तले सुपारी कत्था दबाये थूक लपटे सुरों में बोलीं –

> *क्यों री राधिका! तुझे अब जाके फुर्सत पड़ी है, कबसे बुलऊवा भेजा है, सबेरे का कहा था तूने और सूरज सिर चढ़ आया तब आई है... अब तेरे लिये डोली कहार भेजती तब आती तू? देखती नहीं कितने काम हैं... अपने मन से ही सोच लेती कि ब्याह है... हजार काम होंगे... मैं भी कुछ करवा*

*आऊँ... अरे बिटिया के ब्याह में तो आन गाँव के अनजाने भी हाथ बटाने आ जाते हैं... यहाँ तुम लोगों को फुर्सत ही नहीं होती... वो घिटोई भी अभी पबरी है।*

राधिका ने घूँघट ऊपर करते हुए पाँव छुए और कहा–

*बड़ी पुरखिन! गुस्सा ना करो एक तो जे बिटिया छोड़ती ही ना थी... ऊपर से इतनी गगरियाँ इतनी जल्दी में बनानी थीं इसलिये ना आ पाई बताया तो था मैंने... लो अब गगरियाँ देख लो और जो भी काम हो बता दो अब तो आ गई हूँ।*

बड़ी पुरखिन ने गगरियों को ठोक-ठोककर देखा और कहा–

*चल जा तो डलवा बनवा दे। देख तो दो जनानी बैठी हैं बस जबकि पूरे गाँवभर में न्यौता भेज दिया था। काम के लिये आजकल की मिहिरियाँ टराये नहीं टरतीं बस लाली और सिंगार को कह दो। कहने को हमारे घर में ही पचास लुगाईं घुसी हैं लेकिन एक नहीं टरती कि जाकर बखरी में मिठया के पास बैठ के काम देख लें, चार गाँव की ज्योंनार है आज, जानें कैसे सम्हरेगी!*

राधिका लहरिया को लेकर उठी और पिछवाड़े वाले आंगन की ओर जाने को हुई तो बड़ी पुरखिन ने जाते-जाते कड़क हिदायत दी– *अपनी बिटिया को सम्हार के रखना राधिका, उत्पात ना करे ये।*

राधिका ने धीरे से कहा– *बिल्कुल ना करेगी!*

लहरिया ने बड़ी पुरखिन को देखा तो अम्मा का छोर थामे पीछे दुबक रही... पर मन तो कुलाँचे भर रहा था... कहीं ढोलक पर जी गिरा पड़ रहा था... तो कहीं मिठाइयों वाले भण्डार घर को देखकर... लालच आँखों के रास्ते से बाहर आ जाता... लेकिन कमबख्त अनदेखे पहरेदार सब पर डाट लगाये बैठे थे... तिरछी आँखों में लार भरे लहरिया बस देखकर ही जी बहला रही थी...

चकमके कपड़े पहने फिरते बच्चों को देख मन जल उठता। उम्मीद भरी निगाहों से अपनी अम्मा की तरफ देखती और स्वयं को दिलासा देते हुए जैसे अपने आप से ही कहती– *बेटा! अभी देखना जब बरात आयेगी तो कैसे झिलमिल कपड़े पहनूँगी।*

राधिका लहरिया की कलाई पकड़े पीछे के आँगन में आ गई। घिटोई, हरदेई और चार–पाँच महिलायें घूँघट काढ़े बातें करतीं खाखरे बेलने बैठी थीं। राधिका भी खाली पड़े चकले बेलन पर बैठ गई। उसके बैठते ही घिटोई भौंहे नचाते हुये कहा– *बड़ी देर कर दी री तूने, बड़ी पुरखिन कितना चिल्लाती थी।*

राधिका ने घूँघट ऊपर करते हुए कहा– *का करूँ जिज्जी! इतनी जल्दी में इतनी गगरियाँ कैसे तैयार करीं हम ही जानते हैं... अब हमाई दसा कौन समझे और तुम भी तो निकर आईं... मुझे भी टेर लेतीं।*

लहरिया यहाँ खेलती थी तो मुझे लगा तू होगी ही... यहाँ आई तो पता चला अभी नईं आई। दोनों की बातें काटते हुए लहरिया ने ठोणी पकड़कर अम्मा का चेहरा अपनी ओर घुमाया और बोली– *अम्मा! जे ब्याह कैसे होता है? हमें भी चइये!*

सभी महिलायें हँस दीं, राधिका हँसी और बोली– *अब क्या बताऊँ री ब्याह क्या होता है?*

इतने में लहरिया ने सवाल फिर दोहरा दिया– *बताओ ना अम्मा ब्याह क्या होता है? हमें भी चइये।*

हरदेई ने राधिका की कमर में चिकोटी काटी, आँखें नचाते हुए बोली– *क्यों री बता काहे नहीं देती बिटिया को ब्याह का होता है?*

राधिका हरदेई की इस शरारत पर शर्माते हुए बोली– *तुम सोई जिज्जी!*

इतने में लहरिया ने फिर अपना प्रश्न दोहरा दिया, राधिका ने उसे गोद से उतारा और कहा–

*ब्याह में एक दूल्हा होता है, दुल्हन होती है दोनों पूजा करते*

*हैं फिर अच्छी-अच्छी मिठाई बनती है, सब अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं सजते हैं, नाचते हैं, गाते हैं फिर दुल्हन को दूल्हा अपने घर ले जाता है और तू अभी ब्याह के लिये बहुत छोटी है, जब बड़ी होगी तब तेरा भी ब्याह करा देंगे।*

लहरिया- *अम्मा! दूल्हा-दुलैन कौन हैं?*

राधिका ने झल्लाते हुए बोली- *कितनी बातें करती है, काम करने दे जा उधर खेल!*

लहरिया ने माँ के गले में अपनी छोटी-छोटी बाहें डाल दीं- *नईं अम्मा बताओ ना कौन है दुलैन?*

राधिका ने गले से लहरिया के हाथों की गाँठें छुड़ाई और कहा-

*रचना जीजी दुल्हन हैं। अब तू उधर जा देख तो सब बच्चे खेल रहे हैं और तू अम्मा से चिपकी बैठी है... जा तू भी जल्दी, नईं तो सब तुझे चिढ़ायेंगे कि लहरिया तो अपनी अम्मा से चिपकी बैठी रहती है।*

*अम्मा! ब्याह में हम भी दुलैन बनूंगी?*

*हाँ बनेगी!*

*कैसे बनूंगी?*

*हार पहरेगी, चूड़ी पहरेगी, बिन्दी लगायेगी, लहँगा पहरेगी, बेंदी पहरेगी, माहुर लगायेगी और बन जायेगी दुलैया! हरदेई ने उसे चूमते हुए कहा- तो दूल्हा कौन होगा?*

लहरिया के पूछते ही सब की सब औरतें ठठाकर हँस दीं। तो घिटोई बोली- *अरी तेरा दूल्हा... भगवान जी के यहाँ से आयेगा... रथ पे सवार होके... ऐसई वैसई थोड़ा होगा!*

*घिटोई चाची तो तुम मर जाओ और भम्मान जी के पास से दूल्हा ले आओ हमाये लाने!*

लहरिया का ये बालाग्रह सुनकर घिटोई मुँह दबाकर रह गई– *देखो तो कैसी कैंची सी बोलती है राधिका! जे बिटिया, जब पेट में थी तो का कैंची घोर–घोर पीती रही थी तू!*

राधिका हँसी और बोली कैंची– *घोर के तो नहीं पी हाँ इसके बाप से खूब हुज्जतदारी होती रही, तुमाए...*

इससे आगे कुछ कहती घिटोई समझ गई कि ये बन्ने का नाम लेने वाली है, उसने बात बदलते हुए कहा– *अरी सुनी है मुखिया अब तक ना आये हैं ब्याह में नाराज बैठे हैं?* अब महिलाओं की सुगबुगाहट लहरिया से निकलकर इस ओर आ गई लेकिन लहरिया फिर बोल पड़ी– *अम्मा! बताओ ना हमारा दूल्हा कौन है?*

राधिका ने अबकि उसका मुँह दबाया और धमकाते हुए कहा– *अब चुप होकर बैठ जा बड़ी पुरखिन आ रही हैं, चुप हो जा बिल्कुल!*

लहरिया बड़ी पुरखिन के डर के मारे उठी और फाटक की तरफ भाग गई, राधिका को अचानक बड़ी अम्मा की हिदायत याद आई तो उसने पीछे से आवाज दी लेकिन लहरिया सीधे कूदती–फाँदती निकल गई, राधिका ने उसे बाहर जाते हुए देखा तो आश्वस्त होकर बैठ गई कि लहरिया भीतर नहीं गई है।

राधिका के पास बैठी औरतों ने कहा– *बड़ी चंचल है तेरी बिटिया! पेट में मूँछें है इसके, देखो तो कितनी बातें आती है, कहती है ब्याह करना है, काये राधिका ब्याह का असली मतलब तो बताया ही नहीं तूने।*

राधिका लजाते हुए बोली– *तुम भी तो जिज्जी.. कैसी बातें करतीं हो।*

शरारतों की हँसी से बखरी गूँज उठी, महिलाएं घूँघट तानकर राधिका की कमर में... बाहों में चिकोटियाँ काटती तो कहीं बेलन चुभाती, इस चुहल के बीच से सहसा भावनायें भी प्रस्फुटित होने लगीं। हरदेई ने लम्बी सी साँस भरते हुए कहा–

*अरे जिज्जी! बिटियाँ तो भगवान् के घर से ही चतुर आती हैं।*

*माटी की पुतरिया सी, जिस रंग चाहो वही चढ़ जाये, सब कुछ जल्दी से सीख लेती हैं... महताई को असली सहारो तो बिटियाँ ही होती हैं लेकिन जब जाती हैं तो छाती फटत है, बाप महताई ही जाने कि कैसें करेजे के टूका करके बिदा करी जाती हैं बिटियाँ...*

*बात तो सौ आना खरी है, घिटोई ने भी भरे गले को खखारते हुये कहा- मैंने कल राधिका को तनक जोर से का बोल दिया ऐसे तनके खड़ी हो गई मेरे सामने की खा ही जायेगी... जे भी ना देखा कि खुद बिदकुलिया सी है और मैं पहाड़ सी।*

*घिटोई ने लम्बी साँस भरी- महतारी बाप के लिये तो प्रान दैबे को भी उतारू हो जातीं मौड़ीं तो, पर जिज्जी! गजब रीत है कि अपने करेजे को जिन्दा मास काटके पराओ करने परत, फिर कित्ती भी छाती फटे बिटिया को तो विदा करने ही होत, हम सब भी तो आए हैं ऐसे ही... अपने महतारी-बाप को बिलखता छोड़ और आज देखो तो... सब अपनी-अपनी दुनिया में कितने ही रमे दिखाई दें लेकिन मायके को नाम आऊत ही छाती धौंकनी सी चलन लगत है... अब देखो तो बड़ी पुरखिन कितनी कड़े हिया की हैं लेकिन रचना की बिदा की सोच-सोच रो-रो के आँखें बेर कर लई हैं।*

हरदेई ने आँखों पर छोर फेरते हुए कहा- *सही कही जीजी, अब रचना ही तो पूरी सेवा करती थी... अब वो भी चली।*

राधिका पूरियाँ बेलते-बेलते ठहर गई, आटे की लोई को रगड़ते हुए जैसे भविष्य को छूकर देख रही हो-

*जिज्जी! हमारी लहरिया जा दिन विदा होगी... पता नईं कैसें जी पा हैं... लहरिया के बाबू के तो प्रान बसत हैं बिटिया में भगवान् जानें कैसें विदा करेंगें।*

सबकी आँखें गीली हो आईं थीं, बेटियों की विदाई शायद समाज की सबसे विचित्र प्रथा है, जो जीते जी एक ही समय में माता-पिता के सुख और दुःख का समान्तर कारण होती है। इस रिवाज का जिक्रमात्र सबके भीतर कुछ दहला देता है, इसमें एक नेत्र से भय के अश्रु गिरते हैं तो दूसरे से सुख के मोती। इन महिलाओं के भी अश्रुमोती बह चले थे।

इतने में हलवाई की आवाज आई- *अरी लुगाईयों! जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ करहइया जली जाती है... इनकी पंचयात खतम ही नई होती।*

ये आवाज जैसे झटके से सभी को किसी कल्पनालोक से बाहर ले आई। सबने अपनी-अपनी धोती के छोर से आँखें पोछीं और तेजी से हाथ चलाती हुई काम में जुट गईं।

हरदेई सिसकियों को तोड़ती हुई बोली लुगाईयन खें तो बस टसुआ बहाबे को बहाना चइये। अरी ऐसो नईं कि कछु मान मनुहार कर लो कछु गारी गुरुआ कर लो ताकि जे छैल छबीले रिश्तेदार जो इते उते नाचत फिर रहे खूंटन सें बंध के बैठ जायें।

घिटोई कुछ तरेर के बोली- *गारीं का, अभे माहुर से ऊपर से नीचे तक रंग दूं, फिर ऐसई रंगे फिर हैं ब्याह भर।*

हरदेई हंसते हुये बोली- *बे सब तो फिरते ही इसलिये हैं हो जाओ सुरू।*

आँसूओं के बीच ये कोरी शरारत सबके चेहरों पर ठिठोलियाँ ले आई, ग्रामीण परिवेश का यही सौन्दर्य है यहाँ गालियाँ भी भाव और प्रेम का जीवित प्रमाण होती हैं शायद इसलिये ही इन मटमैली गलियों में घृणा के अंकुर सहज नहीं फूटते...

और फिर एक साथ गारी के स्वर गूँज उठे-

*बनारस गेंदिया ना मारो, हमखां लाग जै है जू।*
*हमारें लाग जै है जू, गगर मोरी फूट जै है जू।।*
*गगर मोरी फूट जै है जू, सास मोरी रूठ जै है जू।*
*सास मोरी रुठ जै है जू, नैन मोरे भींज जै हैं जू।।*

*नैन मोरे भींज जैं हैं जू, कजर मोरो छूट जै है जू।*
*कजर मोरो छूट जै है जू, बलम मोरो रूठ जै है जू।।*

लहरिया देर से दिखाई नहीं पड़ी तो राधिका का मन अकुलाने लगा था, कहीं ये भीतर ना घुस जाये तो फिर बवाल हो... उसने आँखें चौतरफा दौड़ाईं तो लहरिया दरवाजे पर सब बच्चों से अलग एक कोने में धूल से बार-बार घरौंदा बनाने की कोशिश कर रही थी... सूखी धूल बार-बार बिखर जाती थी... वो फिर बनाती फिर टूट जाता... जब इतनी कोशिशों के बाद भी घरौंदा ना बन पाया तो लहरिया दौड़ी-दौड़ी अपनी अम्मा के पास आई और हाथ पकड़कर खींचते हुए बोली- *अम्मा! हमाई कोठी नईं बनती, तुम चलो बनाओ।*

राधिका ने लहरिया को धूल से सना देखा तो दाँत पीसते हुए बोली-

*ये क्या कर आई है, एक जोड़ी तो कपड़ा हैं वो भी मैले कर लिये अब शाम को पंगत में का पहनेगी? मैंने मना किया था ना कि धूरा में ना लोटना।*

लहरिया ने मुँह फुलाते हुये कहा- *तुमने ही तो कहा था कि ब्याह में जाने के बाद खेल लेना... अब तो हम ब्याह में आ गये ना, अब चलो न अम्मा हम भी ऐसी वाली कोठी बनाऊँगी, चलो... चलो!*

राधिका ने हाथ झटकते हुए कहा- *भगवान्! ना जाने कितनी अक्ल दे दी है इस मौड़ी को, अब इसे धूरा से महल बनाना है... चल अब हैंडपंप पे, अपनी कोठी बाद में बनाना, मैली फराक पहनें बड़ी पुरखिन ने देख लिया तो हम दोनों को भगा देगी।*

लहरिया भगाये जाने के डर से चुपचाप अम्मा के साथ हैंडपंप पर आ गई। राधिका ने उसकी फ्रॉक से धूल साफ की, मुँह हाथ धुलाये और लहरिया को समझाते हुए कहा- *अब धूल में ना जाना समझी, नईं तो ना मिठाई मिलेगी और ना बाजे देख पायेगी... अब यहीं चुपचाप बैठना मेरे पास।*

राधिका ने लहरिया को अपने बगल में बिठा लिया और फिर चकले बेलन की संयुति में जुट गई। लहरिया भी कुछ देर तो चुपचाप अम्मा की ओली में लेटी छाती चचोरती रही, फिर उठी, आटे के पास बैठ गई, कभी तिरछी निगाहों से आटे को देखती, कभी अम्मा और बाकी लोगों को, उसकी ये उत्पाती आँखें नई जुगत गढ़ रही थीं। बचपन होता ही प्रयोगधर्मी है और उस पर ये प्रयोगधर्मिता भी इतनी हठीली होती है कि जब तक पूरी ना हो मन से एक इंच भी टस से मस नहीं होती।

लहरिया के दिमाग में नई खुराफात जन्म ले रही थी। उसने धीरे से आटे की बड़ी सी लोई उठाई और अपनी अम्मा के पीछे जा दुबकी, उस आटे की लोई को कुतर-कुतरकर कुछ गढ़ रही थी। जब उसका ये गढ़ना पूरा हुआ तो झट से अम्मा के सामने कूद कर मुस्कराती हुई आई और बोली- *अम्मा! देखो हम भी दुलैन बन गये?*

उसने अपने माथे पर आटे से बेंदी सजाई थी, हाथों में चूड़ियाँ लपेटी हुई थीं, पैरों में पायल और गले का हार भी चिपका लिया था, ऐसी लगती थी जैसे कोई मैदे की दुल्हन हो!

उसकी ये शरारत और हसरतों भरी मुस्कुराहट सारी सम्पत्तियों की तोल में हजार गुना बैठे। उसकी मासूम ख्वाहिश पर सारे जहान की धन सम्पदा लुटा देने को जी चाह उठता लेकिन गरीबी वो मर्ज है जो देवों को भी मुट्ठीभर तण्डुल काँख में छुपाने को विवश कर दे।

सब औरतें बेलन रोककर लहरिया को देखकर हँस पड़ीं- *देखो तो कैसी नौनी दुलइया है... अभी उड़ी चली जातीं बिदेश।*

घिटोई ने लहरिया के गाल खींचते हुए कहा- *क्यों री कहाँ से इतनी अक्कल दौरती है तेरी... देखो तो कैसे गहने गुरिया गढ़े हैं!*

राधिका भी छोर से मुँह दबा मुस्कुरा उठी- *अब ये क्या किया री? कहाँ से सीखती है ये सब? मैंने तो गहने के नाम पे कभी डोरा भी ना पहना. .. तूने जे सब कहाँ से देखा।*

हरदेई ने कहा- *काये कहाँ से देखा, कोठी भर में मिहिरियाँ कैसी सजी बंधी फिरतीं हैं... तूने नईं देखा तो का बो भी आँखें मूँद लेती।*

राधिका अचानक बेटी का सुख भूल चिन्तित होकर बोली- *जे सब तो ठीक है जिज्जी, किसी ने देख लिया तो आफत हो जाएगी, दस बातें सुनने मिलेंगी सो अलग, अभी जब पिछली बार आई थी तो कितनी निखराई कराई थी, अब जे देखो फिर कारस्तानी कर बैठ गई, जाने कितनी झिड़की सुनवाती है, भमानी है पूरी।*

राधिका ने झट से पकड़ उसे अपनी ओली में छुपा लिया और उसके आटे से बने गहने नोच-नोचकर किनारे रखने लगी, लहरिया छिटक कर दूर खड़ी होकर चिल्लाई- *नईं अम्मा! ना उतारो हमें भी दुलैन बनना है।*

राधिका कुछ कहती उससे पहले जिसका डर था वो सामने आ खड़ी हुई, बड़ी पुरखिन बखरी में आ गईं थीं। लहरिया को चून में सना देख दाँत भींचते हुए बोलीं-

> *अरे राम हो! महामाई परे ई मौड़ी पे! देखो तो, बड़ी बैघुनियाऊ है, कैसा पिसान बर्बाद करती है... कितनी बार कहा राधिका अपनी इस छिपकली को छोड़ के आया कर, चण्डाल चौकड़ी है पूरी... जाने कहाँ-कहाँ से उधम औरता है इसको!*

बड़ी पुरखिन की आवाज सुनकर लहरिया सहम गई, डरी आँखों से उसने बड़ी पुरखिन को तरेरा तो वे और झल्ला उठीं- *अरी ओ देवी! अपने जे चिरंग्गा से गटा ना काढ़... जा अपने बाप को दिखाना... एक तो उपद्रव करे ऊपर से नैन तरेरे...*

राधिका के चेहरे पर क्रोध और पीड़ा के मिश्रित भाव उभर रहे थे लेकिन उसने स्वयं को समेकित करते हुए कहा- *बड़ी पुरखिन! नाराज ना हो, अब बिल्कुल ना करेगी शैतानी।*

बड़ी पुरखिन ने इस बार थोड़ा और जोर फटकारा-

*तू तो हर बार यही कहती है... पर तेरी ये लढ़ेत्तरी माने तब ना... अरे बाल-बच्चों को ऐसे काबू में रखा जाता है कि महतारी-बाप की आँख से डरायें... लेकिन तेरी ये भमानी तो जैसे सोने की ईंटें हगती है ऐसे खोपड़ी पे चढ़ाये रहते हो तुम दोनों... ऐसे आकाश छेदने वाले बच्चा हमें तनक नहीं भाते, हमारे तो बाल-बच्चे हमारी एक नजर में खड़े-खड़े मूत दें।*

बड़ी पुरखिन बड़बड़ाते हुए हलवाईयों के पास जा बैठीं। बिटिया को आटे के जेवर पहने देख राधिका के बस में होता तो उसे छाती से चिपका अभी दुनियाभर की दौलत उसारकर फेंक देती लेकिन यहाँ राधिका माँ से पहले गाँव की अदना सी कामदार औरत थी। जिसे बस जी हजूरी का अधिकार था।

हर बार जब भी बड़ी पुरखिन लहरिया को झिड़कती हैं तो उनका एक-एक शब्द पिघलती आग सा बरसता है उस पर लेकिन उसको बुझाने की कोशिश करना भी किसी घोर पाप से कम नहीं होता। उसने बुदबदाते हुए लहरिया को पकड़ा और बैठा लिया-

*बच्चा है अगर शैतानी करता है तो कसाई तो नहीं हो जायेंगे, और मैं तो वैसे भी कितना चिल्लाती हूँ कि उधम ना करे, पर बच्चा है उसका तो धरम ही उधम करना होता है... बाल सफेद हो गये... उमर ढरक गई लेकिन डुकरिया को इतना समझ ना आया।*

डबडबाई आँखों को छुपाते हुए राधिका सबसे बोली- *जिज्जी! जाती हूँ, ये बिटिया कौन कुछ करने देगी... दोबारा कुछ उठापटक करेगी और बड़ी पुरखिन ने देखा तो फिर गुस्सा करेंगी... कित्ता चिल्लाऊँ बच्चा है, मोरा करेजा भी भभक उठता है।*

घिटोई ने हाथ पकड़ते हुये कहा- *अरे काहे को जाती है... ऐसे जायेगी तो वो और गुर्रायेंगी... कहेंगीं... बड़ी बात वाली हो गई है... कछु कहना भी अजुर है... लहरिया को छज्जन खिला लेगा, तू बैठ!*

घिटोई ने छज्जन को आवाज दी– *अरे छज्जन! ओ छज्जन! लहरिया को तो ले जा बेटा...खिला ले।*

छज्जन दौड़कर आ गया, लहरिया ने उसे देखा तो जीभ निकालकर बिरा दिया, छज्जन ने भी मुँह बनाकर उसे चिढ़ा दिया।

राधिका ने कहा– *छज्जन! इसे ले जा लेकिन अपने साथ रखना, देखना मट्टी में कपड़ा ना मैले करे और बेटा लड़ना नईं... तू तो बड़ा है ना।*

छज्जन लहरिया को आँखों से चिढ़ाते हुए बोला– *ना चाची मैं ना लड़ूंगा, यही लड़ती रहती है और गालियाँ भी देती है, उस दिन इसने मुझे कुत्ता, हरामी कहा था।*

लहरिया ने छज्जन को घूरा और बोली– *हमने नईं दी गाली अम्मा!*

राधिका ने लहरिया को गुस्से से देखा और कान खींचते हुए कहा– *क्यों? अब ये गारीं देना कहाँ से सीखी तू?*

> *अम्मा जेई तो देता है... इसलिये... इसलिये... हमने भी इसको कुत्ता, हरामी बोला।*

छज्जन अब चुपचाप मुँह दुबकाये खड़ा था। राधिका ने दोनों को कहा– *बेटा लड़ा नईं जाता और गारीं तो बिल्कुल नईं दी जातीं, जो कोऊ भी गारीं देता है महामाई उसकी जीभ काट ले जाती हैं।*

लहरिया मुँह बिचकाते हुए बोली– *जेई देता है अम्मा! इसी की जीभ कटेगी।*

राधिका ने माथा पीटा और घिटोई की तरफ देखते हुए बोली– *जिज्जी! जाती हूँ... जे कौन बैठने देगी... फालतू फिर गुथ गये तो और आफत।*

घिटोई छज्जन के ऊपर चिल्लाई– *काहे रे... तू गारीं देता है, और उसे मारता भी है... बाप के लक्षण ना सीख... नईं तो चटनी बना के धर दूँगी... समझा कि नहीं...।*

लहरिया को डाँट खिलवाने का छज्जन का दाँव उल्टा उसी पर आ

पड़ा, अब तो सबकी सुनने में ही सार है तो छज्जन भी मुँह उरमाये हुए बोला- *रामधई चाची! अब बिल्कुल ना मारूँगा।*

राधिका और घिटोई ने दोनों को खेलने जाने की अनुमति दे दी लेकिन पट्ठे में ऐंठ ऐसी थी जैसे नये-नये जवान हुए छौंने की होती है। मन ही मन गुरगुराता हुआ जाता था-

> *उस दिन तूने मेरी बन्दूक तोड़ी, आज गाड़ी तोड़ी और सबके सामने डाँट भी खिलवाई, बच्चू अब आई है मेरे चंगुल में, ऐसा मजा चखाऊँगा कि सब भूल जायेगी! अब तुझे बताता हूँ, ऐसी डाँट घलवाऊँगा कि दोबारा ना मेरा खिलौना तोड़ सकेगी, नाम मेरी अम्मा मुझे डाँटेगी।*

उसने लहरिया से कहा- *तू तो मुझसे कुट्टी थी... अब तेरी अम्मा ने तुझे काहे मेरे साथ खेलने भेजा है।*

लहरिया ने मुँह बनाया और छज्जन को धक्का देते हुए बोली- *तूने अम्मा को क्यों बताया कि हमने तुझे कुत्ता हरामी बोला?*

छज्जन धपाक से मिट्टी में गिर पड़ा- *लहरिया तूने फिर मारा, अब तो जे ले।* छज्जन ने लहरिया को एक चाँटा रसीद कर दिया।

लहरिया जोर-जोर से रोकर अम्मा के पास जाने को दौड़ी तो छज्जन डर गया। उसने उसे रोका और लहरिया का मुँह दबाकर कहने लगा-

> *अच्छा चल अब रो मत... अब मैं कुट्टी नहीं हूँ... अगर तू चुप हो गई तो अभी वहाँ जो मिठाई बन रही है... वो लाके दूँगा.. बस तू चुप हो जा... नईं तो तेरी अम्मा और मेरी अम्मा दोनों मेरी सुटाई धरेंगी।*

लहरिया साँसे भरती हुई बोली- *हाँ सच्ची, मिठाई लाके देगा... नईं तो अम्मा से शिकायत करूँगी।*

अब तो छज्जन की त्योरियाँ और चढ़ आई, उसने कहा- *चल तुझे एक अच्छी जगह लेकर चलता हूँ... वहाँ बहुत सारी मिठाई मिलती हैं... पर*

*तू चुपचाप चलना... हल्ला करेगी तो मिलेगा ठेंगा।*

लहरिया की आँसूओं भरी आँखें चमकने लगीं- *चल... चल...।*

छज्जन लहरिया का हाथ पकड़े छुपते-छुपाते उसे कोठी के भीतर ले आया और रचना के कमरे में ले जाकर एक कोने में छोड़ दिया, फुसफुसाकर बोला- *लहरिया! यहीं रहना जब तक मैं ना आ जाऊँ, बिल्कुल भी ना डुलना यहाँ से।*

लहरिया ने फुसफुसाते हुए हामी भर दी और चुपचाप कोने में दुबककर बैठ गई। छज्जन अपना बदला पूरा हो जाने की गर्वानुभूति लिये हुये सोच-सोचकर खुश हो रहा था-

> *बड़ी पुरखिन या कोई घर वाला, लहरिया को दुल्हन के कमरे में देखेगा तो बस फिर क्या अच्छी डाँट पड़ेगी चुड़ैल को.. मुझे जब देखो तब मारती है... आज पता चलेगा बेट्टा को।*

इधर लहरिया रचना के कमरे में कोने में सिमटकर बैठी थी। हँसी, ठिठोलियाँ, गाना, बजाना सबकुछ एक-साथ चल रहा था। झुण्डभर लड़कियाँ कमरे में घुसी हुई थीं, लहरिया भी बेफिक्र बैठी थी कि मैं तो इतनी सी हूँ, इत्ते सारे लोगों में उसे कौन देखने वाला है।

रचना की माँ रज्जन ब्याह का लहँगा लिये कमरे में आईं और बोलीं-

> *रचना! इसकी अपने हिसाब से जाँच परख कर ले... बारात वाले दिन कुछ घट-बढ़ हुआ तो तू ततैया सी भन्नाती फिरेगी। अच्छा जे तो बता... तुझे पसंद है ये रंग? मेरे हिसाब से तो दुल्हन का जोड़ा तो लाल ही अच्छा लगता है।*
>
> *अरे मम्मी! कौन जमाने में हो... अब सब रंग दुल्हन के होते हैं... ये तो मैंने खास बनवाया है... देखो तो कितना सुन्दर है, मैं अभी पहनकर दिखाऊँगी... नहीं तो तुम्हारे कलेजे में भभकन मची रहेगी कि ना जाने कैसा लगेगा... कम से कम तुम्हारे जी को भी शान्ति पड़ जायेगी।*

*रज्जन ने तरेरा... अरी भमानी बाई जू! अगर बड़ी पुरखिन को पता लग गया कि बिना उपटन के तूने जोड़ा पहन लिया तो प्रान तेरे बाद में लेंगी मुझे पहले मार देंगी।*

*रचना ने लहँगा देखते हुए.. अरे मम्मी! क्यों इतना डरती हो, कुछ नहीं होगा, मैं सब सम्हाल लूंगी, देखूँ तो जरा कैसी लगने वाली हूँ। उस दिन तो खुद को निहारने की भी फुर्सत नहीं मिलेगी...*

*...रज्जन लम्बी साँस भरते हुए बोली कि महामाई! जो करना है करो, तुझे आज ते कोई समझा पाया है जो मैं समझा पाऊँगी।*

रचना ने चूड़ियाँ पहनीं, सहेलियों ने उसके माथे पर बेंदी, पैरों में पायल पहनाई, महावर लगाने को हुई तो रज्जन ने रोक दिया कि नहाने से पहले महावर नहीं लगाते... रचना ने माँ की ये बात मान ली... उसने तुरन्त ही नीला चमचमाता लहँगा पहना और शीशे के सामने खड़ी होकर खुद को निहारने लगी... हल्दी चढ़े पीले-पीले तन पर नीला लहँगा ऐसा जँचता था कि जो कोई एक नजर भी देख ले उस पर रीझे बिना ना रहे।

लहँगे से सच में उसका सौन्दर्य ऐसा चमक उठा था जैसे दूधिया आकाश में हजारों नीले कमल शृंगार किये हुये एकसाथ खिल उठे हों। नीली लाल चूड़ियों में जैसे सितारे टाँके गये थे, उस पर सुनहरे जेवर ऐसे जैसे भोर के हल्दी लगे आकाश पर किरणें बिखर जाती हैं।

रज्जन आँखें बड़ी करते हुए बोली- *हाय दईया! उतार के रख तुरन्त नजर ना लग जाये रचना... बहुतई फबता है तुझ पर ये रंग। अरी लड़कियों जाओ तो चौके से हींग ले आओ... बाँध दूँ... ऐसे में बहुत टोने-टोटके लगते हैं।*

रचना अपनी तारीफ सुनकर शरमा गई, अपने आपको दर्पण के सामने खड़ाकर देर तक निहारती रही- *हाँ मम्मी सही में अच्छी तो लग रही*

*हूँ ना? कहीं कुछ कमी तो नहीं रह गई, देख लो अच्छे से उस दिन फिर गिचर-पिचर हो... ये हमें ना भायेगा।*

रज्जन ने बलैंया लेते उसका माथा चूमा - *अरे बहुतई सुन्दर लगती है, हमारी मैदा कैसी लोई को देखके... बराती तो बेहोश हो जायेंगे।*

लहरिया भी कोने में पुतरिया बनी रचना का ये सारा साज-शृंगार देख रही थी। उसकी छोटी कमल की पंखुड़ियों सी आँखों में आकाश के जैसे सारे नखत उतर आये थे। चेहरे पर आकाशभर ख्वाहिशों का झुरमुट एक साथ आन बैठा था-

> *आहा... हा... कितना अच्छा है ये नीला लहँगा... कैसा चमचम चमकता है, कैसे घुंघरु बजते हैं। उसकी लार जैसे आँखों के मोतियों से टपक रही थी... पूरे मुख पर जैसे कितनी ही आँखें उग आईं थीं और सबकी सब जैसे एक साथ चौंधियाई टकटकी बाँधे लहँगे को निहार रहीं थीं। दुल्हन के शृंगार का एक-एक रंग ज्यों उसकी धमनियों में जा-जाकर बस रहा था। मस्तिष्क की सारी धाराओं में जैसे बस ये चमचमाता नीला लहँगा बहने लगा था और हर शिरा जैसे उसको आदेश दे रही थी कि जा-जा छूकर तो देख और लहरिया बेभूल सी मन के आदेशों को मानती हुई धीरे से उठी और रचना के लहँगे की चुनरिया के छोर को हथेलियों में कभी भींचती कभी गालों पर बिछा लेती... फिर महावर और सिन्दूर की डिबियों को बारी-बारी से देखती... उसके पंखुड़ी से होठों पर ऐसी मुस्कान बिखरी पड़ी थी कि स्वर्ग की अनुभूति भी क्या मनुष्यों को ऐसा सुख देती होगी।*

तभी बड़ी पुरखिन कमरे में आ गईं, गरजते हुए बोलीं-

> *रचना! पूरे तेल चढ़ने से पहले तूने ये जोड़ा कैसे पहन लिया, चार किताबें पढ़ गई है तो... शगुन असगुन सब चूल्हे में झोंक दिये हैं... और जे कौन रंग ले आई है तू... सब नियम कायदे*

*गंगा में सिरा आई... बस खबसूरती बढ़ जाये... मुझे बिल्कुल ना भाता है ये रंग... देखो तो का कहेगा आदमी कि लाल रंग ना जुहाना बिटिया को... तू तो नाक कतर के धरेगी हमारी।*

रचना रुआंसी सी होकर बोली–

*बड़ी पुरखिन! अब इसमें रंग जुहाने वाली कौन सी बात है, रंग में भी कौनऊ भेद होता है का... ऐसा होता तो इन्द्रधनुष भी कहता... लो जी हम तो लाल रंग के ही रहेंगे।*

*हाँ हर रंग का महत्त्व ना होता तो सूरज भी कहता... नहीं जी मुझे लाल रंग पसन्द नहीं... नीला बनके आकाश चढूँगा... बड़ी आई... हूँह... जब देखो तब बस अपने मन की करनी है, हम और तो गली के पथरा हैं मारो ठोकर और बढ़ जाओ।*

रचना कुछ रुआंसी सी होकर बोली–

*आपका कहना ना मानती तो कह देती... इस देहात से ब्याह नहीं करना... मैंने ही तुम्हारे दामाद को मनाया था कि हमारे गाँव में बारात लेकर आयें... अब यहाँ हमारे निपट देहात में बरात आ रही है... जहाँ ना बिजली का ठिकाना और ना वैसी शान–ओ–शौकत पर फिर भी राजी हो गये... इतने सब के बाद अब मैं भी क्या बिल्कुल गँवार बनकर ब्याह करूँ ये शर्त भी थी क्या? शहर में सब लोग ऐसे ही रंग पहनते हैं।*

बड़ी पुरखिन रचना की आँखों में आँसू तो कभी देख ही नहीं सकती थीं। अब तो उसका ब्याह होने जा रहा था तो उसका रुआँसा सा चेहरा देख सिर पर हाथ फेरा और कहा–

*ना...ना.. बेटा! ये टसूआ ना बहा अभी से... नहीं तो सबके सब काम–धाम छोड़ आँखें समेटते बैठ जायेंगे... जो तू चाहती है पहन... मैं तो बस इतना कहती थी कि टीका के दिन जब उबटन होके स्नान हो जाता... तब ये कोरा जोड़ा पहना जाता*

*है... तू ही बता जब आंग पे कपड़ा धर लिया तो कोरा कहाँ रहा? और सगुन के कामों में जे सब बिचार बहुत लगते हैं बेटा! बूढ़े पुराने हैं... हम सो अपने अनुभव बता देते हैं... अब तुम नये जमाने की... हम नई जानते का होता है... तुमाये ई नये जमाने में।*

रचना को तो उसके रूआँसे चेहरे ने बचा लिया लेकिन रज्जन को कौन बचाता? बड़ी पुरखिन उसकी तरफ आँखें तरेरते हुये बोलीं–

*रज्जन! वैसे तो ससत्तर पहाड़े पढ़ती है... पर आज सब बिसर गया तुझे... दीन–दुनिया कुछ नहीं पता क्या... ऐसा नहीं कि उसे बता देती... समझा देती... लेकिन आहाँ... तूने ही कहा होगा कि ले पहन के देख ले...*

रज्जन के चेहरा फक्क पड़ा हुआ था, एक शब्द कहने को भी हिम्मत करनी पड़ रही थी– *नई अम्मा! ऐसो नईयाँ!*

*अब चुप बिल्कुल, यहाँ खड़ी–खड़ी बिटिया की सुन्दरता निरख रही है, जा लहँगा पे गंगाजल छिड़क और थोड़ा कपूर की लौ दिखा दे।*

इसी बीच लड़कियों की भीड़ में बड़ी पुरखिन की नजर शीशे के सामने खड़ी लहरिया पर पड़ गई। अब तो जैसे किसी ने तेज धधकती आग में कनस्तर भर घी उड़ेल दिया हो। वे चीखकर दाँत भींचते हुए बोलीं– *क्यों री छछूंदरी! तू यहाँ क्या करती है? कौन लाया तुझे यहाँ?*

लहरिया सहम गई, पलभर में उसकी धमनियों में ख्वाहिशों के घुंघरू पहने नाचता रक्त यकायक जैसे सूखकर झर गया हो। उसकी आँखों और चेहरे पर तैरती मुस्कान जैसे किसी गहरे काले साये में डूब गई हो। वो थरथर काँपने लगी, छोटी–छोटी हथेलियों में समेटे महावर की कटोरी छूटकर खनखन करते नीचे बिखर गई। जैसे ही कटोरी गिरी तो लहरिया दंदककर रोने लगी। हाथ चूड़ियों के डब्बे पर जा लगा, वो भी

बेमुरउव्वत धड़धड़ाकर जमीन पर पसर गया। अब तो लहरिया ऐसी सहमी जैसे किसी दानव की जकड़ में आ गई हो और उसके निकलने के सारे मार्ग किसी बड़े पत्थर से रोक दिये गये हों।

धरती पर बिखरी-टूटी चूड़ियाँ और अमीबे सा फैला महावर देख तो बड़ी पुरखिन का क्रोध जैसे आकाश में शूल भेदने को सज्ज हो गया था। लहरिया के बाल पकड़कर गाल पर एक जोरदार तमाचा रगड़ दिया। लहरिया सीधे दीवार से जा भिड़ी-

*हाय दईया, महामाई भली करें तेरी! अरी मौड़ी! देख तो कैसा असगुन किया है। महावर फैला दिया... चूरियाँ टोर दीं... बस येही कारन जे मौड़ी मुझे सत्तुर सी लगती है... जब घुसेगी सो भीतर को ही घुसेगी... अनिष्ट कर दिया इसने तो! फिर हाथ जोड़े... आँखें मींचे गिड़गिड़ाईं...*

*हे महामाई, सवा मन का रोट चढ़ाऊँ... असगुन काटो महामाई! असगुन काटो! जैसे ही आँखें खोलीं तो फिर ऐसे भभकीं... ज्यों किसी ने चिंगारी पर कपूर डाल दिया हो... अब जाती है यहाँ से कि नहीं वरना डंडा उठाऊँ... ब्याह भर दिख भी गई तो टांगे टोर के रख दूँगी तेरी!*

लहरिया शीशे के बगल में दीवार से यूँ लगी सिसक रही थी जैसे वो निर्जीव सी दीवार उसे अपने आलिंगन में लेके अंदर तक छुपा लेगी और ये बड़ी पुरखिन देखती रह जायेंगी। जैसे-जैसे बड़ी पुरखिन की आवाज तेज होती... वो डर के मारे रोते हुये दीवार में ऐसे चिपकती जाती जैसे गड़ ही जायेगी लेकिन आखिर दीवार भी तो पत्थर ही ठहरी ....ना तो उसने उस मासूम नौनिहाल को अपने आलिंगन में लिया... ना ही लहरिया के भय की शक्ति इतनी हो पाई कि वो दीवार में गड़ जाये।

बड़ी पुरखिन डंडा फटकारती पास आ गई थीं उन्होंने लहरिया का हाथ घसीटकर सामने खड़ा कर दिया और एक और जोर का तमाचा गाल पर जड़ दिया... बच्ची बिलबिला उठी...दोनों गालों पर पाँच की पाँच

उंगलियाँ उछल आईं थीं। हँसी-ठिठोलियों भरा कमरा... अब सन्नाटे में था... फुसफुसाहटें गूंज रही थीं।

बड़ी पुरखिन का चेहरा धधकते कोयले सा हो गया था। खाल क्रोध से थरथरा रही थी, सांसों का उतार चढ़ाव ऐसा जैसे तेज प्रवाहित नदी में कोई तूफानी हवा घुल गई हो और लहरिया जोर-जोर से रोती, नाक-लार, आँसू... सब एक रस होकर उसके छोटे से लाल हुये चेहरे पर किसी झरने से बह रहे थे... लहरिया दीवार को दोनों हाथों से भींचे मुँह गड़ाये देती थी। श्वांसों के सुर गले में रोककर ऐसे चुप करा रही थी मानो वे भी बड़ी पुरखिन के हाथों से छीनने का गुनाह भी उस पर ना आ जाये।

कुछ घूँघटों की ओट लिये... कुछ छोरों से मुँह दबाये... चुपचाप इस भय खाई बछिया को निरख रही थीं। किसी ने हिम्मत नहीं कि बड़ी पुरखिन को चुप करा सके। रचना ने थूक गुटकते हुये बड़ी पुरखिन को अपनी बाहों में जकड़ा और पीछे ले जाकर बोली-

*देखो तो कैसी डरती है बिटिया... बस करो रहने दो बच्ची है... बच्चों का सगुन असगुन मानती हो और गलती तो तुम्हारी भी है... क्यों ऐसे चिल्लाईं जैसे कोई तुम्हारे छोर से रूपैया छोरे ले जाता हो... अब वो का जाने तुम्हारी आदत.. दंदक गई और छुटक गई कटोरी।*

एक रचना ही थी जो बड़ी पुरखिन को इतने बोल बोल सकती थी, बाकी तो ईश्वर के बनाये किन्हीं पुतलों में इतनी हिम्मत नहीं थी।

आँखें बड़ी नटनी होती हैं, जितनी जल्दी प्रेम उजागर करती हैं उससे अधिक शीघ्रता से क्रोध को भाषा दे दिया करती हैं। बड़ी पुरखिन ने रचना को तरेरा और डपटते हुए बोलीं-

*सोचती हूँ तेरा ब्याह है...दो दिन की है कुछ ना कहूँ...लेकिन मानेगी ना...अपने पोथी पतरा खुद ही बाँचाकर मुझे ना बताया कर और अब तक जे लहँगा पहने डटी है, एक बार में समझ*

*नहीं आता का तुझे... रचना भी उनका गुस्सा देखने के बाद. .. कुछ ना कह सकी चुपचाप लहँगा उतारने चली गई।*

लहरिया की आँखों में चमकते सारे नक्षत्र, पानी की गरम बूँदे बनकर उसके गालों पर ढुलककर सूखने लगे थे। लहरिया हिल्कियाँ लेती अब भी दीवार से लगी बैठी थी। पाँव बाहर दौड़ जाने को उठते ही ना थे, देह डर के मार हवा सी कंपकंपा रही थी क्योंकि जिस दरवाजे से उसे जाना था उस पर जैसे सैकड़ों तूफान मुँह बाये उसे खाने के लिये खड़े थे, उसे लगता था कि यदि उसने एक कदम भी बढ़ाया तो वो सब उसे निगल जायेंगे। घुटनों में ऐसे सिमटी थी जैसे किसी चक्रव्यूह के मध्य में बैठकर अभिमन्यु खुद को बचा रहा हो।

राधिका जब घिटोई के साथ दौड़ी-दौड़ी पहुँची तो कोने में सिमटी बैठी लहरिया ऐसे छुटककर अम्मा से लिपटी जैसे किसी पिंजरे में फँसे पंछी को प्राणों का दान मिल गया हो। हिल्कियाँ फिर बिलखने में तब्दील हो गई, गालों पर उंगलियों के निशान ऐसे उभर आये थे जैसे किसी ने सैन्दुरी माटी से मोटी-मोटी रेखायें बना दी हों। राधिका ने दोनों हाथों से लहरिया को चपेट लिया... पुचकारा... चूमा और बोली- *का हुआ बेटा! का हुआ, चुप जा, चुप जा!*

राधिका की आँखों की लाल हुई धरती से जैसे किसी नदी का जन्म हो चला था। गोते खाती, खारी नदी के बीच से झाँकती काली-काली पुतलियाँ, क्रोध और पीड़ा से भरी बड़ी पुरखिन को तरेरने से भी ना डरीं, उसने चेहरा झुकाते हुये कहा-

*ऐसा कौन सा अपराध कर दिया था बड़ी पुरखिन... जो जे भी ना देखा कि बच्चा है... ऐसी निर्दयता से मारा कि मुँह भर में उलछर आया... इतना निर्मम तो कोई जानवर के बच्चे के लिये भी नहीं होता बड़ी पुरखिन!*

बड़ी पुरखिन दाँत मीसते हुए बोलीं-

*अच्छा, बड़ी लम्बी जीभ हुई जाती है तेरी... मैंने जब हजार*

*बार कहा था तुझसे कि अपनी इस छटांक भर की मौड़ी को सम्हार के रखना राधिका! आज तेरी बिटिया ने अच्छा ना किया है... देख जे देख, जे देख, कैसा असगुन किया है... पूरा महावर... पूरा सैन्दुर छिटका पड़ा है धरती पर।*

राधिका कुछ कहती उससे पहले ही बड़ी पुरखिन फिर बोल पड़ीं– *तू अब और वकीली ना कर देना... नई तो अच्छा ना होगा... मैं अच्छे मौका पर रंतभौंर नई मचाना चाहती... इसलिये चुपचाप चली जा।*

राधिका ने हाथ जोड़कर कहा–

*बड़ी पुरखिन! सुख-सुहाग का काज है मैं भी कोई कलेश करने नई आई थी... ना अब चाहती हूँ... पर बच्चा है गलती हो गई... और तुम तो बुजुर्ग हो... इतना तो जानती हो कि बच्चन के हाथ का असगुन नई लगता।*

अब तो बड़ी पुरखिन की लाल आँखे जैसे निकल ही पड़ेंगी, वे इतनी तेजी से चीखीं कि वहाँ खड़ा हर कोई सहम गया–

*का कहा... का कहा? फिर से बोल जरा... आज तेरी बड़ी जबान चल रही... चार पैरियों के भये ब्याहे कराये बैठी हूँ और मुझे पढ़ाने चली है। अरी महामाई है का तोरी मौड़ी? और तू कौन सी नायाधीस भई है जो मुझे सगुन असगुन की सिक्षा देने चली है.. हैं... देखो तो बड़ी बकीली पढ़ गई है ये कुम्हरा की लुगाई!*

घिटोई दरवाजे पर खड़ी टकटकी लगाये खड़ी थी। ना तो भीतर जाने की हिम्मत होती थी, ना ही बाहर जाने की क्योंकि भीतर गई तो इस अग्नि की लपटों से उसे भी लिपटना ही होगा और अगर चली गई तो फिर ये गाँवभर के चटकारे की खबर उसकी झोली से छूट जायेगी।

राधिका बड़ी पुरखिन का लाल हुआ मुख देख कुछ सहम गई। क्रोध पर शक्ति का भय हावी हो गया था। उसने पाँव छूते हुए कहा–

*गलती हो गई बड़ी पुरखिन अब बिल्कुल कदम ना धरेगी बिटिया, कसम खाती हूँ... तुम गुस्सा ना हो... देखो तो तुम्हारी ही नातिन का ब्याह है... काहे कलेजा भूंजती हो अपना... अब बिल्कुल ना आयेगी लहरिया यहाँ... मैं भी जाती हूँ।*

बड़ी पुरखिन का क्रोध मानो हरेक शब्द पर दोगुना तेज चढ़ रहा था–

*फिर बड़ा ज्ञान बाँचने लगी तू... अब अन्तिम बार आज कहती हूँ... अपनी मौड़ी को लेके आये भी तो सम्हार के रखा कर... वरना इसे घर छोड़के आया कर, असगुन करती है और नर्राती है... ले ही जा अब हमारी आँखों के सामने से ...नई तो बहुत बुरा हो जाएगा।*

लहरिया अम्मा की कमर से चिपकी अब शान्त थी। अपनी अम्मा पर बड़ी पुरखिन को चिल्लाते देख जैसे उसका भय किसी उड़नखटोले पर बैठ छू हो गया हो। बड़ी-बड़ी आँखों से तरेरते हुये चीखी– *बड़ी पुख्खिन हमाई अम्मा को नई चिल्लाओ, हम मार दूँगी।*

राधिका ने झट से उसके मुँह पर हाथ रखा लेकिन कसमसाकर अम्मा का हाथ झटक बड़ी पुरखिन के सामने जा खड़ी हुई, आँखें ऊपर किये तरेरती हुई, कमर पर हाथ रखे तनकर खड़ी हो गई– *हमाई अम्मा को नई चिल्लाओ, हम मार दूँगी।*

राधिका ने लहरिया को झट से अपने पास खींचा– *चल यहाँ से!*

बड़ी पुरखिन ने लहरिया की बाँहें खींचकर हाथ दिखाते हुये बोलीं–

*दाँत टोर दूँगी तेरे... इतनी हिम्मत तो तेरे बाप में नहीं कि मुझसे आँख मिला के बात करे और ये छटांक भर की छोकरी मुझे नटेरती है, फोर दूँगी ये कमलगटा सी आँखें।*

मानवीय जीवन का मूल्य यही है, स्वयं पर पड़ी विपत्तियों के समक्ष मनुष्य भले ही डरकर हारने लगे किन्तु जब वही आपत्तियाँ किसी अपने प्रिय पर आन पड़े तो वह शक्तिहीन होने पर भी ढाल बनकर खड़ा हो

जाता है। अब तक भय से थरथराती लहरिया, महतारी के लिये इसी मानवीय गुण का उदाहरण बनी और बड़ी पुरखिन के समक्ष तनकर खड़ी हो गई। देखने वाले बस ऐसे देख रहे थे मानों कड़कड़ाती बिजली और काले घने बादलों के बीच जैसे सूर्य, खड्ग चलाता हुआ खड़ा हो।

लहरिया का यूँ आँखे दिखाना मानो किसी चींटी ने अहं के पर्वत पर गहरा आघात कर दिया हो। बड़ी पुरखिन बिलबिला उठीं, लाठी उठाकर तानी ही थी कि राधिका ने उसे अपने पीछे कर लिया लेकिन लहरिया का मुख अब भी बड़ी पुरखिन की आँखों की पुतलियों पर तनकर नाच रहा था। सुर बस एक- *हमाई अम्मा को नईं चिल्लाओ।*

बड़ी पुरखिन का ये रूप देख घिटोई भी दरवाजे से दौड़कर भीतर आ गई। वो लहरिया और राधिका के आगे खड़ी होकर हाथ जोड़कर बोली- *हा... हा... बड़ी पुरखिन तुम्हारे पाँव छूती हूँ... जान दो... बच्चा है।*

राधिका जा तो तू लहरिया को लेकर जा यहाँ से काहे को बतबढ़ा करती है। घिटोई ने राधिका को धकेलते हुए कहा।

राधिका की आँखों से आँसू झर-झर बह चले थे। लहरिया को गोद में उठाया और जाने को हुई तो कमरे का सन्नाटा टूटकर अब बोल चला। महिलाओं के शब्दों ने अब चोला पहना और अब उनकी बारी थी-

> *देखो तो कैसो अपशगुन करो है... ई बिटिया ने... ऊपर से नर्राती है... ये भी नईं सिखाया महतारी-बाप ने कि बड़े बूढ़ों से कैसे बोला जाता है... राई भरी है लेकिन आँखें ऐसे काढ़ती है जैसे खा ही जायेगी।*
>
> *अरे बिटिया तो छोटी है... महताई-बाप का धरम होता है कि बच्चों को अच्छी सिक्षा दें लेकिन आजकल तो जमानो उल्टा है भाई... बच्चन को चुटइया पे हगाउत हैं।*
>
> *देखो तो तुम कामदार ठहरे अपने लरका बच्चा सम्हार के रखना चइये कि नईं बताओ? ब्याह-बरात का घर कितने*

*शगुनी काम होते हैं, इतना तो जानते ही हैं लेकिन नईं काहे को सम्हारें... बड़ी पुरखिन ने कछु तनक कह दिया तो देखो कैसी महतारी-बिटिया दोनऊँ आँखें चढ़ातीं चली आईं यहाँ।*

*अरे छोड़ो बिन्ना! ये कामदार बड़े चालू होते हैं, अपने बाल-बच्चों को भीतर तक घुसने के लिये छोड़ देती हैं, ताकि कछु छोटी-मोटी चीज हो तो चुपचाप उठा ले जायें, सब सिखाये-पढ़ाये होते हैं।*

महिलाओं की बातों को अब तक राधिका अपने तन से झार-झारकर फेंकती रही लेकिन इस अन्तिम कटाक्ष ने मानो कलेजे को कटारी से रेत दिया हो राधिका उलाहना सुनकर जाते-जाते ठहर गई। उसने पलटकर कड़ी सी आवाज में कहा-

*जिज्जी! हम छाती-फाड़ के मेहनत करते हैं, उसी मेहनत की कमाई खाते हैं, अपने बच्चा को भी मेहनत ही सिखाते हैं और दुनियादारी सीखना-सिखाना तो कोठी वालों का काम हैं। किसी के पास माटी की कितनी खदानें हो जायें लेकिन माटी की नरमी का कलेजा... हर किसी के पास नहीं होता... जो नरम हो तो जीवन देती है और सख्त हो तो छत लेकिन हम माटी गोढ़ने वाले... माटी के हर धरम को अपने में घोलते हैं, तब माटी को पथरा बनाकर महल बनाने को देते हैं। इन छतों की ईटें इन्हीं हाथों से गढ़ी हैं... इनको चाहे कितना मान हो जाये पर हम अपना नरमी का धरम कभी नहीं छोड़ते।*

बड़ी पुरखिन फिर गरज उठीं-

*आहा... हा... बड़ी सज्जन भई जाती है। यहाँ किसको ये ज्ञान सुनाती है री, तूने ईंटें पाथीं तो हमने भी मुट्ठी भर-भर कुबेर दिया है तुम्हें... आज बड़ी एहसान की बातें करती है... बताऊँ का मैं एहसान तुझे? बेटा बोटी-बोटी बिक जायेगी तेरे पूरे खानदान की... तब भी ना चुका पायेगी, और कोई होता*

*तो ई बात पर... तेरे खानदान की खाल उतरवाकर जूती चढ़ा लेता... चोरी ऊपर सैं सीना जोरी!*

घिटोई ने अबकि राधिका को और जोर से धकियाया- *जा राधिका काहे उल्टा सीधा बोलती है। हो गया जो हो गया, जाती काहे नहीं।*

राधिका ने घिटोई को तरेरा और बोली- *जिज्जी! तुम्हाई तरह मान मारके नईं जी सकते और ना अपनी सन्तान को सिखायें...* इतना कहकर राधिका लहरिया को लिये तेज कदमों से निकल गई।

घिटोई बस राधिका को जाते हुए देखती रह गई, मानो राधिका और लहरिया उसके मन में दबे किसी बीज को पानी देकर चली गई हो। इधर तेजी से बड़ी पुरखिन चिल्लाते हुए उसके पीछे दरवाजे तक आई-

*जा... जा... देखूँगी... तुझे भी, देखो तो कैसी जुबान चला के गई... इन लोगों को उंगरिया पकराओ... सीधे कौंचा पकरते हैं। मैं इसके खसम से काम लेती हूँ कि चलो इनका कछु भला हो जाये... लेकिन इनके दिमाग देखो तो कैसे सातवें आसमान पे बिराजे हैं...बिटिया जन के ऐसे ऐंठती है जैसे सरग की देवी जनमी होवे... कितनी भी ऐंठ ले कहायेगी निपूती ही... तेरे कुलच्छन ही हैं जो दिया उजियारने तक को कोई नहीं तुझे... और अच्छा है... नहीं है... ऐसी सन्तान से तो अच्छा होतई मर जाये।*

राधिका ने पलटकर ऐसे देखा तो जैसे किसी ने पीछे से कोई कुठार उसके सम्पूर्ण अस्तित्व पर दे मारी हो। अब तक सारी बातें औरतों की भीड़ में हुईं थीं पर अब गाँव-गली के आदमियों के बीच जैसे कोई उसके मान को एक-एक धज्जिया करके फेंक रहा हो। आज सूरज जैसे समय से पहले उसकी आँखों में डूब रहा था।

उसने घूँघट काढ़कर बस इतना कहा- *पुरखिन! बिटिया तुम्हारी भी है. .. ईसुर करे सुखी रहे!*

बड़ी पुरखिन ने वहीं से अपनी छड़ी उठाकर फेंकी और ऐसे साँसें भरती हुई चिल्लाई– *आना बेटा! एक–एक रोटी को ना तरसा दिया तो मुझे कोठी की आन है।*

घिटोई ने हाथ जोड़े और बोली–

> *शान्त हो जाओ... पुरखिन बड़े बोल ना बोलो... जान दो धूरा समझ के झार दो... तुम्हारई काज है... काहे बिगारतीं हो, देखो तो सब गाँव का आदमी कैसे देखत हैं, उसका कोई मान नहीं तुम्हारा तो है, काहे उसके मुँह लगतीं।*
>
> *री घिटोई का चाहती है री कि तेरी ई छछूंदरी को खोपड़ी पे बिठार लूँ कि पूजा घर में आसन देके आरती उतारूँ और ये कुछ भी बोलती रहे हम सुनते रहें।*

घिटोई बड़ी पुरखिन को पकड़कर बैठक में ले गई और पानी पिलाया और बोली–

> *ऐसे बिघन तुमने नये तो नहीं देखे... चार जने में कैसो हँसी को हँसारो हो है... बे तो माटी मिले इंसान हैं... उनको कछु नई जाने... तुम आकाश के सूरज हो... काहे को खुदई ग्रहण लगातीं हो... शान्त हो जाओ... यहीं परो।*

बड़ी पुरखिन शान्त होकर तखत पर लेट गई थीं, घिटोई मन की गाँठों को खोलते–बाँधते वहाँ से निकल आई लेकिन उसकी आँखों के सामने बार–बार लहरिया आकर खड़ी हो रही थी जो अपनी माँ के लिये अपने भय को क्षणभर में पीछे धकेल सिंहनी सी गरजती बड़ी पुरखिन के सामने आ खड़ी हुई थी।

जीवन प्रतिपल कोई मार्ग गढ़ रहा होता है, उस मार्ग की परिभाषा प्रत्येक के लिये पृथक्–पृथक् होती है लेकिन जब वह समझ आने लगती है तो मानकर चलिये स्वयं इस चराचर जगत् के सृष्टा आपके मार्गदर्शक बनकर उपस्थित हो गये हैं।

# भाग्य का काजल

बड़ी कोठी से राधिका घूँघट ओढ़े तीर सी सरसराती निकल आई थी, छाती में जैसे किसी लोहार की भट्टी धधक रही थी, जिसकी तपन साँसों के साथ बाहर आ रही थी... क्रोध से फड़फड़ाते नथुने, लाल-कोयले जैसे आँखों में धधक रहे थे। बड़ी पुरखिन का एक-एक शब्द मानो देह पर दस-दस दरारें कर गया था... उस पर गड़ी हर आँख जैसे सैकड़ों फोड़े पैदा कर गई थी। बस में होता तो उस एक-एक दरार को झार के फेंक देती, हर फोड़े के घाव को नोंचकर खुद से अलग कर देती पर कुछ भी तो संभव नहीं...

धरती पर पड़ती उसकी अपनी परछाई भी जैसे उसपर लाँछन लगाने पे उतारू थी... जी करता था कि उतार के फेंक दे इस काले-काले साये को... शायद इसी की काली छाया तो नहीं पड़ गई हमारे जीवनों पर, नहीं..नहीं... ये कालापन तो साथी है। जब हँसते हुये आई थी तब भी साथ था और जब रोते चीखते जा रही हूँ तब भी साथ है। नया तो ये अंतस् में धू-धू करके बर उठा दावानल है, मन बस बरबस यही पूछ रहा था कि तुम ही बताओ-

*हमें मान का हक नहीं देते इसका अर्थ ये तो नहीं कि उन्हें अपमान का अधिकार मिल गया है... आकाश पर बैठे लोगों को क्या धरती की मिट्टी को रौंदने का अधिकार मिल जाता है? ऐसी रीत तो नहीं रची विधाता ने, वो तो आकाश में बैठकर भी धरती को मान की धानी चुनरिया से ढाँक देता है।*

मन के इन संवादों के बीच, कांधे से चिपकी लहरिया अम्मा को दोनों हाथों से चपेटे लगातार कुछ बुदाबुदा रही थी लेकिन उसके सिसकते शब्द जैसे हिल्कियों में गलकर बाहर आ रहे थे या फिर राधिका की श्रवणेन्द्रियों पर बड़ी पुरखिन के शब्दों का भार इतना था कि उसके तले दबकर सबकुछ कुचलकर चकनाचूर होता जा रहा हो। रह-रहकर उनकी बातें भीतर बिजली से कड़क उठतीं और आँखें किसी तूफान के उफान में डूबती-उबरती लहरों में उलझकर खुद को सुलझाने की कोशिशों में लगी थी शायद इस तेज कोलाहल में घिरी राधिका हल्की साँसों से भरी लहरिया की ख्वाहिश सुन ही नहीं पा रही थी।

लहरिया ज्यों ही बड़बड़ाती सी प्रतीत होती राधिका उसे दोनों हाथों से कसके पकड़कर, कभी उसके कांधों से सहलाती कभी माथे पर हाथ फेरती, लेकिन ना तो लहरिया की हिल्कियाँ रुक रहीं थीं, ना ही उसके अपने क्रोध और पीड़ा का प्रवाह, मन जैसे दाँत मीसकर कह रहा था-

*धरती फट जाती तो उसमें समा जाती.. पूरे समाज के सामने भी ना ठहरीं बड़ी पुरखिन... कोई कत्ली, खूनी तो नहीं थी जो एक बार भी जे ना सोचा कि चार गाँव के लोग देख रहे हैं... ऐसा कौना सा पाप कर दिया था मौड़ी ने जो ऐसा करेजा चीर के धर दिया... तनक सी मौड़ी को मारते बखत एक क्षण के लिये भी मन ने धिक्कारा नहीं उन्हें,*

*...और तो और महल भर की जनानियों के मुँह से एक शब्द भी ना निकला तो किस मुँह से खुद को औरतें कहती हैं! वाह री औरत की ममता... झूठ बोलते हैं ज्ञानी विद्वान् कि औरत में दया ही दया होती है... अरे! आज तो कसाईयों जैसी किसी छौने को कटते देखती रहीं और किसी के माथे की रेख तक ना डोली।*

*खैर! किसी का क्या दोष हम माटी मिले इंसान... पैदा ही रौंदे जाने के लिये होते हैं... दोष हमारा है... क्यों ना जनम होते*

*ही हमें अपने बच्चों के कानों में सुख की कामनाओं के साथ-साथ ये सत्य भी फूँक देना चाहिये कि झोपड़ियों में आये हो तो अपनी रगों में प्रतिपल झुलसाने वाली अग्नि को स्थान देना भी सीख लो... मान जैसे स्वांग बड़ों के होते हैं, धनियों के होते हैं... हमारे लिये तो अपमान ही सर्वस्व है। वही हमारी थाती भी है और गौरव भी... ये अपने मन से निकलती किलपना किसी से कहने भी जाऊँ तो किसी को क्या फर्क पड़ता है... इस पंक्ति में खड़ी मैं अकेली तो नहीं!*

लहरिया की श्वाँसों की गति कुछ सामान्य हो चली थी लेकिन आँखें मींचे अभी भी दंदक-दंदककर हिल्कियाँ ले रही थी। नाक, लार से तरबतर उसका चेहरा ऐसा कुम्हला गया था जैसे अधखिली कली पर किसी ने बज्र से प्रहार कर दिया हो। राधिका ने लहरिया को छाती से भींच लिया उसकी आँखों में जैसे धरती पर बिखरा वो महावर उतर आया था, रक्त सी खौलती अश्रुधार बह रही थी।

कांधे से चिपकी लहरिया बोली- *अम्मा!.....* राधिका ने रूंधे गले से कहा....*हाँ बेटा!... बो नीला लहँगा पहनना हमें!....* लहरिया ऐसे बोली ज्यों ख्वाहिशों के सितारों से टके शब्दों ने भय का झंगोला पहना हो!

बालपन की तिजोरियों में खुशी और ख्वाहिशें ही रहा करती हैं। पीड़ायें, मान अपमान, अपकार कितने ही द्वार खटखटायें इस तिजोरी के किवाड़े तब तक नहीं खुलते जब तक समझदारी का हथौड़ा नहीं पड़ता, तो क्यों ना ये बालपन ही भला!

राधिका बस एकटक थरथराती आँखों से लहरिया को देख रही थी। इतने स्वांग के बाद लहरिया के मुख से ना कोई बुराई निकली, ना मान अपमान की पीड़ा और ना ही गालों पर उभरे उन उंगलियों के निशानों की जलन। क्या अभिलाषायें इतनी बलवती होती हैं? राधिका ने फिर पूछा- *का कहा बेटा?*

लहरिया कांधे से उठकर अम्मा के चेहरे की ओर देखकर मुस्कुराई,

और बोली– *अम्मा बो रचना जीजी जैसा चमचम नीला लहँगा चइये, हम भी तो दुलैन बनूंगी।*

आवाज में खरखराहट आ गई थी लेकिन दोनों हाथों की मुट्ठी भींचकर अपनी छाती से चिपकाये, आँखे मीचे ऐसी खुश होकर बोल रही थी जैसे वो नीला लहँगा उसके हाथों में अभी आ गया हो– *अम्मा! ऐसा झिलरमिलर होता था, चमचम चमकता था, बोत....बोत...बोत...अच्छा! अम्मा हमें चइये नीला लहँगा!*

*नीला.... लहँगा..!* राधिका ने एक लम्बी साँस भरी और अधरोई सी हँसी हँसकर लहरिया के छिले मुख को चूमते हुए बोली–

हाँ बेटा! नीला लहँगा....पहराऊँगी तुझे, जरूर पहराऊँगी!

राधिका ने तो अपने जीवन में नैराश्य ओढ़ लिया था किन्तु अपनी सन्तान के मुख पर उभरती इच्छाओं की चमचमाहट को फीका होते देखना फिर उन्हें स्वीकार कर लेना सहज तो नहीं था। कल तक जो राधिका पूरे घर को झिड़कती रहती थी कि बेटी की हर ख्वाहिश पर हामी ना भर दिया करो आज उसी राधिका का मन हठी हो चला था, उसने ठान लिया था कि अपनी बेटी की इस ख्वाहिश को नहीं मारेगी, भले ही ये छोटी सी ख्वाहिश उनके लिये कितनी भी बड़ी क्यों ना हो। लहरिया के आँसू उसकी इस जिद को जैसे सींच रहे थे, अब वे उग चली थीं, बेहिसाब, हठी होकर।

लहरिया की एक-एक सिसकन पर राधिका की छाती में जैसे हजार सुइयों से टाँके से लग रहे थे। तन क्रोधाग्नि और विवशता की ज्वाला से तपकर चटक उठा था, घर आ गया।

माधो चाक पर बैठा था। राधिका की गोद से कूदकर लहरिया सीधे बाबू की पीठ से लिपट गई, राधिका कुछ देर देहरी पर ठहरी देखती रही, उसका लाल हुआ चेहरा देख माधो ने धीरे से पूछा– *का हुआ, ऐसी काहे बेसुध सी देहरी पर जम गई है।*

राधिका कुछ कहती उससे पहले लहरिया ने शिकायतों की, ख्वाहिशों की सारी गठरियाँ खोल दीं–

*बाबू! अम्मा ने हमारा हार तोड़ दिया... बड़ी पुख्खिन ने हमें ऐसे... ऐसे... तड़तड़ मारा!*

माधो ने राधिका की तरफ देखा फिर लहरिया का चेहरा ऊपर उठाकर देखा तो गालों पर पड़ीं मोटी–मोटी रेखायें अपनी व्यथा खुद बोल गईं। माधो ने लहरिया को गोद में उठाकर चिपका लिया, हड़बड़ाया सा बोला–

*का कह रही... काहे मारा मौड़ी को... बोलती क्यों नहीं... मारा भी तो ऐसा कि हाथ के हाथ बन आये गालों पे?*

राधिका ने कुछ नहीं कहा, देहरी पर बैठकर बिलखकर रोने लगी, दद्दा भी लठिया टेंकते गिरते–पड़ते उठे और बोले– *का हुआ, का हुआ? ऐसे काहे रोती है बहू?*

राधिका के शब्द छुटककर जैसे उसी कोठी के आँगन में छूट गये थे। वहाँ से बस ये हिल्कियाँ लेकर ही तो लौटी थी। माधो और दद्दा उसके पास बैठे बार–बार उससे पूछते पर राधिका बस रो रही थी, माधो ने लहरिया को गोद से उतारा और राधिका को उठाकर चबूतरे पर बैठाया, पानी पिलाया, दद्दा और माधो उसके उत्तर की प्रतीक्षा लिये उसका चेहरा देख रहे थे। राधिका आँखें मींचे दीवार से बेसुध सी टिकी थी। अम्मा को रोता देखकर लहरिया भी सुबकती हुई उसकी छाती से चिपक गई। लहरिया के गोद में बैठते ही राधिका उसे भींचकर फिर बिलखने लगी।

दद्दा ने कहा– *जिंदगी भर की तकलीफें झेलीं... तब तेरी हिम्मत ना डिगी... आज ऐसी क्यों टूटी जाती है... बस कर बेटा... बस कर!*

राधिका अब रोते हुए बिलख बिलखकर बोली–

*दद्दा! आज तुम्हारी पीड़ा समझ आई है, अपनी सन्तान के घाव की पीड़ा महतारी–बाप के कलेजे में कैसी लगती है!*

माधो धरती में मुँह गड़ाये बैठा ना तो कुछ पूछने की हिम्मत कर पा रहा था और ना ही कोई सहानुभूति प्रकट करने की ताकत जुटा पा रहा था। दद्दा ने हटकारते हुए कहा–

*हट्ट! चुप हो जा... तुझे ऐसे देख तेरी ही बिटिया कैसे सिसरियानी बैठी है... चुप हो जा बिल्कुल!*

राधिका ने आँसूओं में डूबी आँखों को पूरी ताकत लगाकर खोला और छोर मुँह पर फेरते हुए बोली– *ना बेटा! अम्मा बिल्कुल ना रोयेगी, बिल्कुल नई रोयेगी।*

अब बीती को किसी शब्द और वाक्य–विन्यासों की आवश्यकता नहीं थी। दर्द जब सीमायें लाँघकर बाहर आता है तो अपने प्रिय के हृदय में जाकर खुद ही सब कुछ कह देता है, ना उसे शब्दों की पतवार लगती है ना जीभ की नैया। माधो को भी अब कुछ सुनने की जरूरत नहीं थी, वो जान गया था कि उसकी पत्नी और बेटी पर प्रतिदिन उचटने वाले छोटे–छोटे तिलगे आज पूरी अग्नि बनकर बरसे हैं।

राधिका अब शान्त थी... चुप्पी ओढ़े भीतर जाकर चूल्हा जलाने बैठ रही, इस उम्मीद से कि चूल्हे की तेज आग के सामने शायद उसके भीतर की धधकन कुछ फीकी पड़ जाये लेकिन जैसे–जैसे आग बढ़ रही थी वैसे–वैसे राधिका का मन उबल रहा था।

चूल्हा राधिका की आँखों में जल रहा था, बिना शब्दों के संवाद ने राधिका के मन के भीतर सुलगते हर अंगारे की परिभाषा कह दी थी, ना कोई प्रश्न था... ना ही कोई शिकायत, छपरे में थी तो बस सांय.. सांय... करती अग्नि।

माधो लहरिया को लिये भीतर आ गया। सब कुछ जानना चाहता था, ऐसा क्या हुआ जो आज ये चट्टान सी औरत भी रेत सी दरक रही है, ऐसा क्या हुआ जो उसकी फूल सी बेटी के चेहरे पर ऐसे निशान दिये गये हैं जैसे किसी ने फूलों पर रद्दे चलाये हों।

उसने लहरिया को पुचकारा, तो लहरिया कराह उठी, आँसूओं से लटपटी आवाज में बोली- *नईं बाबू! चोत लगी है!*

मन सब समझ रहा था लेकिन भीतर शायद! कोई दूसरा मन भी रहता है जो बार-बार माधो को नोंच रहा था लेकिन राधिका के चेहरे पर क्रोध और पीड़ा की दुशाला ओढ़े बैठा सन्नाटा देख हिम्मत ही ना हुई।

राधिका ने बिना कुछ कहे-सुने थाली परोसकर सरका दी। लहरिया बाबू की गोद में बैठी आटा लिये फिर, अपने लिये हार, कंगन गढ़ने लगी थी। उसके मन में ना क्रोध था, ना डर, ना चिढ़ बस यदि कुछ था तो वो था उसकी ख्वाहिश पूरी होने का दृढ़ विश्वास। राधिका ने उसे यूँ गहने बनाते देखा तो जैसे सबकुछ फिर सामने आकर खड़ा हो गया।

तभी लहरिया बोल पड़ी- *बाबू! नीला लहँगा चइये... देखो अम्मा... हमने तो फिर से हार बना लिया... अच्छा है ना?*

राधिका और माधो के हृदय सूखे थे लेकिन लहरिया मुस्कुरा रही थी बिल्कुल लहरों की तरह, यही बालमन का कोरापन है, उसमें क्रोध, हीनता जैसे भावों का कोई स्थान नहीं होता, प्रेम और विश्वास के थोड़े से सिंचन से ये क्रूर भाव बहकर निकल जाते हैं.. लेकिन बड़ों के लिये ये जीवनभर के घाव की तरह होते हैं, वो भी ऐसे घाव जो समय-समय पर कुरेदे जाते रहते हैं... इनके भरने का समय कभी आता ही नहीं.. शायद कच्ची दीवारों की यही नियति होती होगी कि यहाँ होने वाला घाव भरता नहीं बल्कि सारी दीवारें ढहा देता है।

माधो ने राधिका की ओर देखा तो वो कुछ छुपाने की कोशिश कर रही थी। शायद एकान्त चाहिये था उसे... स्वयं के भीतर बिखर चुकी राधिका को समेटने के लिये... माधो ने लहरिया को गोद में लिया और बाहर आ गया। माधो ने उसके चेहरे पर हाथ फेरा तो जैसे छलछलाता खून उसके कलेजे से बह रहा हो, उसने लहरिया को चिपकाया और पुचकारते हुए कहा-

*क्यों मारा बड़ी पुरखिन ने, तूने कोई उधम किया था?*

लहरिया कुछ सोचते हुए बोली तो सुर जैसे किसी रेगमाल से रगड़ खाकर निकल रहे हों–

सच्ची बाबू! हमने कुछु नई किया... बस नीला लहँगा देख रहे थे... बाबू...बाबू... हमें भी वो चमचम नीला लहँगा चइये!

नीला लहँगा? माधो ने कहा

*हाँ बाबू! रचना जीजी कित्ता अच्छा लहँगा पहने थी, हम भी पहनूँगी, और... और... हार भी... बिन्नी भी!*

ये सब बताते हुये लहरिया के चेहरे पर दमकती ख्वाहिशों की गहराई उसके गालों पर उलछरी उंगलियों से ज्यादा दिखाई पड़ रही थी। माधो के सामने सारी कहानी के चरित्र, घटनायें और किरदार सबकुछ साफ हो गये, उसका मन बेचैन हो उठा, माथे पर पसीने की बूँदें तिर आईं, आज कुछ और ही दिख रहा था, कल तक अम्मा की मार के डर से बड़ा कुछ नहीं होता था लेकिन आज सबकुछ इस एक ख्वाहिश तले खत्म हुआ दिखाई दे रहा था। माधो लहरिया को देखकर बुदबुदाया– *ख्वाहिशें?*

उसने लहरिया की तरफ ऐसे देखा जैसे उसका गुजरा जीवन उसकी सन्तान में आकार लेने जा रहा हो, आत्मा भी जैसे फड़फड़ाकर यहाँ–वहाँ भागने लगी थी, ऐसी ही ख्वाहिशों की लाशें उसे जिंदगी से घसीटकर मौत की ओर ले गई थीं ना! आज फिर ये जीवन उन्हीं हत्याओं की साजिश रच रहा है क्या? प्रश्नों का आवेग उसके अंगों को शिथिल कर रहे थे। वो लहरिया को लिये दद्दा के पैरों के पास जाकर बैठ गया–

*दद्दा! जीवन इच्छाओं की छाया के पीछे भागने का नाम है.. पर इनके टुकड़े कब इंसान को जिंदगी से खींचकर फेंक देते हैं पता ही नहीं चलता... आज ऐसा लगता है... जैसे सबकुछ*

*फिर से दोहराये जाने वाला हो, लगता है फिर वही समय लौट रहा है... दद्दा! मुझे डर लग रहा है बहुत-बहुत डर लग रहा है... मेरी सन्तान भी अभिलाषाओं के भंवर में उलझने लगी है... दद्दा! तुम्हीं लौटा लाये थे मुझे उस बवंडर से, आज इसका हाथ मैं कैसे पकड़ूँ? तुम्हें फिर से दरबान बनके खड़ा होना है... मुझमें इतनी ताकत नहीं कि उसका हाथ कसके पकड़ सकूँ, कहीं मेरी बच्ची किसी ऐसे रास्ते पे ना निकलने लगे जहाँ से लौटना...*

माधो शब्दों को अधूरा छोड़... रो पड़ा... दद्दा ने उस बिलखते माधव को दोनों हाथों से उठाया-

*पागल है क्या? का...का... सोच लिया, बहुत छोटी है लहरिया और ऐसी कौन सी इच्छा है उसकी... उन्होंने लहरिया की बाँह पकड़कर गोद में बैठाया और उसके माथे पर हाथ फेरते हुए बोले- हमाई लहरिया बड़ी सयानी है... है ना बेटा?*

दद्दा ने माधो को तो हिम्मत दिला दी, पर अब उनके हृदय की व्यथा, चिन्ता सबकुछ ओस बनकर टप... टप.. टपकने लगी थी। मनुष्य जब भयातुर होता है तो अपनों का विश्वास सबसे बड़ा साहस बन जाता है ...पर जब वो हिम्मत टूटती दिखाई पड़ती है तो उस डर से आकुल इंसान को अनहोनी की भी सत्य प्रतीती होने लगती है। माधो ने सिर उठाकर देखा तो दद्दा की हथेलियाँ काँप रहीं थीं, जैसे वे कहना चाह रही हों कि वो भी आशंकित हैं!

शाम हो चली थी। मन में विचार अंधेरा कर रहे थे उधर आकाश में भी चन्द्रमा गाढ़ा हो चला था। चौदस की रात है जुंदैया जमकर छिटकी थी लेकिन अंतस् में उपजे अंधेरों के लिये कोई चौदस की रात नहीं होती।

माधो बिना कुछ कहे उठकर कोठरी के पीछे खटिया डालकर पड़ गया। उसका अपना जीवन उसे डरा रहा था... दद्दा के खड़खड़ाते, हिम्मत का स्वांग करते करुणा भरे सुर... उसे काट-काट उठ रहे थे।

राधिका ब्यारी के लिये बुलाती रही लेकिन माधो बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप खाट पर पड़ा आकाश ताकता रहा... जैसे कोई पुराना संवाद खोलकर पढ़ रहा हो... आँखें गीली हो आईं थीं जीवन की किस राह से घसीटकर दद्दा ने उसे नया जीवन दिया था। अपनी सन्तान को नौजवानी में भेंट चढ़ा दिया... फिर मेरी बारी थी लेकिन मुझे तो जैसे यम के द्वार से घसीट लाये... आज क्या फिर वही अंधेरा मुझे फाँकना होगा... जीवन के अल्हड़पन में हुई भूलों का बोझ इतना होगा... ये कभी नहीं सोचा था। ईश्वर इन हाथ-पैरों का मोल होता तो इन्हें बेचकर भी इनके लिये सुख खरीद लाता लेकिन दरिद्रता की माटी भी कौड़ी मोल की नहीं होती।

चन्द्रमा के धवल तेज को छूकर धरती भी जैसे लजाकर चमाचमा रही है शायद झींगरों, छछूंदरों ने उधम मचाने कि लिये संगीत छेड़ रखा है। ये तो धरती और आकाश ही जानें लेकिन हम मानवों के लिये तो ये रात के प्रहरी हैं जो चिल्ला-चिल्लाकर सजग करते हैं कि भई जागते रहो, अपनी सुरक्षा अपने हाथ... आवाजाही बन्द हो गई है, पास के मन्दिर से बुजुर्गों के कीर्तन-भजन की मद्धम सी धुन हवा में घुलकर तैर रही है और प्रकृति के इस विमर्श में माधो के जीवन का पृष्ठ भी उलटकर पढ़ने की कोशिश कर रहा है।

# साँवली रात

खेतों के बीच में महुआ के पेड़ों से घिरी.. लहर माई की मढ़िया है। इन्हीं घने झुरमुटों के बीच एक कुइँया है। कुइँया से सौ कदम उत्तर में घिटोई नाइन रहती है, दो कुठरियों की झोपड़ी है, घिटोई ही लहर माई की सेवा करती है, मढ़िया की साफ-सफाई से लेकर पूजा-अर्चना का जिम्मा उसी का है। कारण, हर नवरात्रि में घिटोई में देवी का प्रवेश होता है... दरबार लगता है।

घिटोई फरियादियों की फरियादें काटा करती है। मन्नतें बाँधा करती है, जादू-टोना, सबकुछ जानती है। ये नवरात्रि के दिन उसके चाँदी-सोने वाले दिन होते हैं। भर-भर के चढ़ावा, रुपया-पैसा, कपड़े-लत्ते, नांज-पानी और फल-फूल मिठाई के क्या कहने, एक नवरात्रि में सालभर की कमाई हो जाती है।

मढ़िया से लगभग आधा किलोमीटर दूर बन्ने नाई रहता है। दो लड़के हैं, पत्नी मर चुकी है, खेतों में चोरी छुपे गाँजा उगाता है। गाँवभर के नशैलचियों का अड्डा है ये खेत, लोग इसे बरमा की बखरी के नाम से जानते हैं... गाँजा, चरस के साथ-साथ जुएँ की फड़ें चौबीसों घंटे चला करती हैं। बरमा... भगवान् ब्रम्हा का अपभ्रंश नाम है, ब्रम्हा की मढ़िया दस फर्लांग पर ही है, इसलिये पुलिस का झंझट भी नहीं होता। बन्ने तुरन्त आस्था पर आक्रमण का झंडा लिये खड़ा हो जाता है और आस्था-भक्ति के नाम पर पूरा गाँव उसके पीछे... तो पुलिस भी सौ कोस दूर रहती है... मरो सालों! हमें क्या?

माधो सोलह–सत्रह बरस का है, यही उम्र सम्हलने से अधिक गिरने की होती है, सतरंगी स्वप्नों का अपना अलग संसार होता है, पर माधो की बालपन से एक–एक टूटती ख्वाहिशें उसके मन को अनुशासन के धागों से मुक्त करती गईं, कभी साईकिल, कभी रेडियो, कभी शहर, कभी नये कपड़े, कभी पैसे... हर बार एक आग्रह मन में जन्म लेता पर उसे दबना होता, किसी मजबूरी के बड़े से पत्थर के तले!

*आठवीं में फेल हो गया है और कहता है शहर के स्कूल में दाखिला करा दो... हम कोई धन्नासेठ तो हैं नहीं... घर की हालत जैसे इससे छिपी हो, उस डेढ़ बीघा खेती से दो वक्त की रोटी मिल रही है बस बेटा कोई सोना नहीं उपजता!* माधो के बाबू दाँत मीसते हुए बोले।

माधो चिल्लाया– *दद्दा! बाबू को समझा लो, मैंने कह दिया... मुझे बस बड़े स्कूल में जाना है, मेरे सब दोस्त चले गये, बस मैं ही गाँव में अकेला पड़ा हूँ!*

*तो क्या अपने को बेचके स्कूल भेजूँ तुझे... और पास हो जाता तो कलेजा काटकर बेच आता और भेजता... पर अब किस उम्मीद को बांधकर भेजूँ, दद्दा! अपने ई नैनसुख को समझा दो कि खेत पे जाये कल से या चाक पे बैठे चुपचाप!* माधो के पिता फिर बोले।

माधो की जिरह कम नहीं हुई, उठाकर गगरियाँ पटकने लगा तो पिता ने जूते उताकर उस पर बरसाने शुरू कर दिये। माँ और दद्दा ने बड़ी मुश्किल से उसे बचाया इस बीच–बचाव में उन लोगों ने भी दो चार चपतें खा लीं, इस पर माधो रोत–रोते चीखा–

> *मारो और मारो, मार डारो! पर अब तो ना खेत पे जाऊँगा, ना जे चाक पे बैठूँगा, कुछ ना करूँगा, जनम से लेके आज तक एक इच्छा पूरी नहीं की... जब भी कुछ माँगा... बस एक ही रोना... पैसा नईंया... अरे तो पैदा काहे किया था मुझे!*

पिता के हाथ से जूता छुटककर गिर गया... माँ और दद्दा भी पीछे हट गये... माधो पाँव पटकता गुस्से से बिलबिलाया बाहर निकल गया। घर

में जैसे किसी ने तेजाब उड़ेल दिया हो... बिना किसी आग के जैसे ये चन्द शब्द सबको झुलसा गये हों, पिता ने माँ को तरेरते हुए कहा-

*देख लो, जे सपूत है... आज अपने बाप के सामने मैंने जो सुना वो भगवान् किसी को ना सुनाये।*

माधो की माँ रोती हुई भीतर चली गईं। दद्दा भी मन्दिर की तरफ निकल गये। आज के इस प्रसंग का दोषी किसे ठहराया जाता, ये कोई नहीं जानता था, घर की स्थिति बस इतनी ही तो थी कि दो वक्त की रोटी चल जाती थी...

पर नये-नये परिन्दे को आकाश का छोर दिखाई देता है, बिना पंखों की शक्ति जाने बस उड़ता है... ऊपर और ऊपर... पर पंखों की सीमायें प्रत्युत्तर कर उसे धरती पर पटक देती हैं। ऐसा ही तो हम इंसानों के साथ होता है पर फर्क इतना है कि मनुष्य के समक्ष द्विमार्गी समाधान होता है एक जो उसे आकाश के छोर को छूने की शक्ति देता है और दूसरा उसे धरती की तलहटी में नीचे... और नीचे गिराता जाता है।

माधो की हर टूटती ख्वाहिश उसे दूसरे मार्ग पर घसीटती ले गई, उसकी दम तोड़ती इच्छाओं ने उसे नशे की तरफ धकेल दिया। हठ, क्रोध, स्वत्व से बढ़कर कोई नहीं रहा था उसके लिये। दादा, पिता और माँ ने कितने प्रयास किये कि लड़का लौट आये पर ये प्रयास जितना उस पर हाथ फेरते वो उतना और गहरे उतर जाता। बन्ने की बातों में आकर दिन-दिनभर वहीं पड़ा रहता। अब प्रेम से लौटाने के मार्ग भी बंद हो गये थे। देर रात नशे में लथपथ जब माधो घर आता तो पिता डंडे मारकर भगा देते। माँ दोनों तरफ से मरी जाती थी, एक तरफ बेटे की पीर, दूसरी तरफ माधो के पिता की चिन्ता! बस फिर क्या था परिणाम जो होना था वही हुआ, चिन्ता ने चिता का रूप लेकर माँ को धुऐं में मिला दिया, घर स्त्रीविहीन हो गया।

अब माधो को अपने पिता से और भी डर ना रहा। दो-दो दिन बन्ने के पास पड़ा रहता, 'बिन घरणी घर श्मशान का डेरा' स्थितियाँ बद से और

बदतर होती गई। गाँव के बड़े बुजुर्गों से सलाह ली गई तो परिणाम यही निकला कि ब्याह की बेड़ियाँ उसे उस गलत रास्ते पर नहीं जाने देंगी। मन के टूटे आग्रह तिरोहित हो जायेंगे शायद जिम्मेदारी का बोझ, यौवन के खिलंदड़पन को शान्त कर देगा। सुझाव पर अमल हुआ माधो का ब्याह कर दिया गया। राधिका पत्नी बनकर आ गई पर जिस राह पर बसेरा हो गया हो वहाँ से किसी का लौटना इतना सहज तो नहीं होता।

इस वैवाहिक हथकड़ी का असर ये हुआ कि अब माधो जो रत्तीभर चिन्ता भी घर-द्वार की करता था उससे भी छुट्टी पा गया जो कुछ थोड़ा बहुत पास पैसा था वो बह गया। बन्ने ने बवाल काटा तो जमीन बेच दी गई। दो कुठरियों का ये घर भी गिरवी रख दिया गया।

बूढ़े होते पिता और दादा सोचते कि कम से कम अब अपनी स्थिति पर चेत जायेगा लेकिन ये विचार भी अर्धरात्रि के स्वप्न सा साबित हुआ। दिन पर दिन चढ़ते कर्जे के बोझ और गरीबी ने पिता को भी उम्र से पहले ही बूढ़ा कर दिया। जब सन्तान नकारा हो तो पिता के कन्धे भी थककर लरजने लगते हैं, माधो के पिता के टूटते काँधों पर ही अब परिवार का जीवन चलाने का सारा बोझ था पर इससे भी बड़ा वजन उनके हृदय पर था।

पिता दिनभर इसी कुढ़न में घुटते रहते कि लड़का तो बर्बाद था ही, एक जीती जागती दूसरे घर की बिटिया की जिंदगी भी उसी की वजह से बर्बाद हो गई। घर में राधिका को काम समेटते देखते तो जैसे स्वयं को अपराधी मानकर सजा देने लगते। घर के भीतर आना भी छोड़ दिया, बाहर देहरी पर खाट डाले बैठे रहते। खेती-पाती सबकुछ बिक गया था, हाथ में बस हुनर और बेटे के अलावा कुछ नहीं था। अपनी हाथों की लकीरों को कुरेदते बस अब दिन-रात रोया करते थे।

*दद्दा! मारपीट की, खाने को ना दिया, घर से बाहर डेरा जमा दिया, स्वयं के मरने की भी धमकी दी लेकिन कुछ काम नहीं आता। का करूँ इस लड़के का, जब-जब बहू को*

*देखता हूँ तो लगता है जीवन त्याग दूँ, उसका जीवन बर्बाद करके ऐसा अपराध किया है कि उसकी सजा तो ईसुर के दरबार में ही सम्भव है... दद्दा! अपना तो सबकुछ लुट गया।*

इतना कहते-कहते माधो के पिता बिलख-बिलख कर रोने लगे। बेटे को रोता देख दद्दा के हाथ थरथरा उठे-

*जे का कहता है रे तू, मरने जायेगा, अरे जाने का बखत मेरा है और तू ऐसी बातें करता है... लरका है सुधर जायेगा... इस उम्मर में अक्सर बच्चे भटक जाते हैं... जतन करें तो सब सुरझ जाएगा।*

*का सुरझ जाएगा दद्दा! थाना तसीली सब तो कर लिया कोई नहीं सुनता, कौन देहरी बची है, किसका दरवाजा खटखटाऊँ? अब तो अपना अपराध उसके अपराध से बड़ा लगने लगा है।*

*बस कर! ऐसी बातें करके मेरी हिम्मत ना टोर बेटा, जिस बाप के आगे उसका बेटा मरता है तो मरघट में उसकी चिता की अग्नि तो दो दिन बाद शान्त हो जाती है लेकिन वो चिता बाप-महतारी के कलेजे में उम्र भर जलती रहती है।*

*वे पल-पल उस चिता में जलते हैं, अबसे ऐसा बिल्कुल ना सोचना, जब हताशा बढ़ जाये तो आकाश को देखना चाहिये ये कितनी तकलीफें नहीं देखता, सूरज का प्रचण्ड ताप, बरखा का वेग, और शीत की गलन, कभी बिजलियाँ इसे घायल करने का प्रयास करती हैं पर ये अपने कर्तव्य से नहीं डिगता... हिम्मत रख बेटा! इतना कहते-कहते दद्दा के कंठ में भी आँसू तिर आये।*

माधो के पिता अब कुछ बोलने की स्थिति में नहीं थे, आँखों मे जैसे रक्त की धारा बह आई हो, अपने को समेकित करते हुए खाट पर आँख मूँदकर लेट गये।

दद्दा उठकर भीतर आये तो राधिका मिट्टी रौंद रही थी। दद्दा कुछ देर उसे देखते रहे, काश मनुष्य के तन की माटी भी ऐसी ही होती कि रौंदने से मुलायम होकर आकार में ढल जाती तो कितना अच्छा होता, आज हमारी इकलौती वंशबेल विषबेल से लिपटकर मर नहीं रही होती। माधो का बाप भी तो सही कहता है इस बेचारी बिटिया को हमने कौन से दोष की सजा दे दी।

राधिका ने धीरे से फुसफुसाते हुए कहा– *दद्दा रोटी परस दूँ?*

दद्दा का मन विचारों के प्रवाह से बाहर आया– *ना बेटा! भूख नहीं, तू अब ये सब छोड़... खा पीकर आराम कर... माधो का तो कोई भरोसा नहीं, उसके पीछे मरने से का फायदा।*

राधिका ने कुछ ना कहा, हाथ पाँव धोकर चुपचाप खटिया बिछाने लगी।

रात बहुत हो गई थी। झींगुरों की आवाज गाँव के सन्नाटे से झगड़ती सी जान पड़ती थी। बन्ने नाई, माधो को कांधे का सहारा दिये घर छोड़ने आया, देहरी पर माधो के पिता ने माधो को सम्हालने के लिये जैसे ही हाथ बढ़ाया तो लथराते माधो ने झटके से हाथ पीछे कर दिया–

> *बाबू! तुम बिल्कुल ना छूना मुझे, तुमने बन्ने की शिकायत लगाई थी थाने में, हजार बार कहा कि उससे दूर रहो लेकिन नई अपने काम से काम नई रखना।*

और दिन होता तो माधो के पिता बाँस उठाकर उसको पीटते तब बात करते लेकिन आज ना तन साथ दे रहा था ना मन... एक बार मनुष्य यम की मार से उबर सकता है लेकिन सन्तान की मार उसे ले ही डूबती है।, उस पर बन्ने ने अभिमान से ऐंठे हुए उन्हें ऐसे तरेरा जैसे उसे चेता रहा हो कि–

> *हूँह! तुम जैसी ततईयाँ हमारा का बिगारेंगी... हमने तुम्हारे अपने घर में ही अपने छिदने तैनात कर रखे हैं।*

बन्ने ने अकड़ते हुए सांकर बजाई तो दद्दा ने दरवाजा खोला– माधो

लगभग अर्धमूर्छा की स्थिति में बन्ने के कांधे पर लटका था, अपने पिता को बड़बड़ा रहा था। बस बाबू शब्द से इतर कुछ पल्ले नहीं पड़ता था, नशा इतना था कि शब्द भी लड़खड़ा रहे थे। बन्ने नाई कुछ अचकचाता सा बेशर्म हँसी चेहरे पर बिखेरता हुआ बोला–

*आज धूनी के संग-संग थोड़ी कच्ची चढ़ा लई,दद्दा! रामधई, मैंने तो कितना रोका लेकिन जवान खून है सुनता कहाँ है किसी की, उस पर कक्का थाने चले गये तो गुस्सा में और चढ़ा गया!*

*दद्दा दाँत मीसते हुये बोले कि हाँ...हाँ...तुझे का फरक पड़ेगा बन्ने, तू तो गाँवभर की पीढ़ी को खाने को बैठा है...*

*का कहते हो दद्दा! मैं कौन किसी को बुलाता हूँ। जो आता है, परसाद माँगता है दे देता हूँ। कौन किसी को देहरी से घसीटता हूँ, तुममें है कुव्वत तो रोक लो आखिर लरका तो तुम्हारा ही है ना!*

*सब जानता हूँ रे तेरी कारस्तानी, तुझे रोकने वाला कोई नहीं। कम से कम ये तो देख लिया कर कि किसके खीसे में कितना है... एक तो थी ही बीघा... डेढ़ बीघा वो भी तू खा गया। हमारा रोम-रोम कर्जे में हैं... अब का मानुष खा के मानेगा का तू... नीच कहीं का! अरे हमारे बच्चे का ना सही अपनी सन्तान का तो सोच अभी कितनी उमर है, बिन महतारी के हैं, तुझे ये सब देखेंगे तो वे बेचारे का सीखेंगे!*

*अब दद्दा! जादा परिवचन ना करो, रोक लो अपने सपूत को ना आया करे हमारी बखरी में, हम कौन उसे पीरे चावल देके बुलाते हैं।*

*दद्दा दहाड़कर हट्ट! हरामी... तेरी ऐसी तैसी करों... अब रोक के ही दिखाऊँगा... तुझे फिर चाहे खुद को गिरवी रखना पड़े।*

बन्ने माधो को लगभग पटकते हुए गालियाँ बकते चला गया। दद्दा और पिता दोनों उसे टाँगकर भीतर ले गये, दद्दा ने एक गगरी पानी उस पर उड़ेला तो माधो कुछ होश में आया फिर माधो के पिता बोले –

*अरे कपूत! कम से कम ई छत की लाज राख ले, हमारी छोड़ कम से कम ये जो औरत गरे बंधी है इसका मुँह देखके ही सुधर जा, तेरे सामने वो नीच आदमी... बाप दादा को चुनौती देता, दर्राता चला जाता है तुझे शर्म नहीं आती! जे औरत दिनभर चार आदमियों और चार औरतों का काम अकेले करती है किसके लिये, इस दिन के लिये ब्याह के लाया था तू!*

माधो ने गगरी उठाकर पटकी और बोला–

*मैंने कहा था मेरे गरे बाँधो इसे, तुम लोगों को आफत परी थी, अब भुगतो, और अगर मेरे ही गरे बँधी है तो अब मैं इसके साथ जो चाहे करूँ, माधो ने दाँत मीसते हुए अपने पिता और दादा दोनों को बाहर कर सांकर चढ़ाई, चूल्हे के पास रखी लकड़ी उठाकर राधिका पर टूट पड़ा, तू ही है सारे फसाद की जड़, आज जिन्दा ना छोड़ूँगा सब टंटा पटा जायेगा।*

राधिका बेहिसाब चीख रही थी– *अरे बाबू बचा लो, दद्दा बचा लो, तुम्हारे पाँव परती हूँ छोड़ दो... छोड़ दो!*

बाहर दद्दा और बाबू दरवाजा पीटते–पीटते बिलख पड़े– *छोड़ दे नीच, कुकर्मी, उस बेचारी ने का बिगारा तेरा, किवारों की फाँसों से उलझकर हथेलियों में खून छलछला आया।*

दरवाजे की सांकर सरक गई मानो उसे भी आज के इस दारुण दृश्य पर दया आ गई हो। राधिका की देह पर जगह–जगह नीले लाल रंग के धब्बे उभर आये थे। आँखें फूल गईं थीं, मुख पीड़ा के सागर में डूबा हाँफ रहा था, कंठ से निकलते शब्द भी टूट रहे थे– *दद्दा...बाबू...!*

माधो के पिता दीवार से टिककर धम्म से बैठ गये। दद्दा ने वही लकड़ी उठाकर माधो को धुना लेकिन इस सजा से राधिका के तन और मन पर लगे घाव पर कोई मरहम तो नहीं लगना था। दद्दा ने रोते हुए राधिका का लथराता हाथ अपने सिर पर रखा और कहा–

*आज से तुझे मेरी, इस बखरी की, इस पूरे कुल की आन है बेटा! जो सिंहनी बनकर ना जी तू, अगर ये तुझ पर एक हाथ उठाये तो काट के फेंक देना इस हाथ को, आँखों से तरेरे तो नोंच लेना इसके गटे, ये तेरे पुरखों की आज्ञा है। जब तक औरत अपने लिये नहीं खड़ी होती तब तक संसार ऐसे ही नोंचता रहता है!*

राधिका बेसुध, बिना घूँघट धरती में दर्द से कराहती अब भी बस यही कह रही थी– *दद्दा... बाबू... बचा लो!*

माधो के पिता मूर्तिवत् दीवार से टिके बैठे थे। दद्दा ने उनके कांधे पर हाथ फेरा तो आँखों से जैसे पीड़ा का ज्वालामुखी फूट पड़ा किसी दुधमुँहे बालक की तरह पिता से लिपटकर रो पड़े फिर राधिका के पैरों में गिरकर चिल्लाते–

*हा बेटा! क्षमा कर दो, मेरा दोष है जो इस राक्षस को तेरे करम में हमने खुरच दिया, मैं कौन मुँह लेकर जिन्दा रहूँ, मेरी भी हत्या कर दे तू, मार डाल आज मैं तेरे अपराध से शायद मुक्त हो जाऊँ, मार डाल बेटा... मुझे मार डाल!*

दद्दा ने उन्हें सम्हालकर खटिया पर लिटाया, राधिका को सहारा देकर बैठाया और स्वयं तमाखू लिये बाहर देहरी की खाट पर पड़े ईश्वर से शिकायतें करते रहे!

रात ईश्वर से पीड़ा का बटवारा करते–करते कब आँख लगी दद्दा को पता ही नहीं चला। आज सूर्य भगवान् अपने पूरे वेग पर थे उठकर भीतर गये तो राधिका पानी भरने के लिये बर्तन खाली कर रही थी, तन

सूजा हुआ था, आँखों पे वेदना का ऐसा काला रंग छाया था जो सहज कोई देख ले तो भय से भाग खड़ा हो, उसने दद्दा को देखा तो घूँघट खींच लिया।

दद्दा बोले– *भाड़ में जाने दे सबकुछ ना कर तू शरीर सूज के पक गया है फिर भी क्यों मरी जा रही है, किसके लिये हम लोगों के लिये, हमसे का सहारा है तुझे बेटा!*

राधिका ने हाँफते हुए कहा– *दद्दा! करम को कोई नहीं काट सकता, इसमें किसका दोष, कौन जानता था कि वो ऐसा करेंगे, जानते तो ऐसा होने देते का तुम और बाबू!*

दद्दा की आँखें भर आईं, अंगौछे से आँसू पोछते हुये पूछा– *माधो का बाप उठा कि नहीं, कल से बड़ा विचलित था, जाने कैसी बातें करता था।*

राधिका ने अचरज से कहा– *दद्दा! मैं तो कबकी उठी हूँ, पर वो तो थे ही नहीं खटिया पे, मुझे लगा मढ़िया तक गये होंगे।*

दद्दा के हाथ–पाँव पलभर के लिये थरथरा गये। पसीना छोड़ दिया, बिना कुछ कहे सीधा बाहर चले गये, इस खोर से उस खोर भटकते–भटकते सुबह से रात हो गई लेकिन माधो के पिता का कुछ पता ना चला फिर निढाल पीपल के चबूतरे पर बैठ गये, ढीले कंधे, लथराया सुर कल तक सारे घर की नींव बने खड़े दद्दा अचानक से दरककर बहने लगे–

> *कितना समझाया था तुझे ऐसे विचार मन पर हावी ना होने दे, अब ये कौन सा बोझ मेरी छाती पर धर गया तू। जीवनभर के लिये मेरी छाती में चिता बारकर छोड़ गया।*

आस–पास के लोग इकट्ठा हो गये थे, दस गाँवों तक उन्हें ढूँढा गया लेकिन कहीं कुछ पता ना चला... आज वही माधो स्वयं से आँखें मिलाने से कतरा रहा था... कभी हाथों को नाखूनों से नोचता, कभी बालों को, दीवार पर माथे को मारता चीख रहा था। राधिका उठकर उसे सहेजना चाहती थी लेकिन उसकी देह पर पड़े निशानों की पीड़ा उसको पीछे

धकेल देती। दद्दा भी अपनी शिथिल हुई देह को उठाकर उसके पास तक ले जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे... उन्होंने देहरी पर बैठे-बैठे ही उससे कहा-

*नशे ने कितनी बखरियों को बंजर किया, आज मेरी जड़ों का एक हिस्सा भी सूख गया..और क्या देखना चाहता है बेटा!*

माधो कुछ ना कह सका... हाथ पाँव थरथरा रहे थे... कंठ से शब्द हाँफते से निकल रहे थे-

*मारो दद्दा! मार डारो, कछु होश नहीं रहा कि का कर गया, जे कलेजा डूबने लगता है, का करूँ मैं, बचा लो मुझे... बचा लो... दद्दा, अब और नहीं करूँगा कभी नहीं करूँगा।*

राधिका अबकि काँखती हुई उठी और माधो के कांधे पर हाथ रखते हुए करुण स्वर में बोली-

*दद्दा! एक बेल तो अलोप हो गई, इनको सूखने से हमें ही बचाना है, नशा इंसान को इंसान कहाँ रहने देता है, वो दैत्य नहीं होता तो अदैत्य भी नहीं रह जाता।*

जीवन बड़ा सख्त होता है कितनी भी पीड़ायें इस पर बरसें लेकिन इसे जो चलना ही होता है, पिता को गये माहभर से ज्यादा बीत गया था, माधो दद्दा के सामने पड़ने से कतराता था। राधिका भी उससे कुछ अधिक बात ना करती, बेटे के जाने की पीड़ा ने जैसे दद्दा की तो कमर ही तोड़ दी थी... महीने भर से आँखें जैसे सूखी ही नहीं थीं... लाल डोरे इतने मोटे हो चले थे कि प्रकाश धुंधलाने लगा था... माधो के नशे में कुछ कमी आई थी... अब ना ही बवाल करता... ना किसी से झगड़ता। चाक पर भी बैठने लगा था... मिट्टी भी लाता... लेकिन उसका शरीर अब भी उसे विवश कर देता था... गाहे बगाहे सबकी आँखें बचाकर दम लगा ही लेता था।

दद्दा माधो को देखकर दिन-रात कुढ़ते उस राह को खोजते रहते जो इस

मुसीबत का हल निकले, क्या करूँ थाने जाऊँ पर थाने जाके बुराई मोल लेना है, लरका की जिंदगी कहीं और मुसीबत में ना डाल दूँ।

पिछली बार उसका बाप गया तो था का हुआ... बन्ने ने पूरे गाँव के सामने इज्जत उतारी और थानेदार ने कछु काम भी ना किया था... लेकिन ना जाऊँ तो का करूँ, कोई पहलवान तो हूँ नहीं जो सब झेल जाऊँगा, बहू पे ना मुसीबत आ जाये... का करूँ कोठी पे जाऊँ... लेकिन वहाँ तो कौनऊ है ही नहीं... होते तो इतनी हिम्मत ना बढ़ती ई नासगये की, थाने जाना ही ठीक होगा ऐसे हाथ पे हाथ धरे सब कुछ मिटरते तो नहीं देख सकता, जो होगा फिर देखूँगा।

अपने अन्तर्मन से लम्बे विमर्श के बाद दद्दा ने थाने जाने का निर्णय कर ही लिया, सबेरा होने से पहले मुँह अंधेरे में ही झोला टांगे, लाठी टेंकते सीधे थाने पहुँच गये।

सामने थानेदार साहब मेज पर पाँव पसारे, सींक से दाँत खोदते हुए अधजागे बैठे थे, मोटा पेट, मोटे लट्ठ सी भुजायें, हाथी की सूंड सी जांघे, लगता था जैसे हाथी को खाकी वर्दी पहना के बैठा दिया हो।

दद्दा ने डरते-डरते कहा- *साब! बड़ी मुसीबत में हैं हम, हमारी थोड़ी मदद कर दो!*

थानेदार नें पहले तो उन्हें ऊपर से नीचे तक देखा, सिर पर एक माटी रंगी तौलिया का साफा था, तन पर मटमैला कुरता जिस पर कई जगह थिगरे लगे हुए थे, घुटनों तक धोती, गठिया की वजह से पाँव टेढ़े हो गये थे, आँखों पर पीलापन, दाँत तम्बाकू से रंगकर कत्थई हो गये थे, हाथों की खाल जैसे रेगमाल से रगड़ दी गई हो, पाँवों में बिवाइयाँ नहीं दरारें थीं, दरारों से झाँकता खून ऐसा लगता था जैसे बाहर आने के लिये आतुर है पर किसी से दुबककर बैठा है।

थानेदार गुर्राते हुए बोला- *तुम लोग साले हमेशा मुसीबत में ही रहते हो, ना कभी खुद चैन से बैठो ना हमें बैठने दो, सबेरा हुआ नहीं की दौंदरा देने चले आये।*

*का करें साब हम तो किस्मत ही मुसीबत की कलम से लिखा के ल्याये हैं, हम किसको दोष देने जायें, किनकी देहरी खौंदे, जहाँ तनक भी उम्मीद दिखती है बस उसी तरफ कढ़ुर जाते हैं।*

*हाँ...हाँ...अब जादा दुखिया ना बन, बको का हुआ है?*

*साब का बतायें, हमारे गाँव के लड़के बच्चों पे जैसे सराप लग गया है... ऊ कमबखत बन्ने नाई का।*

*अब बन्ने नाई ने का कर दिया, बेचारा रणुआ आदमी, दो-दो लड़के कलेजे को बंधे... इकतारा लिये बैठा रहता है खेत पे, उससे का मुसीबत हो गई?*

*साब! वो ही बेचारा, उसी खेत में लुका छुपाकर गाँजे की खेती करता है, गगरा के गगरा कच्ची सराब बनाउत है। गाँवभर को लड़का बरबाद हो रहो है। आप नये आये हो पुराने थानेदार साहब खूब अच्छे से जानते थे, कितनी शिकायतें भईं लेकिन उनने एक पे भी कार्रवाई ना करी।*

थानेदार झटके से उठा और तमाखू रगड़ने लगा-

*अच्छा! इतना चढ़ता आदमी है बन्ने, जब आता है तो बनता तो ऐसे है जैसे कि पानी की धार हो, और क्यों रे तुम लोगों ने भी उसके बिजत्तर रूप ना बताये हमें, साले तुम सब भी धूनी रमा लेते हो का मुफत में?*

*साब! कितनी शिकायतें करी गईं लेकिन एक की सुनवाई ना हुई, ऐसा तो है नहीं कि आपको भनक भी ना हो, अब पूरा गाँव ही साफ हो जायेगा जब आप लोगन के कलेजे जुड़ायेंगे?*

*का कहना चाहते हो भनक भी ना हो, काहे वो हमारा कोई दामाद लगता है जो छुट्टा कर रखा है, क्यों रे तुम्हीं लोग तो बताते थे कि जे सब रपट गलत लिखाई गई हैं।*

सिपाही तुनकते हुये बोला–

*अरे साब! जे लोग भी कम छत्तीसा नईयाँ जब–जब दबिश दी तो जेई लोग आगे अड़के खड़े हो गये कि मन्दिर में पुलिस ना घुसने देंगे तो अब भुगतें, हम औरों पे नर्राने से कुछ नहीं होगा अपना बिगार खुद करते हैं जे सब।*

*सही कही साब जे सब ओई के खोह के आदमी करते हैं, गाँव का एक आदमी नहीं आता सामने, जितनों को पिबा–पिबा के तैयार करता है बोई उपद्रव करते हैं, गाँव का आदमी तो बवाल नहीं चाहता सो कभी आगे नहीं आता, जो एकादा आया उसकी देहरी पे गारीं दे–दे के जीना हराम कर देता है बन्ने... बाल–बच्चा हार खेत जाते हैं तो अलग परेसान करता है तो ऐसे में कौन दुसमनी मोल ले लेकिन मैं अबकि कसम लेके आया हूँ सरकार, जो कार्रवाई ना हुई तो बड़े आफिस के सामने मूड़ पटक–पटक के जान दे दूँगा।*

थानेदार कुर्सी पर सीधा बैठते हुए बोला–

*अरे बस करो दादा! इतना करने की जरूरत ना पड़ेगी, आजकल वैसई शासन की तरफ से नशा की खेती पे बड़ी सख्ती है... बस तुम्हारा गाँव आड़े ना आये... फिर ऐसे लट्ठ बजेंगे कि उसकी सात पुश्तें भूल जायेंगी.. नशा का होता है।*

दद्दा दृढ़ होकर बोले–

*साब! ई बार बातें ना रह जायें बस, मैं अपनो लड़का तो खो चुको, अब बची जीन–जोरिया को जीवन तुमाये हाथ है, गरीब पे रहम करो!*

*हूँ...ठीक है...ठीक है... दादा! तुम बेफिक्र होके जाओ, रपट लिख लेता हूँ।*

दद्दा चलने को हुए लेकिन फिर ठहरकर कुछ अचकचाते हुए बोले– *हो*

*सके तो साब हमारा नाम ना आये।*

थानेदार हँसा और बोला– *तुम तो अभी से डरा गये, शिकायतकर्ता का नाम तो लिखना होगा ना?*

> *साब! हम छोटे आदमी गाँव में दुसमनी मोल लेके नहीं रह सकत, कौनऊ और रास्ता नईंयां? अपनी जान की चिन्ता तनक भी नहीं... अपने बाल-बच्चन की फिकिर है बस येई लाने कहत हों!*
>
> *हाँ... चलो... ठीक है, नहीं आयेगा, अब जाओ, और गाँव में किसी को कानों कान खबर ना हो कि पुलिस में शिकायत भई है, ठीक है?*

उन दिनों गाँजे की धरपकड़ जोरों पर थी, सरकारी फरमान बड़े सख्त थे, सीधे कलेक्टर को खबर जाती थी। बरमा की बखरी पे उसी रोज दबिश पड़ गई, हजारों लाखों का गाँजा पकड़ा गया लेकिन बन्ने अपने लड़कों को लेकर फरार हो गया। थानेदार ने गाँव में डुग्गी पिटवाई कि अब जो भी इस कारोबार में लिप्त पाया गया उस पर कोई रियायत नहीं की जायेगी।

दद्दा ने थानेदार से कहा– *साब! यही पहले कर लेते तो आज मोरी बखरी सूनी ना होती!*

> *थानेदार ने दद्दा के कांधे पर हाथ रखते हुए कहा– दादा! हम भी इंसान हैं मरने से हमें भी डर लगता है... दिनरात मौत के साये में रहते हैं... पर फिर भी काम तो करते ही हैं... नहीं तो जे दुनिया इतनी खराब है कि साँस भी ना लेने दे इंसान को... दादा! हमारी बखरियों की हरियाली भी हमें प्यारी है, ...बस इसे भय कहो, मोह कहो या फिर जीवन, इसी के इशारे पर दौड़ते हैं, हम लोग भी बड़ी-बड़ी कसमें खाकर आते हैं लेकिन जब ये विषैली जड़ें जकड़ती हैं तो पता*

*चलती है इंसानों की असलियत, इनके भीतर से निकलने वाली लपटें सब लील लेती हैं।*

बरमा की बखरी सीज होने से गाँवभर में हिम्मत बँध गई थी। बन्ने का ठौर-ठिकाना भी छिन रहा, अब बिलबिलाये साँप सा अपने बिल से निकलकर सीधे माधो के घर जाना चाहता था लेकिन उसके साथियों ने रोक दिया-

*अरे ठहर जा! ऐसे बिलबिलाने से कुछ ना होगा, पहले मामला शान्त हो जाने दे... फिर जिसे जो देखना है देख लेना... और जरूरी थोड़ी है कि शिकायत डुकरा ने करी हो... ढंग से चल तो सकता नहीं थाने का जायेगा... और माधो तो पूरा तेरी जांघ तरे दबा है, फिलहाल शान्त रहकर सोच कि अब आगे का करना है।*

तभी बन्ने फड़फड़ाता हुआ बोला-

*किया कराया तो उसी डुकरा का है... वो थानेदार जैसे उसको दिलासा दे रहा था उससे सब समझ आ गया... अब मारूँगा नहीं ऐसा दंश दूँगा कि ये बन्ने... ना उगलते बनेगा... ना निगलते। अभी मामला ठंडा होने तक हमें फरार रहना चाहिये... बस गिन ले दिन माधो... दिन-दिन ऐसी बेइज्जती करूँगा कि पुरखे याद आयेंगे।*

बन्ने दो महीने तक अलोप रहा, पुलिस ने भी अब दबिश देना छोड़ दिया था। मामला ठंडे बस्ते में चला गया। गाँजे की इस धरपकड़ ने कई बखरियों को उनकी नई बौरें लौटा दीं, पर बन्ने का लौटना तो अभी बाकी था।

# छल के बाज़ार

दो–ढाई महीने बाद बन्ने गाँव लौट आया, उसका व्यापार ठप्प हो चुका था। यहाँ से वहाँ छटपटाता, बस किसी ऐसे मार्ग की जुगत में लगा था जो उसको उसका खोया वैभव लौटा दे, उसके इस अभियान में वे सब उसके लिये सहायक थे जिनको उसने नशे की लत में डुबो दिया था।

एक रोज माधो के साथ लहर माई की मढ़िया के कुएँ पर ताश खेल रहा था। घिटोई, मन्दिर की सेवा टहल कर रही थी कि माधो ने कहा– *ऐसा काहे नईं करता तू इस घिटोई से ब्याह कर ले, वैसे भी खूब पइसा है इसके पास।*

बन्ने का दिमाग कौंध गया– *अहा! वाह रे माधो का बात सुझाई है, बड़ा दिमाग है रे तुझमें, पहले काहे ना बक्कुरा, अब तो महामाई की बखरी में ही महादेव का परसाद फलेगा।*

अब तो बन्ने सुबह–शाम मधुमक्खी सा मन्दिर में ही भिनभिनाता रहता, घिटोई को मनाने की जुगत करता, उसके काम में हाथ बँटाता, मइया के आँगन को बुहार देता, कुएँ से पानी निकालने में घिटोई की मदद कर देता, धीरे–धीरे घिटोई का झुकाव उसकी तरफ बढ़ गया। दोनों ने ब्याह करने का निश्चय कर लिया, गाँव के बड़े–बूढ़ों ने घिटोई को समझाया कि बन्ने अच्छा इंसान नहीं है, नशैलची अलग है, किसी दिन जेल में पड़ा मिलेगा, जो जेल से बचा तो कहीं किसी बिराने में मुँह बाये मरा मिलेगा, क्यों अपना जीवन संकट में डालती है, तुझ पर तो स्वयं महामाई की किरपा है फिर काहे का कष्ट!

लेकिन जब समय विपरीत आता है तो उससे पहले मन की गति बदल जाया करती है, वह उसी दिशा में बहने लगता है, बस इसी समय का संयम मनुष्य का जीवन बनाता बिगाड़ता है।

घिटोई ने तुनककर कहा–

> *जब था बिगरैल.. तब था.. अब तो एक बुरा काम नहीं करता, दिन–रात महामाई की सेवा में लगा रहता है... और फिर जब मुझ पर महामाई का आसीरबाद है तो कौन क्या बिगारेगा मेरा। औरत जात हूँ... आदमी की छाया बिना कब तक रहूँगी और गाँवभर को मेरी फिकिर की जरूरत नहीं... अपनी जान खुद पालती हूँ... किसी के चूल्हे झकने तो नहीं आती।*

गाँव के लोगों ने भी ऐंठते हुए कहा– *हूँह...बड़ी तुर्रम खां बनी फिरती है.. जब छछूंदरी आकाश तरें आऊत.. तब पता चलत कि कहाँ आ गये!*

आखिरकार घिटोई ने सबकी बात अनसुनी करके बन्ने से ब्याह कर लिया... अब उसकी दो मड़इयों में से एक में उसकी सौत के दोनों बेटों ने डेरा जमा लिया, दूसरी में घिटोई और बन्ने।

बन्ने के दोनों हाथ घी में सिर कढ़ाई में पड़ चुका था। दिनभर चिलम फूँकता, ताड़ी में डूबा रहता, बाकी नशे के धंधे का जिम्मा लड़कों को थमा दिया। घिटोई को ऐसे रखता कि उसके पेट का पानी भी ना डुले, वो भी अपने सुख में आँखें मूँदे डोलती रहती। सालभर बाद ही बेटा भी हो गया। जिस प्रकार राजमद होता है वैसा ही सुख का नशा भी मनुष्य के मस्तिष्क पर चढ़कर गरजता है। घिटोई भी इसी मद में डूबी अपने संसार का सुख भोग रही थी और हो भी क्यों ना सबकुछ तो मिल गया था परिवार, पति, सन्तान, तो अभिमान क्यों ना करे! अपने बेटे को छाती से चिपकाये... सारे गाँव में ऐसे ऐंठी घूमती... जैसे संसार के सातों सुखों को चिपकाये हो।

इधर माधो के ब्याह को भी दो साल से ज्यादा होने को थे लेकिन राधिका को अब तक उम्मीद भी ना बँधी थी।

*क्यों री राधिका, कब हरीरा करेगी माधो का बगैचा, कि यूं ही पतझड़ पसरा रहेगा बिचारे डुकरा की बखरी में। हरदेई मसखरी करती हुई बोली*

राधिका उत्तर में एक उलझन और झिझक भरी हँसी ही दे सकी और अधिक कुछ कहने को था ही क्या... रोज का वही प्रश्न और वही जवाब... अब इन सबसे उकताने लगी थी लेकिन भागकर आखिर जाये भी तो कहाँ!

हरदेई बाल्टी रखकर उसके बगल में बैठकर बोली– *अच्छा सुन एक बड़ी काम की बात बताती हूँ। गाँव बाहर एक ओझा आया है। सुनते हैं... ऐसी जंतरी-मंतरी फेरत है कि सालों के बिगरे काम बन जायें... सुन तू वहाँ काहे नईं जाती!*

राधिका ठौर ठिकाना पूछने को ही थी कि घिटोई अपने बेटे छज्जन को लिये आ गई। कुएँ के पाट पर बैठते हुए बोली– *घर को जोगी जोगिया आन गाँव को सिद्ध! अपनी महामाई के दरीखाने तो झकने ना जायेगी, और दुनिया भरे का ठौर पूँछती है। देखती नहीं साल भीतर मेरी कूँख कैसी लहलहाती है।*

राधिका उठी और फिर अपनी बाल्टी खींचने लगी। घिटोई राधिका की ये बेरूखी देख तुनककर बोली– *अरे बहनी! आदमी जब चौबीस घंटा धुत्त परो रहे तो लरका बच्चा नईं ककरा पथरा ही होत! इतना कहकर ठठाकर हँसी और अपने बेटे छज्जन को लिये आगे निकल गई।*

राधिका को घिटोई के शब्द ऐसे लगे थे जैसे किसी ने नंगे बदन काँटों वाला चाबुक चलाया हो, उसकी आँखों से जैसे खून छलछला आया।, बाल्टी कुएँ में ऐसे जोर से पटकी जैसे सारा क्रोध इसी में भरकर कुएँ में उड़ेलना चाहती हो।

हरदेई ने धीरे से उसके कांधे को सहलाकर बैठाया और कहा–

*ये तो छछूंदरी है... ये जब बोला करे ना... तो कान में ककरा*

*अड़ा लिया कर, गाँवभर में यही करती फिरती है। ऐसा लगता है जैसे इसी ने अनोखा पूत जाया है, सोने की ईंटें हगता है।*

राधिका कुएँ के पाट पर हुई दरारों को नोचते हुए बोली–

*जिज्जी! जब अपने दाम खोटे तो परखइये का दोष, जब कमी अपनी है... तो सुनने तो है ही... का करूँ... का ना करूँ... कुछ समझ नईं आता... कैसे रस्ता पे लाऊँ... सास हमारी सोच-सोच में मर गई... ससुर घर-दोर छोड़ बिला गये... ना जानें दुनिया में हैं कि नईं... दद्दा हैं लेकिन सन्तान के संताप ने ऐसी कमर तोड़ी है कि खटिया में लग गये।*

*मूड़ तक कर्जा में गड़े अब बताओ किसे दोष दूँ, एक ही सुख की कामना करती थी कि बखरी हरी हो जायेगी तो शायद भाग बदल जाएँ सो वो भी बिधाता को मंजूर नहीं।*

हरदेई कुछ सोचते हुए बोली– *हूँ...अब करम लिखा कौन टारे राधिका, पर एक बात तो सही कह गई नासमिटी... तू महामाई के दरीखाने में फरियाद डालने काहे नईं जाती... देख तो मुझे कैसी फली है।*

राधिका ने अनमने मन से कहा– *का करूँ हजार बार कहा इनसे... लेकिन एक नहीं सुनते... ना तो नशा छूटता है... ना वो बन्ने!*

हरदेई ने मुँह बनाया और बोली– *अरे महानीच है वो बन्ने... बिल्कुल साढ़े साती सा है... जिसपे लग जाये तो सब नाश करके छोड़े।*

राधिका ने कहा– *जब गाँजे की बेचैनी होती है तो कुछ नईं दिखता उनें, फिर तो अगर कोई कह दे कि कुआँ में कूद जा मिल जायेगा, तो सही में कूद जायें।*

*बात तो ठीक कहती है राधिका, नसा वालों का येई हाल होता है पर देख तो औरत के पीछे तो बंस सरीखे नाश हो गये, तू ई नशा की आदत से नईं लड़ पा रही, मोरे आदमी की देख*

*लो छुड़ा ली मैंने, अब हिम्मत नहीं उसकी जो बन्ने के पास झक भी जाए!*

*पर कैसे, ऐसा का जादू मंतर फेरा तुमने? मुझे तो कुछ ना सूझता... मुझे भी बताओ रामधई नथुनन आ गई हूँ... किसी किसी दिन लगता है कुआँ बहर कर जाऊँ!*

*हट्ट! ऐसा ना कह... मरें से उपाय होत होते तो आधी दुनिया मर गई होती... तू पहले उसको पढ़ अच्छे से कि किस बात पे वो डोलता है... का कमजोरी है उसकी और तनक तिरिया चरितर दिखा दिया कर... बस देखना फिर कैसे सुधरता है।*

राधिका ने हामी भरी- *देखती हूँ जे करके भी शायद सुधर जायें, अब जाऊँ... दद्दा अकेले परे हैं कुठरिया में!*

राधिका और हरदेई दोनों अपने-अपने घरों की तरफ निकल गईं।

माधो बखरी में खाट पर पड़ा ऊँघ रहा था। राधिका ने गगरियाँ रखीं तो चौंककर जागा। बड़ी देर लगी पानी भरने में तुझे, कबसे प्यासा पड़ा हूँ। राधिका ने कुछ ना कहा, बस अपनी भाव भंगिमाओं से क्रोध प्रकट करती हुई कामों में जुट गई, माधो कुछ कहता तो आँखे निकालकर पलभर उसे घूरती और फिर काम में लग जाती।

*आखिर बात का है, ऐसे क्यों बिदक रही है?*

*राधिका अब भी कुछ नहीं बोली।*

*....अरे, कुछ पूछ रहा हूँ सुनाई देता है कि नहीं?*

*....का सुनूँ, तुम्हें जब कुछ दिखाई-सुनाई नहीं देता तो मैंने भी सोच लिया है कि मैं भी क्यों जान दूँ अपनी... जो चलता है चलने दो... जितना होगा करूँगी, नहीं होगा तो ना करूँगी!*

*....ओहो! समझ ही नहीं आता... अच्छी खासी गई थी और लौटी तो ऐसे तेवर दिखा रही है जैसे पानी नहीं आगी भरने गई थी।*

*....का तेवर दिखाती हूँ, तुमने तो कुछ भी ना देखने सुनने की कसम खा रखी है... अब गली चलती लुगाईयाँ ताने कसती हैं... छाती छलनी हो जाती है मेरी...*

*पर मरती रहूँ चुपचाप लेकिन तुमसे कुछ ना कहूँ क्योंकि तुम्हें तो कुछ समझना नहीं... हूँह... समझोगे का... जिसे अपने बाप की पीर ना हुई उसे मेरी का होगी।*

*पीर कितनी कैसी होती वो तो जिस तन को हो वोई जाने.. मैं रो बिलख के फड़फड़ाया नहीं तो सबको लगता है निर्मोही हूँ... अब कलेजा चीर दिखा सकता तो दिखा देता...*

*मन तो पहले ही अपराध के बोझ तले दबा है... उस पर ऐसे व्यंग्यबाण कस रही है।*

*हाँ...बड़ी पीर है इन्हें बूढ़े डुकरा को कभी हाथ धरके पूछते हो कि दद्दा कैसे हो... अरे तुम्हारी पीर तो उस रोज ही दिख गई थी जब तुमने जानवरों से भी बत्तर कुचरा था मुझे!*

*लो फिर खुल गया इसका पुरान... प्राण देकर गलतियाँ सुधर सकतीं तो कबका सुधार लेता। जिम्मेदारी समझता हूँ इसलिये जिन्दा हूँ नहीं तो...*

इतना कहकर माधो जाने को हुआ तो राधिका ने जोर से मटकी पटक दी और बोली-

*बड़े जिम्मेदार हो गये हो... मन में अपराध को ज्ञान उदय हो आओ है तो फिर जे कदम काहे उसी बन्ने की बखरी की तरफ मुड़ते हैं...*

*जाओ... जाओ.. डले रहो उसी बन्ने की ओली में... एक दिन वो ही तुम्हारा नसा उतारेगा।*

*माधो जाते-जाते रुक गया, अरे वो का मेरा नसा उतारेगा, मैंने उसकी कोई पछीत खोदी है क्या... उल्टा मैंने ही सुझाया था*

*कि घिटोई से ब्याह कर ले... और काहे का कर्जा सबकुछ नगद लेता हूँ उससे।*

*हाँ... हाँ... लेते ही हो, जो था वो बेच खाया, छत भी गिरवी धर दी अब बचा बूढ़ा दद्दा और लुगाई वो भी उसके चरणों में चढ़ा देना... वो तो धन्न कहो मुखिया की कि दद्दा की एक अरज पे पइसा दे देते हैं...*

*पर कोई कब तक दया धरम करेगा... सबके पेट लगे हैं... कोठी है कोई कुबेर तो नहीं जो बेमतलब पइसा बहायेंगे और उनका धन बढ़ता रहेगा। जब तक भूखों ना मरने लगो... तब तक ना मानना तुम... घिसे सें पथरा पे भी घैरा पड़ जात लेकिन ये आदमी ना जाने कौन माटी का बनाया है महामाई ने कि कछु असर ही नहीं होता।*

माधो दाँत मिसमिसाता मारने को आगे आया तो राधिका ने आँखें निकालते हुए चेताया-

*खबरदार! जो आगे बढ़े... उस रोज इसी बखरी की आन धराई थी दद्दा ने... एक बार विचार ना करूँगी कि तुम आदमी हो... अब वो राधिका ना समझ लेना... तुम जैसे पथरा से मूड़ मार-मारके चट्टान हो गई हूँ!*

माधो पाँव पटकते हुए गोली सा सर्राता निकल गया। भीतर खाट पर बीमार पड़े दद्दा की आँखों से तर-तर आँसू बहने लगे, राधिका भीतर गई तो उनको यूं रोता देख घूँघट निकालकर बोली- दद्दा*! तुम काहे रोते हो, महामाई सब ठीक करेंगी।*

*आज तेरा ये रूप देखकर भरोसा हो चला है कि मेरी सूखती बेल हरी हो उठेगी... बस बेटा ऐसई हिम्मती बनी रहना... अब तो महामाई से बस इतनी अरज है कि इस देहरी से जीन-जोरिया देख के जाऊँ लेकिन लगता है ना देख पाऊँगा कैसा दुरभागी हूँ!*

राधिका ने दद्दा को उठाकर पानी पिलाया और अपने शब्दों को शक्ति देती हुई बोली– *यहीं तुम रहोगे... यहीं मैं भी और ये बगैचा भी हरा होगा... महामाई सब ठीक करेंगी और उन्हें भी अब लौटना ही पड़ेगा।*

इधर गुस्से से बिलबिलाया माधो सीधे मढ़िया के कुएँ पर पहुँचा, बन्ने और चार–पाँच लोग जुए का फड़ जमाए बैठे थे। दूसरे कोने पर गाँजे का धुआँ पसरा था।

माधो कुएँ पर बन्ने के पास बैठा और उसने चिलम उठाई तो बन्ने के बड़े लड़के ने कांधे पर हाथ रखकर कहा– *चाचा पहले पइसा!*

*अरे! भागा जाता हूँ क्या, कभी पइसे रहे हैं, जो ना दूँगा!*

*ना चाचा! दो दिन से एक पइसा ना दिया पहले चुकता करो।*

माधो झटके से उठा और लड़के की कॉलर पकड़कर बोला– *ज्यादा ना उचक तेरा बाप भी मुझसे पइसे की नहीं कहता, तू कल का लौंडा आँखें तरेरता है।*

बन्ने ताश फेंककर उठा और बीच–बचाव करते हुए उसने माधो को एक जोर का धक्का दिया और बोला– *ए माधो! खबरदार जो मेरे लड़के पे हाथ उठाया। गण्ड के धर दूँगा... जानता नहीं तू मुझे अभी... अच्छे अच्छों को पसार दिया है मैंने!*

*बाह! बन्ने दाऊ... खूब रंग बदले हो... जब तक पैसे बहाता रहा तब तक तो भइया–भइया कहते जबान ना थकती थी और आज तू जे भी भूल गया कि जिस मढ़िया पे राज जमाये बैठा है... वो किसकी बदौलत मिली... घिटोई के जिन पैसों पे दलांकता है... उससे ब्याह करने का किसने सुझाया था तुझे ...आज सब भूल गया।*

बन्ने ठहाका मारकर हँसा–

*क्यों रे तूने का दिलाया मुझे, तुझसे तो अपनी बखरी में कुछ नहीं होता मेरी का जुगाड़ का करेगा, ठूंठ पड़ी है ठूंठ!*

माधो के मुख से जैसे आग की लपटें निकलने लगी हों, किसी क्रोधी नाग सा फुफकारता हुआ बन्ने के ऊपर लपका और चिल्लाया–

*हरामी जो बोल गया... सो बोल गया... अब एक शब्द बोला तो कतल कर दूँगा तेरा।*

बन्ने ने झटके से उसे पीछे गिराया और फिर हँसकर बोला–

*अरे जितना मुझ पर फड़कता है... उतना अपनी जिंदगी में फड़कता तो किलकारियाँ गूँजती किलकारियाँ... देख मेरे तो साल भीतर छैल छबीला लड़का खेल रहा... तू अब तक सूखा पड़ा है... कहीं इलाज करा ले... पैसा ना हो तो मुझसे ले जा... यहाँ ना दर्रा जादा बस।*

माधो पसीने से तरबतर दाँत किटकिटा के चीखा–

*बन्ने दाऊ! जादा ना बोलो... औरत के पइसा पे गर्राहट चढ़ी है तुमपे... जीभ पे लगाम दो नहीं तो भूल जाऊँगा कि बड़े हो... अभी सब उतार के धर दूँगा।*

*चल हट्ट ठूंठ कहीं का... बड़ा आया उतार के धर देगा, पहले पइसा चुका पइसा... बाद में बड़ी बातें करना और ना चुका पाये तो कह देना अपनी औरत से आ जाया करे यहाँ सेवा करने कर्जे भी चुक जायेंगे और तेरे सिर से ये ठूंठ का धब्बा भी मिटा दूँगा... बन्ने ने आँख दबाते हुए कहा... आस-पास बैठे लोगों ने एक जोरदार ठहाका लगाया...*

माधो ने पास पड़ा डंडा उठाया और बन्ने को मारने दौड़ा–

*हरामी, साले मेरी औरत का नाम ना लेना... आज अभी गतरा-गतरा करके फेंक दूँगा... बन्ने के दोनों मुसटंडे लड़कों ने उसे पकड़ा और जमीन पर पटककर डंडों से जमकर धुना!*

आस-पास बैठे लोगों ने बन्ने से कहा–

*रोक ले लड़कों को... फौजदारी लग गई तो समझ ले तेरा सब मालपानी भी जबत हो जाएगा... और मर-मरू गया तो जिंदगीभर को जेहल अलग... बड़ी मुश्किल से सब बना है, क्षणभर के क्रोध में बना बनाया सब मिटर जायेगा... बस कर जाने दे तूने जो रार की गाँठ बाँध रखी थी वो भी खुल गई। छोड़ने में ही भलाई है... मरा मराया है... अब कुछ ना करेगा।*

बन्ने ने दोनों लड़कों को रोका और कहा- *जाओ इसे उठाकर इसके घर पे फेंक आओ... यहाँ रहा तो आफत हो जायेगी।*

लड़के माधो को लेकर उसके घर पहुँचे तो राधिका बैठी माटी माड़ रही थी। लड़कों के कांधे पर माधो को बेहोशी की हालत में देखा तो जैसे खुले आकाश से अचानक बिजली तड़तड़ाकर गिरी हो, वो चिल्लाकर भागी- *अरे का हुआ इनको?*

लड़कों ने कहा- *चाची! सड़क पे चार-पाँच बाहरियों से उरझ गये थे ...वो तो कहो हम पहुँच गये ...नहीं तो मारके फेंके देते।*

राधिका ने माधो को अपने कांधे पर लिया, खाट पर बैठाकर देखा तो जगह-जगह नील पड़े थे, माथे पर खून छलछला आया था। अर्धबेहोशी में माधो गालियाँ बड़बड़ा रहा था। राधिका ने जल्दी-जल्दी हल्दी चूना चढ़ाया और खटिया के सिरहाने बैठी बिलखने लगी- *सब मेरे कारण हुआ... ना मैं सबेरे लड़ती... ना गुस्सा में जाके बाहर उरझते... आज कहीं कुछ अनर्थ हो जाता तो प्राण दे देती मैं!*

दद्दा ने राधिका के माथे पर हाथ फेरा और बोले- *ना रो बेटा! कई बार महामाई कोई कठिन काम पूरा कराने के लिये... बड़े गहरे घाव दिया करती हैं... धीरज रख तू धीरज रख!*

इतना कहकर दद्दा लाठी टेंकते बाहर की तरफ निकल गये। चेहरे पर बनी खाल की तहें फड़क रहीं थीं। बेजान हुए पैरों में जबरन जान डालकर मढ़िया की तरफ चले जा रहे थे। रक्त को जैसे कोई मथनी

में लपेटकर भांए डाल रहा था। मढ़िया के द्वार से ही खर्राहट भरी आवाज में चिल्लाये–

*बन्ने ओ बन्ने! जे ना समझना कि तेरा स्वांग कुछ समझ ना पाया मैं। मेरे लड़के पर हाथ कैसे धर दिया तूने, गाँवभर में शेर बना घूमता है, जान ले लूँगा तेरी... फिर आज चाहे अपने प्रान क्यों न स्वाहा करना परे।*

घिटोई ने दद्दा को चिल्लाते सुना तो बाहर आकर बोली– *अरे ऐ डुकरा! ऐसे काहे बड़बड़ा रहा है, साठ पार हुआ तो दोहरा सठिया गया है क्या?*

दद्दा *आँखें तरेरीं क्यों तू अपने खसम की करतूतें नहीं जानती क्या? घिटोई करम उतने खराब करो जितने की पीड़ा खुद भोग सको... तू और तेरा खसम तो पूरे गाँव के प्रान लेने पे उतारूँ है, ये भी समझ ले तेरी भी अपनी सन्तान है और दिन तो घूरे के भी फिरते हैं फिर हम तो जीते जागते इंसान हैं।*

घिटोई अबकि कुछ सहमी सी बोली– *मईया के दोरे पर खड़ी हूँ* दद्दा, *तुम्हें उनकी सौगंध कहो तो का हुआ?*

*का हुआ पूछती है, माधो नशा करता बन्ने की काँख तरे पड़ा रहता था तब तक सबुर था कि चलो जीवन चल रहा है... एक ना एक दिन लौट ही आयेगा... पर अब तो उसकी जान लेने पे उतारूँ हो गया है, आज उसे अधमरा करके देहरी पे फेंक गये तेरे सपूत... अबकि छोड़ूँगा ना, सबके खिलाफ रपोट करूँगा। मैं तो बर्बाद हो ही गया, तुमको तो ना छोड़ूँगा।*

*घिटोई दद्दा की बातें सुनकर थरथर काँपते हुये – ना ना दद्दा! तुम्हारे पाँव परती हूँ... ऐसा अनर्थ ना करो... मैं कहाँ जाऊँगी फिर रणापा ओढ़ने की ताकत नहीं मुझमें... जब तक अकेली थी तब तक जिंदगी घसीट लेती थी... पर अब जे सन्तान जी से बँधी है... तुम इसी का मुँह देखके छोड़ दो... महामाई मोरे*

*कानन तारे... आँखन जारे लग जायें... जो अब बन्ने तुम्हारी बखरी की तरफ आँख उठाके भी देखे तो... घिटोई ने अपने छोटे से बेटे को दद्दा के पैरों में रख दिया।*

दद्दा वहीं चबूतरे पर लाठी से सिर टिकाये बैठ रहे। देर तक लम्बी साँसें भरते आकाश को ऐसे ताक रहे थे आसमान में जैसे दो बादलों का संघर्ष हो और बीच में खड़ा सूर्य अपने पक्ष का निर्णय करने में असमर्थ हो।

सबेरे से शाम हो आई थी। अंधेरे को आँखें दिखाते जुगनू बार-बार उनके पास ज्यों उससे हुज्जत लगाते हों। हवा ठंडी हो चली थी, माधो कुनमुनाया तो राधिका दौड़ी आई, उठाकर पानी पिलाया, भीत से टिकाकर बैठाया और उसके मुख पर टकटकी लगाये धरती पर बैठ गई, माधो आँखें चुराता कभी छत को देखता, कभी धरती पर, इस चोरी के सफर में जब-जब निगाहें राधिका से टकरातीं तो जैसे हजारों गुनाहों का गर्भधारण किये हों।

*ऐसे का घूरती है मुझे?*

*कछु बक्कुरोगे अब?*

*का?*

*जे सिंगार कहाँ से करा आये हो?*

*कहूँ नईं?*

*बन्ने दादा के लड़के कांधे पे लास सा धर के लाये थे... कहते थे सड़क पे लड़ आये हो?*

बन्ने के नाम से ही माधो जैसे क्रोध से थरथरा उठा- *नाम ना ले उस हरामी का मेरे सामने... बस नहीं चलता नहीं तो कतल कर दूं उसका!*

*अरे... अरे... अरे... उन्हीं के लड़कों ने बचाया और ऐसी बात करते हो, तुम्हारा तो दिमाग ही समझ नहीं आता मुझे!* कहते हुए राधिका उठकर बाहर चली आई, माधो छत को ताकता जैसे कुछ तलाश रहा था, अब ये तलाश प्रश्नों के उत्तर की थी या फिर किसी बहाने की नहीं पता।

दद्दा लाठी टेंकते हुए उसके सिरहाने आकर बैठ गये–

*बेटा! आज जे करम भी करा लिये... अब और का दिखायेगा तू... महतारी तेरी चिन्ता मिटर गई... बाप तेरे करमों का बोझ लिये ना जाने कहाँ मारा–मारा फिरता होगा... और ना जाने है भी कि हवा में मिल गया... मैंने इन आँखों में उमर से पहले ही बुढ़ापा ओढ़ लिया वो भी तेरे कारण... अब का चाहता है तेरी ये दशा देख–देखकर बहू भी मर जाये। दिनभर से उसने पानी का घूंट भी कंठ से नहीं उतारा... अन्न की तो बात छोड़... और ये आज की कथा नहीं उस बिचारी का हर घरी का दरद है।*

माधो घुटनों मे मुँह गड़ाये ऐसे बैठा था ज्यों कोई काठ की मूरत–

*लठियाते काहे नहीं दद्दा मुझे... मेरे जैसी सन्तान से तो अच्छा है कि ना हो... तुम सबकी दसा का कारण मैं हूँ... बस में होता तो दिन फेर देता... अब लगता है कि कहीं कुआँ बहर में चला जाऊँ।*

*चुप हो जा! येही के लिये प्रान दिये थे तुझे कि तू कुआँ बहर में चला जाये... येही के लिये जे जिनगी गार दी कि तू ऐसा कहे... अभी तक तो नहीं लठियाया पर अब जरूर लठियाऊँगा!*

*बेटा! जो बीत गई बात गई अब जो है उसी को सम्हार ले. .. अभी भी तेरी मति फिर जाये तो समझूँ जीवन तर गया. .. रो–रो आँखें फूट गई हैं... हाथ–पाँव भी अब नहीं चलते वो अकेली जान कब तक सम्हारेगी... डरता हूँ कि कहीं वो भी ना धुआँ हो जाये किसी दिन!*

माधो की धमनियाँ जैसे ऐंठी जा रहीं थीं, अपनी कलाइयों को मरोड़ता हुआ बोला– दद्दा*! उस बन्ने को...* बस ये कहते ही दद्दा ने माधो का मुँह मूँद दिया–

*बस यहीं ठहर जा, एक शब्द ना निकारना मुँह से, बेटा! इंसान की सबसे बड़ा अस्त्र उसका कुटुम्ब होता है, जब उसे पता हो कि उसके पीछे उसकी हरेक ठोकर को अपने बाजुओं में समेटने वाले पीछे हैं तो वह दोगुनी ताकत से किसी भी बुराई से हुज्जत लगा सकता है।*

*आज मेरी देह में इतनी भी शक्ति नहीं कि अपना बोझ उठा सकूँ फिर कल अगर तू गिरा तो तुझे उठाने वाला भी कोई नहीं... ये ही लोग तुझे रौंदते हुए निकल जायेंगे... इसलिये आज के बाद ये नाम और उसके हिस्से की मरोड़ें... कभी तेरे मुख पर नहीं आनी चाहिये... हमें इसी धरती पे रहना है... इसी आसमान के टुकड़े तले एकसाथ रहना है, और खुद की रक्षा भी स्वयं ही करनी है... अब क्या हुआ... किसने किया ... सब पीछे छोड़ दे क्योंकि जो हुआ... उसमें उस नीच से जादा दोष तेरा है!*

माधो घुटनों में मुँह गड़ाये ऐसे रो रहा था मानो आज सारे आकाशभर का जल बरसा देगा-

*सही कहते हो दद्दा! पापी मैं हूँ, अरे कौन ऐसा इंसान है जिसने जब जो चाहा उसे मिल गया हो... मैं अपनी इच्छाओं की हत्या की सजा किसे दे रहा हूँ... ये समझ ही नहीं पाया दद्दा!... अब कभी ना हिरकूँगा दद्दा!... अब कभी ना....*

दद्दा ने उसे अपने कलेजे में भींच लिया, मन को जैसे किसी आशा का छोर मिल गया हो, माधो पहली बार जैसे किसी बँधन से स्वतंत्र होकर चीख रहा हो, मन को बंदी बनाने वाली ख्वाहिशों की रस्सी को पूरा जोर लगाकर तोड़ रहा हो।

रात हो गई थी, वो हृदय को आश्वासनों और कर्तव्यों की कमरी उढ़ाकर शान्त हो जाना चाहता था... पर उसकी देह के नीले निशान जैसे मन पर पड़े थे... बन्ने के शब्द उन निशानों पर बार-बार चोट करके अट्टहास

कर रहे हों... खाट पर पड़ा कभी चूल्हे में झुलसती राधिका को देखता तो लाठी टेंके माटी को रौंदते दद्दा को! अब नये सवेरे का समय था।

दिन गुजरे, रातें गुजरीं माधो अपने तन और मन को बाँधे अब काम में डूबने की कोशिश करने लगा था... अपनी भूल के सिरे को कसकर पकड़े... चाक से गगरियाँ, तसले, गमले, बासन उतारने में स्वयं को झोंके रखता... पर नशे की लती थरथराती देह जब काबू से बाहर होती तो उसको जकड़कर... उस मढ़िया के बाड़े की तरफ खींच ले जाने को विवश करती पर बन्ने की हँसी उसके कानों में गूँजती तो ठहर जाता।

आज सबेरे से दस गगरियाँ फोड़ चुका था। हाथों की थरथराहट बढ़ने लगी थी... मुख को तौलिये से मलता हुआ तेज कदमों से बाहर जाने को हुआ तो राधिका ने पीछे से टोका – *फिर चले चढ़ाने, तुम बस बातों के हो, बस का कुछ है नहीं तुम्हारे।*

माधो गुर्राया– *अपनी जिम्मेदारियों को मान लिया है ना मैंने, काम करता हूँ, अब जो बस में नहीं होता उसका क्या करूँ, जितना बनता है कर रहा हूँ, जादा जिच्च की छाती, तो घर छोड़ चला जाऊँगा।*

राधिका ने आँखें फेरीं, माधो सरसराता हुआ निकल गया।

दद्दा खटिया पर बैठे बोले –

> *जाने दे बेटा, इतना ही क्या कम है कि चाक पर हाथ धरने लगा है। नशापत्ती भी कम ही कर दी है... धीरे-धीरे छोड़ देगा, मुझे तो इतना ही संतोष है कि अब तक तू अकेले जूझती थी... अब कम से कम कुछ तो सहारा है।*

राधिका धरती में टकटकी लगाये देखती रही... आँखें उबल रहीं थीं.. मन चकरघिन्नी सा घूम रहा था जैसे ईश्वर की परिक्रमा करता गुहार लगा रहा हो कि हे ईश्वर! मन के आग्रहों की हत्या की इतनी बड़ी सजा क्यों दे रहे हो इस बखरी को, जो जैसा तुमने बनाया उसी में तो जीना था फिर दोष किसका और क्यों?

# वक्त की धूल

सबेरा हो गया था। आँगन की नीम से सूर्य की किरणें अपनी तूलिकाओं से तरह-तरह के चित्र बना बिगाड़ रहीं थीं। पंछी, पंख फड़फड़ाते हुये अपने-अपने घोसलों से निकलकर अपने चुन की खोज में चाँव-चाँव करते फिरने लगे थे। माधो अब तक नहीं उठा था दद्दा भी चार बार आवाज दे चुके थे। राधिका सब काम छोड़कर उसकी खटिया के पास पहुँची तो आज माधो ऐसे सो रहा था जैसे वर्षों की चीखों के बाद कोई रात, मौन ओढ़े सो रही हो, उसके चेहरे पर कुछ बूँदें लुढ़की थीं, पर चेहरा बिल्कुल नदी के धीमे प्रवाह सा शान्त था, कुछ देर देखती रही फिर उसे हिलाकर कहा-

*आज उठना नहीं क्या, दद्दा चार बार बुला चुके हैं और इतना काम पड़ा है... अब तक सो रहे हो... ऐसे तो कभी ना सोये।*

राधिका की आवाज़ ने जैसे माधो के गुजरे जीवन पन्ना झटके से बन्द कर दिया, माधो हड़बड़ा के उठा तो वो उस वक्त से दूर आज में था, जहाँ उसे अपनी बेटी के मन की साधों से उसे उलझना था, स्वयं के साथ-साथ लहरिया को भी सुलझाना था। अपने चारों तरफ ऐसे अचरज भरी दृष्टि से देखने लगा जैसे किसी समयचक्र ने उसे अचानक से इस परिदृश्य में फिर ला पटका हो, कुछ पल बैठा रहा, दद्दा ने फिर आवाज दी तो चैतन्य होकर उनके पास दौड़ा गया- *हाँ दद्दा! ठीक तो हो!*

*अरे हाँ, मुझे क्या होना है... मैं तो इसलिये चिल्लाता था कि कोठी से फिर खबर आई थी... गगरियों के लिये।*

*हाँ... हाँ... आज सब बना लूँगा... चाहे रातभर बैठना पड़े इतना कहकर उसने दद्दा के सिर जमीन में रखकर पाँव छुए।*

दद्दा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा –

*इतना अधीर ना हुआ कर समय के गरभ में का है कौन जाने पर इतना जानता हूँ कि चाहे जैसी परिस्थिति हो एक रोज उबर ही जाती है का-का नई देखा हमने... तेरा बाप छोड़ गया। तुझे भी जम के दोरे से उठाके महामाई ने हमाई झोली में डारो...*

*आज जी जुड़ाता है तुझे इत्ती मेहनत से काम करते देख... ना घी चुपरी सही, सूखी मिल रही कि नहीं? रही बिटिया की बात तो बो अभी बच्चा है... सब ठीक हो जायेगा अपने आप. .. इसलिये जादा ना सोचा कर... बस अपने हिस्सा का करम करता जा।*

माधो चुपचाप बैठा था, आज उसका मन एकदम सहज लहर सा बह रहा था शायद इसलिये क्योंकि जब हम अपने भूतकाल के बवंडर का स्मरण करके खुद को आज सुगम परिस्थिति में पाते हैं तो उससे बड़ी आत्मिक शान्ति कहीं नहीं होती... स्वयं में नवीन ऊर्जा का संचरण महसूस होता है... मन, कर्म, देह सबकुछ सुदृढ़ होकर हर परिस्थिति से जूझने के लिये सज्ज हो जाती है।

कोठी पर आज बारात का दिन है। सूर्य भगवान् आकाश में अभी अपनी सवारी सजा ही रहे थे कि फुल्ले चिल्लाता हुआ आया-

*माधो कक्का! ओ माधो कक्का! जल्ली चलो... बड़ी पुरखिन बिल्कुल बमकीं बैठी हैं... तुरन्त बुलाया है!*

माधो ने कुछ सोचकर – *तू चल... मैं कुल्ला मुखारी करके आता हूँ!*

*नहीं अभी चलो, कहा है तुरन्त साथ लिवाके लाऊँ!*

माधो ने राधिका की ओर देखा तो वो चुपचाप खड़ी थी, भावहीन ना

कोई शिकायत, ना डर, ना ही क्रोध, माधो ने अंगोछा और शर्ट उठाई और फुल्ले के साथ-साथ निकल गया। कोठी में बड़ी पुरखिन सुपारी कतरतीं बैठीं थीं... माधो को देखते ही भौंहों के मध्य मोटी रेखायें गढ़ गईं- *आओ! आओ! राजा रमापत साहब!*

माधो ने पाँव छुये और बोला- *कछु गलती हो गई का पुरखिन?*

*गलती! तू कैसे गलती कर सकता है... तेरे साथ तो वो है, न्याय की देवी, जो कुछ बिगार कर ही नहीं सकती... मैंने तो इतना कहने को बुलाया है कि अब से हमारी खदनिया से कोई माटी ना मिल पायेगी और हाँ ब्याह के आस-पास भी ना फटक जाना तुम लोग!*

माधो ने हाथ जोड़ते हुए कहा-

*बड़ी पुरखिन मुझे नहीं पता कि का हुआ का नहीं... लहरिया की अम्मा ने कुछ नहीं बताया... मैं बस इतना कहना चाहता हूँ कि अगर मुझसे या उससे कौनऊ भूल चूक हुई उसके लिये नाक रगड़के क्षमा माँगता हूँ... अब तुम जो सजा कहो सब मंजूर... चार जनन के बीच चाहे जूता से मार लो... पर ऐसा ना कहो, परजा हैं तुम्हाई... कैसे जी पायेंगे।*

*अरे हम क्यों जूता मारें... जूता तो तुम मारो हमें चार जनन के बीच... जैसे तेरी लुगाई कल मारके गई।*

माधो कुछ नहीं बोला, अबकि मुखिया भीतर से आये तो माधो को यूँ उतरा मुँह लिये देखकर बोले- *अरे माधो! ऐसे काहे बैठा है?*

माधो ने झटके से उठकर पाँव छुये और बड़ी पुरखिन की तरफ देखा, बड़ी पुरखिन ने सारी घटना का ब्यौरा दे दिया तो मुखिया त्योरियाँ चढ़ाकर बोले-

*अम्मा! तुम जाने कितनी बेचैन रहती हो, इतनी सी बात के लिये का प्राण ले लोगी किसी के... बस इसी कारण मैं यहाँ*

*गाँव में नहीं रहता... अब जे ढोंग ढकोसले बन्द करो और माधो तू जा शाम को जरूर आना... अम्मा को गुस्सा जल्दी आता है... इसका मतलब जे थोड़ी है कि गाँवदारी छोड़ दी जाये... तू बेफिकिर जा!*

माधो सिर जमीन में टिकाकर मुखिया के पाँव छूकर बुदबुदाया- *जय हो तुमाई मुखिया जी, जय हो तुमाई!*

बड़ी पुरखिन के पाँव छूने गया, तो उन्होंने उसे ऐसे देखा जैसे वो उनके माथे से उनका अभिमान नोंचकर ले जाता हो, पल्ला झटकते हुए दूसरी ओर देखने लगीं, माधो जैसे ही चला गया तो अपने बेटे से बोलीं- *जे तूने ठीक ना किया भइया! जे लोग इतने गर्राने हैं कि घमंड आकाश छूता है इनका!*

*इस पर मुखिया हँसते हुये बोले....जब आना नहीं चाहता था ब्याह में तब तुमने ही कहा था... लोग का कहेंगे... गाँवदारी का कहेगी... दुनिया में हो तो सबको लेके चलना पड़ता है. .. मैंने तुम्हारी बात आदेश समझकर सिर माथे धरी... अब जब तुम्हारी खुद की बारी आई तो गाँवदारी कहाँ गई... अगर चाहती हो कि बिटिया के ब्याह में बाप की तरह रहूँ तो ठीक नहीं तो चला जाता हूँ। मैं ये सब ढोंग-धतूरे देखने नहीं आया!*

बड़ी पुरखिन अब चुप थीं, ना कोई सवाल, ना शिकायत, मुखिया उठकर भीतर चले गये। बड़ी पुरखिन फाटक के बाहर जाते हुए माधो को तब तक देखती रहीं जब तक ओझल ना हो गया।

शाम ढल आई है, पूरा गाँव ज्यों इन्द्रधनुष के रंगों सा झिलमिला रहा है। ऐसी चमचमाहट इस गाँव ने पहले कभी देखी ही नहीं, यहाँ के आकाश का टुकड़ा भी इस उत्सव को देख-देख चिढ़ा जा रहा है। आकाश के नक्षत्र भी अपनी ठोड़ियों पर हाथ धरे बैठे बस चुपचाप टुकटुक निहार रहे हैं। जुगनू भी आज अपने-अपने घरों से ये सोचकर नहीं निकले कि हूँह... आज उनकी टिमटिम को कौन देखने वाला है। पंछी, झींगुर सब

के सब अपने-अपने घरों में उदास बैठे हैं मानों उनके लिये बन्दी का दिन हो। चन्द्रमा आँखें काढ़े अपनी दूधिया चमक को दिखाने की कोशिश कर रहा है लेकिन ये क्या कोई आकाश की तरफ निरखता ही नहीं, वर्ना अपनी खाटों पर पड़े-पड़े यही लोग मुझमें अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य सब देखा करते थे, पर आज तो इस ब्याह के रंग में यों रंगे हैं कि जैसे हम कभी थे ही नहीं।

घरों के टिमटिमाते प्रकाश सकुचाये से सिकुड़े बैठे हैं। लोगों का सज-धजकर बारात देखने जाने का उत्साह आकाश छुये लेता है। क्या बच्चे, क्या बूढ़े और क्या जवान सबने अपने जीवन के सबसे अच्छे कपड़े निकाल-निकालकर पहने हैं। हवा में फूलों, मिठाईयों, मेवों, इतरों की सुगन्ध है। चारों तरफ बस सुख का शोर है लेकिन माधो की कोठरी में लहरिया के रोने की आवाजें गूँज रही हैं। राधिका रसोई बनाने की तैयारी में लगी है। लहरिया कभी बाबू के पास जा रही है, कभी अम्मा का आँचल घसीटकर कह रही है-

*अम्मा चलो... चलो जल्ली चलो... बरात आई।*

लेकिन राधिका ऐसे बैठी है जैसे उसे कुछ सुनाई ही नहीं देता, माधो ने मुँह पर उंगली रखकर लहरिया को चुप रहने का इशारा कर बाहर जाने को कहा, लहरिया चुपचाप उतरा मुँह लिये बाहर जाने को हुई तो राधिका तेज सुर में बोली -

*देहरी से बाहर पाँव ना रखना, चुपचाप दद्दा के पास बैठ।*

लहरिया कदमों को घसीटते हुए आशा भरी आँखें बाबू के पास छोड़कर चली गई और छपरे में फिर मौन पसर गया। राधिका की आँखों में उतर आये क्रोध के शोर का एक-एक शब्द माधो सुन रहा है। कुछ कहने-सुनने की हिम्मत ही नहीं होती। सांय.. सांय.. करती चूल्हे की लपटों के सुर ही बस बातें कर रहे हैं। शब्दों की सीमा जैसे दोनों के बीच चुप होकर बैठ गई थी।

माधो ने शब्द गुटकते हुए गले को दो तीन बार साफ किया लेकिन ये जानते हुए कि माधो कुछ कहना चाहता है फिर भी राधिका चुपचाप आटे पर हाथ मारती बैठी रही। अन्ततः माधो ने झिझकते हुए कहा–

*आज तो बरात है, कोठी पे ना जायेगी का?*

माधो का ये प्रश्न ऐसे लगा जैसे किसी ने उसके कान के परदों पर पत्थर पटक दिया हो, चूल्हे की लाल अंगार हुई लकड़ियाँ जैसे राधिका के चेहरे पर उभर आईं– *कुछ कहने की जरूरत है?*

माधो चेहरा घुटनों में गड़ाये चूल्हे के सामने बैठ गया राख हथेलियों में रगड़ता हुआ बोला–

*गाँवदारी का मामला है, मुखिया ने खुद कहा है, कैसे टाल सकते हैं? जरूरत में वे ही काम आते हैं। गाँवदारी छोड़ भी दें तो हम उनके करजदार हैं उनकी बात खोटी कैसे कर सकते हैं, छोटी-छोटी बातें भुलाने में ही सार है... जनम भर बैर की गाँठ बाँधे तो नहीं बैठ सकते!*

*बड़े लोग हैं, हमारे जाने ना जाने से कोई फरक नहीं पड़ता उन्हें... मैं उन्हें देखती हूँ तो खून में जैसे मरोड़ें उठने लगती हैं... ऐसा लगता है जैसे छाती को कोई रस्सियों से बाँधकर जबरन खड़ंजों पर घसीट रहा है... मुझसे नहीं बर्दाश्त होता अब... जब तक मुझ तक बात थी तब तक सब सहा... अब नहीं! राधिका ने रोते शब्दों से कहा...*

*सब समझता हूँ लेकिन आज फिर यही कह रहा हूँ, यही हमारा जीवन है। इसलिये अच्छा यही है कि मौन चराना सीख लें! माधो ने कहा...*

अबकि राधिका जलती लकड़ी चूल्हे में जोर से अड़ाकर झल्ला पड़ी–

*हमको तो बस मौन चराना सिखाया जाता है, गरब का अधिकार तो उन ऊँची महल अटारियों को होता है... उनके*

*इस खेल तमासे को तो वो विधाता भी सुख से निहारता है क्योंकि उन तमाशों को देखने के लिये नजरें गड़ानी नहीं पड़तीं... हम और तो माटी कूरा हैं, झार के फेंके जाना ही नसीब है हमारा! पहले हम झारे जाते रहे अब हमारी सन्तान बहोरकर फेंकी जा रही लेकिन हमें उसे सीखाना है तो बस मौन चराना... क्यों?*

बैंड-बाजों का शोर पास आने लगा तो सारे शब्दार्थों का संयोजन लिये किलकारियाँ भरती लहरिया फिर भीतर आई और बाबू का हाथ झटकते हुए बोली- *उठो... उठो... बाबू जल्ली चलो... बाजा आये बाबू चलो ना!* लहरिया को गोद में लेकर माधो राधिका के चेहरे पर जाने की उम्मीद तलाशता रहा लेकिन उसने आँखें जैसे चूल्हे में ही झोंक रखी हों।

*अब लहरिया भी बोल पड़ी... अम्मा! आज तो अच्छी-अच्छी मिठाई भी मिलेगी... अब नीला लहँगा पहरा दो!*

राधिका ने अपने चेहरे के क्रोध और पीड़ा के रंग को समेटते हुये लहरिया को देखा, जैसे कह रही हो कि क्यों री, अभी दिन ही तो बीता है, कितना कुछ छलनी करके लौटी थी उन कंगूरेदार दीवारों से और फिर उन शूलों में गड़ने के लिये हुलफुलाई जाती है। सबकुछ भूल गई अगर याद रहा तो बस वो नीला लहँगा, ऐसी कौन सी मोहनी डाली है उस लहँगे ने जो अपने गुलाब से कोमल पत्तों पर खाये घाव भी बिसर गये। कोरा मन है कसैले सत्य को अपने भीतर प्रवेश नहीं देता, तेरा ये कोरा मन सबकुछ मिटा सकता है लेकिन मेरे मन पर तो सबकुछ जैसे किसी चट्टान सा उग आया है जो हिलाये नहीं हिलता।

होंठो पर शब्दों का सूखा था लेकिन आँखे तो आज ऐसे बोलती हैं जैसे जीवन की सारी व्याकरण इन्होंने ही पढ़ रखी हो, सच ही तो है ये आँखें ही तो हृदय की जिह्वा हुआ करती हैं।

राधिका ने कोई उत्तर नहीं दिया, चेहरे पर उभरा लाल रंग, फूले हुये नथुने ही उससे पूछी जाने वाली सारी प्रश्नावलियों के उत्तर हैं।

माधो उसकी पीड़ा को अपने भीतर लिये लहरिया को लेकर बाहर चला गया। कोठी के अग्निबाणों की जलन से ज्यों उसके मन में फफोले पड़ गये हैं, उस पर बिटिया की छोटी सी ख्वाहिशें जैसे इन्द्र के ऐरावत को पाने की सी लगती है।

इधर ढोलों पर बच्चे लोट-पोटकर नाच रहे हैं, बूढ़े, बारे सब स्त्री बने लड़के का पल्ला पकड़-पकड़कर झूमते गाते धरती में जैसे मिले जाते हों... ना धूल की परवाह ना... कीचड़ की!

लहरिया यूँ नाचना गाना देखकर बाबू की गोद से उतरने के लिये कसमसाती हुई बोली- *बाबू! हम भी नाचूँगी, नीचे उतारो।*

माधो लहरिया को कसकर पकड़ा और बोला- *ना देखती नहीं सब कैसे नाचते हैं, तू कहीं दब गई तो?*

लहरिया ठुनकते हुए बोली- *ना बाबू ना दबूँगी, देखो छ्ज्जन भी तो है, हम भी जाऊँगी छोड़ो... छोड़ो...*

माधो ने लहरिया को पुचकारा और कहा- *तू जिद करेगी तो तेरा नीला लहँगा ना लाऊँगा, बिल्कुल चुप रहना।*

*नीला लहँगा!* लहरिया की आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं थीं, बाबू की दाढ़ी पकड़कर अपनी ओर घुमाई और बोली -

> *बाबू! हमें नीला लहँगा चाइए, और गहने भी, चमचम बाले, और...और..चूली भी!*
>
> *हाँ...हाँ...लायेंगे तेरा नीला लहँगा!*
>
> *कब बाबू, अभी चइये! ठुनकते हुए लहरिया बोली*
>
> *एक नहीं इत्ते सारे लाऊँगा... देखना तुझे ऐसे जादू से दिखाई दे जायेगा। चुटकी बजाते हुए माधो ने कहा*

लहरिया के नन्हे से मुख पर हँसी खिल गई- *सच्ची बाबू! जादू से, तो हम ऐसे आँखें मींच लूंगी फिर तुम लाना!*

माधो ने मुस्कुराकर उसका मुख चूम लिया, लहरिया छटपटाकर बाबू की गोद से उतरी और चिल्लाती ढोल के शोर में कूदती और चिल्लाती–

*हमारा नीला लहँगा आएगा... नीला लहँगा आएगा... बाबू जादू से लायेंगे!*

लहरिया को यूँ ख्वाहिशों की खुशी पर थिरकते हुए मन बावरा हुआ जाता है... पर पिता की छूंछी हथेलियों, कुर्ते की फटी जेबों में इतनी शक्ति नहीं कि उसकी ये हँसी को सम्हाल कर रख सके, माधो के चेहरे पर बिखरी मुस्कुराहट पलभर में चिन्ता में बदल गई–

*मैं अपनी बेटी की ख्वाहिशों को मारकर उसे ऐसे रास्ते पर कभी नहीं जाने दूँगा... जहाँ सिर्फ अंधेरा होता है... नहीं... नहीं... मैं लाऊँगा लहरिया का नीला लहँगा! पर कैसे? घर में तो चंद सिक्कों से ज्यादा एक रुपल्ली भी नहीं, इस मँहगाई के युग में लहँगा कोई सौ दो सौ का तो आता नहीं होगा! इतना बवाल हो गया नहीं तो कुछ पैसे कोठी से मिल ही जाते, लेकिन कोई बात नहीं जैसे–तैसे हाथ–पैर जोड़कर मना ही लूँगा... बड़ी पुरखिन को... उनके यहाँ से पैसे मिलेंगे... उससे लहरिया का लहँगा ही ले आयेंगे... चौमासे में तो अभी देर है... छपरा तो बाद में बन जायेगा... जैसे इतने दिन कटे ये भी कट जायेंगे और अभी चैत का मेला भी तो होने वाला है... उसमें गुड़िया बनाकर कुछ अच्छे पैसे की जुगाड़ हो ही जायेगा... हाँ... ये सही है... सारे काम समिट जायेंगे, फिर तो!*

माधो ने अपने मन में सारे गुणा–भाग लगा लिये और उनका परिणाम भी उसके अनुरूप ही मिलने का विश्वास उसके मुख पर दमक उठा, किन्तु ये भी एक बड़ा सत्य है! मनुष्य सदा भ्रम में जिया करता है कि उसने अपना भविष्य गढ़ लिया है लेकिन समय तो स्वयं का कारीगर स्वयं ही होता है, उसे कौन गढ़ पाया है।

# पैना आकाश

शाम गहरी हो गई है, राधिका ने कोठी पर ना जाने की जैसे ठान ही रखी है। जब गाँवभर ब्याह के घर की तरफ जा रहा है तब वो अनमनी सी माटी माड़ने बैठ गई। माधो यह देखकर उसके पास जाकर उसे फिर थोड़ा समझाते हुये कहा–

*बारात आने वाली होगी और तू यहाँ माटी में भिड़के बैठ गई, बड़ी पुरखिन आते–जाते फिर उलाहना देगी कि तेरी घरवाली की तो मान मनौव्वल करो तब दर्शन देती है... तनक सा कुछ का कह दिया भमानी सी रिसानी बैठी है... मुखिया जी को का कहूँगा और देख तो लहरिया को जिसे मार तक पड़ गई पर वो कैसी खिलखिलाती फिरती है... और तू है कि अब तक मुँह डारे बैठी है।*

*राधिका माटी को रगड़ते हुए कुछ देर उसे देखकर – का करूँ तो... दद्दा बीमार ना होते तो उसे उनके पास छोड़ देती, अब उनका अपना कुछ ठिकाना नहीं... लहरिया को छोड़ जाऊँ तो और प्राण खा लेगी। अब कहो बिटिया को घर में छोड़ नहीं सकती, वहाँ ले जाऊँ तो शैतानी करती फिरती है फिर बड़ी पुरखिन ही चिल्लाकर खाने दौड़ पड़ती हैं। अपना करेजा दाँतों में दबाये लौटी थी वहाँ से, दस जनों में कैसी–कैसी बातें नई कहीं, जी करता था कि हे धरती मइया! अभी फट जायें और मैं समा जाऊँ।*

*...ठीक है... माधो ने समझाते हुये कहा, इतनी नाक वाली ना बन, हम परजा हैं हमारी नाकें नहीं होती बस कान होते हैं, और बँधे हाथ... यही मान ले कि बड़ी बूढ़ी हैं... कछु कह दिया तो का हुआ... बरात उठ जाये, बाजे सुनाई देने लगें सो चली जाना... लहरिया को भीतर ना ले जाना, मैं ले आऊँगा, गाँव-गली से बैर नई लिया जाता और फिर वो तो बड़ी पुरखिन हैं... उन्हीं की दी माटी से हम रोटी खाते हैं।*

*....नाक नहीं होती ठीक है, पर कानों की भी तो सीमा होती है, राधिका फिर बुदबुदाई, अति हो जाये जो मवाद बहने लगते हैं... और वो कौन मुफत में माटी दे देती हैं, पहले पैसा रखाती हैं... तब खदनिया में घुसने देती, जब उधार देतीं तो दुगने मोल के बासन ले जाती हैं... रही करजा की बात तो कौन मारके भगे जाते हैं... कौड़ी-कौड़ी करके चुकाते तो हैं ना... फिर कब तक सुनें... जब देखो तब सवार हो जाती हैं।*

माधो इस बार झल्ला पड़ा था, कुछ आवाज तेज करके बोला -

*तो का करूँ, पहुँच जाऊँ लट्ठ लेके कि काए लुगाई को... बिटिया को बुरा भला कहा? गरीब को गरब का अधिकार नई होता और अपने मालिक से तो बिल्कुल नई.. घर की छत का एक टुकड़ा चटका हो तो पूरा घर माटी में नहीं मिला दिया जाता! मन के क्रोध को इतना प्रचण्ड ना होने दे कि श्राप बनकर निकले।*

राधिका ने कुछ देर माधो को तरेरा और फिर माटी पर अपने हाथ पटकते हुए बोली-

*गरब करने को कौन कहता है... कम से कम जिन्दा रहने लायक छोड़ेंगी कि नई... जी से ऐसा श्राप निकलता है कि का कहूँ लेकिन इन बद्दुआओं के मुँह पर हाथ धर के चुप करा दिया करती हूँ... हम जैसे लोग तो सन्तान के सुख के*

*लिये दुनियाभर से अपमान, क्रोध सबकुछ हँसकर सह लेते हैं लेकिन जब वही दुनिया... सन्तान पर अग्निबाण चलाये तो का करना चाहिए?*

*माधो फिर नर्म होकर बोला - हम जैसों की तो बद्दुआयें भी नहीं लगतीं, इसलिये काहे मन मैला करती है... जो वो करें उनके साथ, जो हम करें हमाये साथ। अपना कर्तब्ब हम तो नईं छोड़ सकते... अच्छा है ये जलने की आदत हमारी सन्तान भी डाल ले... आखिर हमें रहना तो उसे भी इसी संसार में है।*

*...जब तक उस पर किये वार अपने ऊपर ले सकती हूँ तब तक समझौता न करूँगी। तुम बड़े कर्तब्ब बाले हुये हो तो निभाओ, मुझसे आशा न रखो। तुम्हें जाना है चले जाना, मैं कोठी में कदम ना रखूँगी, बाहर से भले मुँह दिखा आऊँ।*

*...सबेरे से शाम हो गई एक ही बात समझाते-समझाते लेकिन जब समझने वाले ने किले से परकोटे इर्द-गिर्द तान लिये हों तो समझाईशें उन दीवारों से टकराकर वहीं मर जाया करती हैं... अब कान ऐंठ लिया एक बार ना कहूँगा कि चल कि ना चल... जैसा तेरा जी करे सो करना। पर फिर भी इतना कहता हूँ तेरी शान्ति के लिये... मन को धीरज दे जो हुआ सो उसे बदल तो नईं सकते... उन्हें तो तृण भी पीड़ा ना होगी... हम काहे कुढ़-कुढ़कर अपना जी कोयला करें!*

राधिका का मन फिर रिस चला था, धीरे से फुसफुसाई- *ऐसा बालमन भगवान् हम बड़ों को भी दे दिया करे जो पलभर में सब भूलकर जीवन के आनन्द में डूब जाते हैं।*

राधिका ने खूँटे से टँगी लालटेन उतारकर जलाई और भीतर धोती बदलने पहुँची तो झोपड़ीभर में महावर के नन्हे-नन्हे पैरों की छापें बिखरीं पड़ीं हैं। भीत पर महावर के छींटे, धरती पर सैन्दुर चौक सा

बिखरा पड़ा है, कोठरी के कोने में लहरिया हाथ, मुँह सिन्दूर से रंगे बैठी है। पाँव महावर में डूबे हैं, आधी-आधी बाँहें रंग में लिपटी हैं, होठों पर, मुँह पर लाल रंग छपाये बैठी है।

अम्मा की आवाज सुन लहरिया पीछे मुड़ी और धीरे से होंठ पसारकर मुस्कुरा दी। राधिका उसका रूप देखकर मुँह दबाये दरवाजे पर ही टिक रही- *अरी महामाई!* इस पर लहरिया हँसते हुए बोली-

> *देखो अम्मा! आज बरात आने वाली है, इसलिये हम सज गये, हम कितनी सुन्दर लग रही हूँ ना, बहरिया से हमकी ऐसे-ऐसे बड़म-बड़म करके नज्जू उतारो!*

राधिका दरवाजे से टिक कर बैठ रही, धीरे से फुसफुसाई-

> *जाने बिधाता कौन घरी में इसे गढ़ने बैठे थे, सारी अकल का कटोरा इसी में उलट दिया है जाने का?*

अभी तो बिलख-बिलख ऐसे रोती थी कि चार दिन तक मुँह डाले बैठी रहेगी और अब देखो कैसा स्वांग पसारे बैठी है। बच्चे भी बड़े नट होते हैं, ऐसे-ऐसे परिदृश्य गढ़ते हैं कि नाट्यसृष्टा को भी अवाक् कर दें लेकिन उम्र के दरख्त जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं... उनमें लोच नहीं रह जाती, घाव सहज नहीं भरते... लहरिया का ये रूप देख तो जैसे राधिका के क्रोध में किसी ने घी नहीं कपूर डाल दिया हो... वो देहरी से तेज कदमों से भीतर आई... हाथ से सैन्दुर की डिबिया छीनी और बोली-

> *इतनी चतुरई आती कहाँ से है तुझे, आज सबेरे ही लीपी थी कुठरिया और पूरी सत्यानाश कर डाली है, ऊपर से चार पइसे का सैन्दुर, माहुर भी माटी में मिला दिया और खुद भी सिर से पाँव तक लाल हुई बैठी है।*

लहरिया को उम्मीद थी कि उसका ये रूप देख अम्मा हँस पड़ेगी पर ये क्या अम्मा तो गुस्सा हो रही है! अब क्या करे? कुछ समझ नहीं आया तो सुबकने लगी।

तभी माधो भी आ पहुँचा, लहरिया ने जैसे ही बाबू को देखा जोर-जोर से रोते हुये दौड़कर बाबू की कमर से जा लिपटी, माधो ने उसका चेहरा उठाकर देखा तो माथे पर टिपकियाँ ही टिपकियाँ, पाँव-हाथ माहुर में डूबे थे, होठों पर भी माहुर फैला हुआ था।

माधो उसे देखकर ठठाकर हँस पड़ा- *ये क्या किया तूने?*

बाबू को इस तरह हँसता देखकर लहरिया रोते-रोते ठहर गई, उनके चेहरे पर क्रोध और हँसी को पढ़ने की कोशिश करती हुई बोली-

*हम ब्याह के लिये सजी हूँ, अम्मा मारी हमें!*

*माधो ने पुचकारा तेरी अम्मा कौन जानती है सजना सँवरना, पर तू तो कितनी अच्छे से सजी है, देखो तो हमारी लहरिया कैसी जँचती है!*

*लहरिया ने मुस्कुराते हुये धीरे से बाबू और नीला लहँगा भी पहनूँगी तो और भी सुन्दर लगूँगी ना?*

ये नीला लहँगा जैसे हँसी के लिये किसी छेंक से कम नहीं है, जब भी मन से इसका नाम बिसरता है ये मुँह फैलाये आ खड़ा होता है और ये बालहठ माता-पिता के चेहरों पर बिखरी मुस्कुराहटों को पलभर में निराशा में बदल देती है। राधिका झल्लाते हुए बोली-

*चुटइया पे काहे नई बैठा लेते... ऐसो नहीं कि समझायें लेकिन नहीं और सह दिये जाते हैं... सब छपा दिया तुम्हारा कुर्ता, अब फगवारे बनके जाना ब्याह में।*

माधो का सफेद कुर्ता पाजामा लहरिया के माहुर भरी हथेलियों और मुँह से लाल हो गया था-

*अरे राम राम! जे का किया! एक ही था मौका वक्त के लिये वो भी रंग गया... अब का पहरूँगा... अभी थोड़ी देर में बरात बस उठती ही होगी।*

*राधिका फिर पलटकर बोली - अब काहे राम राम करते हो,*

*तुम्हीं तो बिगाड़े हो मौड़ी को, सबेरे की लिपी-पुती धरती पूरी रंग के धर दई, खुद भी रंगी, कपड़ा रंग डाले बे अलग!*

*माधो जोर से हँसते हुये – ठीक है हो गया अब इतना काहे बड़-बड़ कर रही है। देख तो कित्ते सुन्दर छोटे-छोटे पइयाँ बनी हैं हमारी लाडो की। समझ ले माता लक्ष्मी बनाकर गई हैं... जे लाल-लाल निशान... पूरी कुठरिया में लगता है जैसे बोगनबिलिया छिटक गई हो... तू तो बस मन में कलेश जमा के बैठ गई है... खुद भी भुंज रही है... बिटिया को भी झुलसाती है, फिर मेरी तो गत ही का है... इतना गुस्सा अच्छा नहीं होता.. कब तक लादे बैठी रहेगी।*

*राधिका ने माधो को तरेरा – अभी थोड़ी देर पहले तक तो खुद के तेहा पे काबू ना था, अब बड़े सन्तज्ञानी बन रहे हैं, अब ये ही रंगा कुर्ता पहने जाओ तो जानूँ!*

*...ओहो! तू तो बात पे बात लगाये है, कहीं का गुस्सा कहीं उतार रही, बड़ी बुरी आदत है रे तेरी!*

राधिका चुपचाप धरती पर फैला सैन्दुर बटोरने लगी। बाबू के कांधे से चिपकी लहरिया कनखियों से माँ को देखती और फिर मुँह छुपा लेती। माधो उसको कांधे से चिपकाए हुए शरारत भरी मुस्कान के साथ बोला-

*अब ये माहुर रचा कुर्ता पहरके बाहर जा नईं सकता, नईं तो गाँवभर ठिठोली करेगा... कहेगा का रे माधो दूजे की तैयारी है का? फिर मैं का जवाब दूँगा?*

माधो की शरारत काम कर गई, राधिका शर्म घुली हँसी हँस दी और बोली-

*फालतू बातें तो ना करो बिटिया के सामने, जानते नहीं का उसे, बार में से बकली निकालती है, अब जानें किससे का का कहेगी...*

लहरिया ने अम्मा के चेहरे से गुस्से की रवानगी देखी तो झट से बाबू की गोद से कूदकर अम्मा की पीठ पर चढ़ गई, और बोली– *अम्मा! हम अच्छी लग रही हूँ ना?*

राधिका ने झाड़ू उठाई और नजर वारते हुए बोली– *दुनियाभर से सुन्दर लग रही हमारी लहरिया, किसी की नजर ना लगे।*

मन का आवेश लहरिया की अट्खेलियों से शान्त हो चला था। बाहर से बारात का शोर भी तेज हो गया। ढोल ढपलियों के साथ–साथ पहली बार गाँव में डीजे भी आया है। चमचमाती हंसगाड़ी पर दूल्हे राजा बैठे हैं। डीजे पर गाना बज रहा है–

*आज मेरे यार की शादी है, मेरे दिलदार की शादी है...*

नाचती, थिरकती बारात बढ़ी चली आ रही है। सजी–संवरी लड़कियाँ, औरतें भी बारात में आईं हैं। जिन्हें देखकर गाँव के बुजुर्ग मुँह सिकोड़कर कहते– 'भईया, नई फैशन है, शहर से जो बरात आई है' कुछ लोग नजरें दौड़ाते हुये देखने की कोशिश कर रहे थे कि बारात में कितनी बन्दूकें लहराई जा रहीं हैं–

*अरे भइया! कोठी की बरात और देखो तो एक दुनाली तक नईया... बताओ ऐसी बरात आई कोठी की... झूठमूठ की फटर–फटर चला रहे... हट्ट बड़े चीसन के इते बिटिया ब्याह दई बड़ी पुरखिन ने... अब चार गाँव तक हल्ला हो जै है कि कोठी की बरात छूंछी ढपलियाँ ढपढपात आई है।*

*सही है भईया! गाँव भरे की डुबा दई!*

इधर गाँव की आन की चिन्ता में एक जमात मरी जा रही थी दूसरी तरफ युवा लड़कों की जमात में तो अलग ही सुरसुरी फैली है। सबने अपने हाथों से कितनी ही बार जुल्फें सँवार लीं हैं और कितनों को तो पहला वाला प्यार भी हो गया है।

गाँव की औरतों के बीच सारे मिलेजुले भाव हैं। कुछ महिलाओं को

बरात की औरतों देखकर ईर्ष्या हो रही है। कुछ उनके कपड़े जेवरों को देखकर वर के ऐश्वर्य का अन्दाजा लगा रहीं हैं। इन सबसे इतर जनवासे के लोग दूल्हे के रूप का निरीक्षण परीक्षण करके उस पर अपनी विशेष टिप्पणियाँ कर रहे हैं।

*देखो तो बिन्ना! राजकुँवर सो दूल्हा है रचना को!*
*हाँ...है तो सही पर हमाई रचना कौन कमजोर है, इक्कीस ही बैठे वर राजा से।*
*कछु साँवरो सो नई लगत है, जिज्जी?*
*तो का हुआ, लड़का कौन दूध से धुबे साजे लगत हैं।*
*काहे, हमारी रचना तो देखो कैसी कुसुम कली सी है... दूल्हा की तो उम्मर कछु जादा है!*
*अरे आजकाल तो येही उमिर हो गई ब्याह की... हम और सी थोड़ी जो नाक पोंछबो आऊत ना हतो, और धुतिया (साड़ी) पहरा के ससरे भगा दये गये, ना पता होत हतो कि कौन सास है, कौन आदमी है।*
*सई कही जिज्जी हमाओ जमानो तो बहुतई बुरो हतो, अब तो देखो रचना अपनो दूल्हा खुद ही ढूँढ ल्याई, बड़ी पुरखिन और पूरे घर ने कैसे बात मानी, अभे गाँव के कौनऊ दूजे घर में ऐसी बात हो जाती तो येही बड़ी पुरखिन हजार बातें कहतीं तब एक गिनती, पूरे गाँव में मुँह सिकोरती फिरतीं सो अलग!*
*अरी बिन्ना! कुंजरिया अपने बेर खट्टे कहत है कहूँ!*

सबकी सब ठठाकर हँस दीं। बारात पूरे जोश-खरोश के साथ कोठी पर पहुँचने को है लेकिन इधर राधिका अब तक घर से नहीं निकली। जाने का मन ही नहीं लेकिन लहरिया पाँव पटकती यहाँ से वहाँ घंटेभर से उसके पीछे दौड़ रही है- *अम्मा! बाजा आए जल्दी चलो, अम्मा!*

राधिका भुनभना रही थी - बड़ी-बड़ी बातें करते हैं बस, अब खुद तो रंग बज के सरक गये, ऐसा नहीं कि बिटिया को लिवाये जाते- राधिका

मन में गुरगुराती कभी कोई सामान यहाँ पटकती, कभी वहाँ, जानबूझकर देर कर रही है। सोचती है बारात निकल जायेगी तो अपने आप शान्त हो जायेगी लेकिन लहरिया रोते-रोते हाँफने लगी। कभी हाथ झटकती, कभी धोती झटकती और कभी खुद ही बाहर भागने को होती लेकिन राधिका टस से मस नहीं हो रही थी।

*दद्दा भी कितनी बार कह चुके थे, अरी! चली जा, कौन तू नकटी बूंची हो गई जो मुँह लुकाये-छिपाये बैठी है... बाल-बच्चा जैसी हठ बाँध के ना बैठ... देखो तो बिचारी मौड़ी कैसी सिसरियानी सी बैठी है।*

राधिका ने लहरिया को मुँह डाले, आँखों में डूबती उम्मीद को देखा तो जैसे किसी तेज धार ने उसके सारे मान अपमान को दूर किसी छोर पर ले जाकर पटक दिया। नीले लहँगे की इच्छा ना सही जो पूरी कर सकती हूँ उस पर डाका डाल के तो नहीं बैठ सकती। अपना मान अपमान मेरी अपनी सन्तान से बड़ा तो नहीं। राधिका जैसे ही उसके पास पहुँची तो लहरिया को लगा अम्मा उसे पकड़कर भीतर ले जाएगी, उसने ऐसी दौड़ लगाई कि सीधे बाहर पीपल के पास जाकर रूकी। राधिका उसके पीछे दौड़ी, तब जाकर पकड़ में आई, हाँफते हुए बोली-

*अच्छा रुक तो, फराक तूने माहुर में भर ली अब बता वहाँ कैसे जायेगी और तेरे पास कौन से बकस भर कपड़ा हैं?*

लहरिया को कपड़े के नाम से फिर नीला लहँगा कौंध आया, तो चहकते हुए बोली- *अम्मा! नीला लहँगा.. पहरूँगी, अभी पहराओ!*

*आगी छुब जाये ई नीले लहँगा में... नथुनन कर दिया है। जब-जब जे बोलती है छाती में छेद से होते हैं, अब एक बार और बोली तो, ना बरात देखने जाने दूँगी और ना वहाँ कुछ खाने दूँगी।*

लहरिया धीरे से बुदबुदाई- *नीला लहँगा!*

राधिका अपने अंतस् की छटपटाहट दाँतो तले पीस रही थी– *चुप हो जा बिल्कुल, जब कहा लिवा देंगे तो बिल्कुल दम ही नहीं लेती तू तो!*

अम्मा को गुस्सा होते देख लहरिया ने मुँह लटकाये चुप हो गई। जानती है, अब कुछ कहेगी तो अम्मा कहीं ना ले जायेगी, राधिका ने उसे दूसरी घंघरिया पहनाई, चलने को कहा तो लहरिया ने दोनों हाथ फैलाकर बोली– *अम्मा! गोदी!*

राधिका ने उसे गोद में उठाया और बोली– *बेटा! अब तू बड़ी हो गई है ओली लेकर नहीं चल पाती।*

लहरिया माँ के कांधे से चिपकी कोठी के द्वारे पहुँच गई। बारात देहरी पर पहुँच गई है। राधिका बाहर ही कोने में लहरिया को लिये घूँघट डालकर खड़ी हो गई।

अम्मा के कांधे पर टिकी लहरिया बारात के ढोल से ज्यादा, चमकीले रंग बिरंगे लहँगे पहने बच्चों को खेलते–नाचते देख रही है। छज्जन और सुखनी नये कपड़े पहन उसे दूर से ही बिरा रहे हैं। लहरिया उन्हें देखकर मुँह छुपा लेती फिर थोड़ी देर में धीरे से चेहरा उठाकर देखती तो कल्लू उसे चिढ़ा जाता। लहरिया ने अम्मा की ठोड़ी पकड़ कर अपने तरफ की और उंगली से उन रंग–बिरंगे तितली जैसे बच्चों की तरफ इशारा किया, छज्जन, सुखिया और कल्लू वहाँ से दौड़ लगाकर दूसरी तरफ भाग गये।

लहरिया धीरे से फुसफुसाते हुए बोली– *अम्मा! नीला लहँगा चइये।*

इतने ढोल–ताशों के शोर के बाद भी राधिका के कानों में लहरिया के अनुनय भरे शब्द बिजली के करंट से चुभ रहे थे। राधिका उन बच्चों को कुछ देर निहारती रही, आँखों में कुछ चुभने सा लगा था। घाव जैसे फिर रिसने लगा था। राधिका ने लहरिया के माथे पर हाथ फेरा, उसे अपने कांधे से चिपकाये कोठरी में लौट आई।

लहरिया को कुछ हरारत सी हो आई है। राधिका उसे छाती से

चिपकाकर खटिया पर ऐसी निढाल सी पड़ गई, जैसे किसी घमासान युद्ध से थककर कोई योद्धा लौटा हो। बारात के मधुर सुर भी कर्कश लग रहे थे। आत्मा की उथल-पुथल में भावनायें जैसे छलनी हो-होकर बाहर आ रही हों।

छपरे की झीनी धज्जियों से चन्द्रमा साफ-साफ दिखाई पड़ रहा है। उसकी आँखों मे तैरती नमी में जैसे चन्द्रमा भी डगमगाने लगा है। राधिका चन्द्रमा को टकटकी लगाये ऐसे देख रही है जैसे उससे कोई संवाद कर रही हो-

> *क्यों रे! हर रोज इस आकाश पे आता है, सारे अच्छे बुरे काल का गवाह होता है लेकिन आखिर कितनी गहराई है तुझमें जो सबकुछ देखता रहता है और कभी न्याय अन्याय, प्रेम, विलाप, पीड़ा कुछ भी तुझे नहीं रुलाता। अपनी थोड़ी सी गहराई मुझे भी दे दे तो ये जीवन सहज हो जाए।*

ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज राधिका की आँखों में चाँद भी थरथराकर उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा हो-

> *कौन कहता है सारी पीड़ायें गहराइयों में डालकर पी जाता हूँ। वो अमावसी अंधेरा मेरी वेदना का ही तो अक्स है। मैं तुम्हारी इन्हीं वेदनाओं के कारण अपने झिलमिल प्रकाश के दिनों में भी तिल-तिल मरता रहता हूँ। कहो क्या ये तुम्हारी पीड़ाओं का हिस्सा नहीं?*

इन पीड़ाओं के आदान-प्रदान में राधिका ने आँखें मींच लीं लेकिन आँखों के कोरों पर जमा नमकीन पानी अब भी टप...टप...टप... टपक रहा है। मनुष्य बड़े से बड़े आभावों में भी आह्लाद का हुनर रखता है किन्तु जब सन्तान की छोटी सी ख्वाहिश का कत्ल अपमान के खंजर से तार-तार हुआ हो तो हृदयों में सिर्फ बेबसी का नाद होता है और आँखों में उन ख्वाहिशों की हत्या का लाल रंग।

राधिका ना जाने क्यों इस बार जिद्दी हो जाना चाहती है। लोगों के उलाहनों को जैसे कह रही है कि लहरिया की ये ख्वाहिशें तो पूरी करके रहेगी।

लहरिया जबसे बोलने लगी है तबसे उसकी इच्छायें भी शब्द पाकर प्रायः बाहर आने लगीं हैं लेकिन जब उसकी मासूम हसरतों के शब्द असहाय होकर गिरते हैं तब उनका दर्द राधिका और माधो को होता है लेकिन इस बार की शब्दाग्नि ने तो जैसे राधिका के दिल के सैकड़ों छाले फोड़ दिये हों।

मन अनायास उस वक्त में दौड़ा जा रहा है जब लहरिया ने जन्म लिया था। कितने जतन नहीं किये थे इस सन्तान के लिये, देवी के सामने सौगन्ध ली थी कि रत्तीभर दुःख उनकी बच्ची को छूने ना पायेगा लेकिन उसकी छोटी सी अभिलाषा पर कितना तमाशा देख लिया वो भी बिना कुछ कहे। आकाश के चन्द्रमा में वो साल उभर आये हैं, वो सारे जतन चमक उठे हैं जो इस सन्तान को पाने के लिये माधो और राधिका साथ मिलकर किये थे।

# देहरी की आशा

समय की गति उल्टी होकर उस वीराने में पहुंची है जहां राधिका अपने आंगन के साथ-साथ अपने घर की हर एक दीवार में उगी उम्मीद की आंखों में दिन ब दिन बढ़ते वीराने से लड़ती थी।

घिटोई का घर छल के व्यापार से चलता है। साल की दो नवरात्रियों में इतना कमा लेती है कि वर्षभर आराम से खर्च चलता है। इस साल बन्ने ने ठान रखा था कि लड़के को मोटरसाइकिल खरीदवा देगा। पैसे कम पड़े तो उसने घिटोई से दरबार लगाने को कहा पर घिटोई ने इंकार करते हुये कह दिया-

> *कम से कम महामाई को तो बख्श दो, नरक भोगोगे तुम भी मैं भी... गाँव वालों को झूठ का लिफाफा पकड़ाकर अपना घर चला रही हूँ। जी तो करता है बीच चौपाल में खड़े होकर डौंढ़ी पीटूँ और सबको खोल-खोल के ये खेला बता दूँ... पर कूँख को मोह ना होता तो होम देती तुझे भी और खुद भी स्वाहा हो जाती। सब जानते बूझते पाप करती हूँ लेकिन नीच कहूँ के! इतना ईमान तो रख कि कौनऊ को नुकसान ना पहुँचे। आखिर हमें भी ऊपर सरग में मुँह दिखाना है... आगे ना जाने का दिखायेगी माई, बड़ा भय लगता है। सड़-सड़ के मरेंगे ठठरीबंधे!*
>
> *बन्ने ने उसे फटकारते हुये हट्ट! हरामजादी कहीं की, जब तक ब्याह ना किया था तब भी तो तू ये स्वांग रचती थी। तब*

*डर ना था महामाई का, अब मुझे बड़ा डर बताकर सन्तन बनती है। इतना कहकर एक जोर थप्पड़ उसके मुँह पर रसीद कर दिया।*

*घिटोई सीधे दीवार में जा भिड़ी कराहते हुये अरी दइया मर गई, मैं तो अकेली जान कैसे पेट पालती इसलिये बस देवियों के दिनों में करती थी... पर महामाई जानती हैं कभी कोई गलत काम ना किया... अब तुम्हारी अईयाशियों के लिये महामाई का पाप सिर पर ना ढोऊँगी, आज चाहे मार डारो।*

*बन्ने दाँत किटकिटाते हुये - अच्छा! खुद करती थी तो पुन्न था, अब हमारे लिये पाप हो गया, ठहर जा आज सारे पाप औ पुण्यों का हिसाब करता हूँ।*

बन्ने ने डंडा उठाया और घिटोई पर ऐसे टूट पड़ा मानो गाय भैंस के लिये घास कूटता हो। मार-मारकर मुँह सुजा दिया, जब थक गया तो डंडा फेंक बाहर निकल गया और जाते-जाते धमकी दे गया-

*ढंग से समझ ले तू तो जिन्दा रहेगी लेकिन तेरा वो लौंडा ना रहेगा। गतरा-गतरा करके नदिया में बहा दूँगा और तुझे पता भी ना चलेगा।*

घिटोई अपने दुधमुँहे बच्चे को छाती से चपेटे कराहती दीवार से टिकी साँझ तक बैठी रही। देह के नील गाढ़े हो गये थे पीठ पर जगह-जगह से खून छलछलाकर जम गया था। टूटी चूड़ियों के लम्बे-लम्बे घावों ने कलाईयों को लहूलुहान कर दिया था।

छ्ज्जन रोया तो अपनी आँखों की खेती को विश्राम देकर उसने चूल्हा सिलगाया। अपने मन की तपिश को चूल्हे में झौंक आज उसने कोख के भय से बक्से से लाल सितारों से जड़ी वही चुनर फिर निकाल ली।

चैत लगने में अभी दस दिन हैं लेकिन गाँवभर में आज देवी के गीत गूँज रहे हैं। महिलायें, पुरुष नारियल, बताशे लिये लहर माई की मढ़िया

की तरफ दौड़े जा रहे हैं। कुछ लोग पैढ़ें भरकर लहर माई की मढ़िया तक जा रहे हैं, कुछ नंगे पाँव, तो कुछ हाथों के बल पर।

लहर माई की गाँव में बड़ी मान्यता, पूजता है। चौपालों पर बैठे बुजुर्ग के पास लहर माई के चमत्कारों की कहानियों और कथानकों का अपार भंडार था। कहते हैं लहर देवी जब अपने बालपन में थीं तब बड़ी-बड़ी बाढ़ की लहरों पर चलकर एक गाँव से दूसरे गाँव सहज ही चली जाया करतीं थीं। जिस पर हाथ रख देती उसके असाध्य से असाध्य रोग-दोष दूर हो जाया करते थे।

आस-पास के चार गाँवों की ग्रामदेवी हैं लहर माई, हर शुभकाज माई के नाम से ही आरम्भ हुआ करते हैं। बरस में दो बार नवरात्रि के दिनों में बड़ा भारी मेला भी लगता है। दसों गाँव और शहरों के लोग लहर माई के दरीखाने में अपनी अर्जियाँ लगाने आते हैं। पहले तो गाँव के लोग ही यहाँ आया करते थे पर अब जबसे घिटोई की ख्याति हुई है तबसे लोगों का हूजूम उमड़ता है।

वैसे बन्ने के यहाँ बसने से पहले, प्रतिदिन उत्सव सा हुआ करता था, दिन-रात कीर्तनों, रामायण की धुनों पर हवायें भी थिरकते हुये ठंडी होकर बहा करती थी। पर जबसे बन्ने ने कब्जा जमाया है तबसे यहाँ के उत्सवों पर जैसे ग्रहण लग गया है। महिलायें ढारा पूजी के लिये आती हैं, तो नशे में झूमते नशैड़ियों की लाल डोरे वाली आँखों की दहशत से ही भाग जाया करती हैं। नशैड़ियों के इस जमावड़े के कारण ये हँसता खेलता स्थान उदास खड़ा रहता है।

घिटोई ही जितनी सेवादारी कर सकती है करती है लेकिन उसके लिये भी अब यहाँ पहले सी सहजता नहीं रही थी पर नवरात्रि की रौनक अब भी पहले सी ही है बल्कि पहले से ज्यादा है। घिटोई लौंग और जल का आहार लेकर पूरे नौ दिन लहर माई की आराधना करती है और अन्तिम दिन जब ढोल ताशों से जवारे सिराने का समय आता है तब उसके भीतर लहर माई आकर विराज जाती हैं। इस समय दूर-दूर के

देहातों से फरियादी अपनी समस्याओं के समाधान की आशा लिये भागे चले आते हैं।

लेकिन आज ना तो नवरात्रि की अष्टमी थी, ना कोई मेला पर फिर भी चार गाँव के भक्त इस छोटी सी मढ़िया में जमा हैं। चारों तरफ माई के गीत, भजन, ढोलक मंजीरे करतालें बज रहीं हैं। सुगन्धित धूप की धूनी से खेत के खेत महक उठे हैं, नारियल, बताशों की टोकरियाँ भर गईं हैं। मन्दिर के चारों तरफ सिन्दूर से रंगे माथे लिये महिलायें माई के परिक्रमा कर रहीं हैं, कुछ पेट के बल हाथ जोड़े घसिटती हुईं लोट रही हैं। मन्दिर के मुख्य द्वार पर घिटोई बाल छुटकाये झूम रही है। लाल साड़ी, सैन्दूर से रंगा चेहरा हाथों में चूड़ियाँ पहने ढपले की थाप पर बेसुध सी नाच रही है–

*हूँ... हूँ... हूँ... हूँ... डम... डमाडम... डमडमाडम... डमा...*

घिटोई के भीतर देवी का आह्वान अपने उत्कर्ष पर है। गाँवभर के लोग, लुगाईयाँ नारियल, बताशा, धूपादि पूजनसामग्री लिये तेज कदमों से माई की मढ़िया की तरफ चले जा रहे हैं। हरदेई भी हाथ में थाल लिये भागी जा रही है। राधिका पानी का मटका कमर में दबाये चली आ रही थी।

*जिज्जी... ओ हरदेई जिज्जी.... सुनो तो... ये पुजापा लिये कहाँ को दौड़ी जाती हो, गाँव में ऐसी गदबद मची है जैसे कोई मेला लगा हो?*

घूँघट से एक आँख निकालते हुए हरदेई बोली– *मढ़िया में लहरमाई खेल परी हैं, वहीं फरियाद डारने जाती हूँ।*

*हैं??? अभी तो नौदेवियों में बखत है?*

*है तो सही लेकिन महामाई की लीला कौन जाने, ना जाने कौनऊ गलती सुधारने आई हैं या फिर ततोस दिखाने। तुझे चलना है तो चलके दर्शन कर ले, शायद इस बार तेरी सूखी कूँख पर उनकी कृपा दृष्टि पड़ जाये।*

*का करूँ हर बार तो जाती हूँ, ना जाने हमाये लिये तो कहाँ मैया भुलानी हैं राधिका ने अनमनी होकर कहा...*

*अरे चल, दर्शन करने से पाप ही कटेंगे, कौन अपना कुछ घटा जाता है, रामजाने कोई बिपत आने वाली हो तो दरशनन से टर जाये.. हरदेई बोली।*

राधिका ने हामी भरी- *बात तो ठीक है, हम भी चलते हैं... इनसें पूछ लूँ बस।*

राधिका ने गगरी घिनौची में रखी और फुर्ती में भीतर जाकर माधो को कहा- *चलो चलते हो का लहर माई के दरीखानें? दरबार लगा है।*

माधो राधिका की बात सुनकर ऐसे बिलबिला के चीखा जैसे किसी ने पुराने जख्म पर कटार चला दी हो- *का कहा?*

*राधिका झल्लाते हुये...का कहा का, इतने बरस बीत गये, एक बार नहीं गये कि चलो फरियाद डाल आयें, शायद येही कारन अब तक आस नहीं जगी, अबकि ना मानूँगी चलना ही पड़ेगा तुम्हें महारानी बिराजी हैं मढ़िया में!*

*...ना हो पूरी आस, पर मैं ना जाऊँगा तुझसे भी हजार बार कहा, उस घिटोई से दूर रहा कर, जे सब स्वांग मुझे बिल्कुल नई सुहाते, अरे नाटक रचती है बो....।*

*राधिका भी सुर ऊँचा कर बोली - जे ज्ञान कबसे हो गया? जब तक घिटोई का ब्याह ना हुआ था तब तो खुद भी पैढें भर-भर उसी घिटोई के चरणों में पड़ जाते थे? अब जे सब स्वांग हो जाता है।*

*माधो तल्ख होकर... कहना का चाहती है, मेरी कौन वो सगी लगती थी जो जाता था। महामाई में भक्ति थी सो जाता था लेकिन अब जबसे उस बन्ने से करम गाँठ जोरी है तबसे जी उतर गया है। वो हरामी कहीं का अब खुद को महामाई का*

*ठेकेदार कहता फिरता है। अब बता ठेकेदार के पास जाऊँ कि महामाई के पास?*

*आज बता ही दो, इसमें घिटोई की का गलती...?*

*काहे घिटोई में देवी सदा बिराजी रहती हैं का और तू माने ना माने घिटोई ही है जो उसे सह देती है।*

*राधिका ने बीच में बात काटते हुये... बस... बस करो, उसका ब्याह हुआ तो मन में महामाई की मानता पूजता घट गई का? और फिर कौन उसको मेहर में थापने को कहती हूँ, ना ही उस घिटोई के पाँव पलोटने जाना है, हम तो उसमें बिराजी लहर माई के दरबार जाते हैं। अब मइया ने उसी का पिंजरा चुना तो उसमें किसका दोष? हा...हा... बिनती करती हूँ अब ज्यादा हठ ना करो जब महामाई बिदा हो जायें तो सूरत ना देखना घिटोई की।*

माधो ने अब अधिक कुछ कहना ठीक ना समझा, ठंडी साँस भरते हुये थोड़ा रुककर कहा–

*हूँ... सही है महामाई से का बैर, पर हर बरस तू तो जाती है फरियाद लेके लेकिन का परिणाम हुआ?*

*राधिका ने अनुनय करते हुये... ऐसा न कहो, शायद महामाई ई बार सुन लें... इतने साल से तुम तो कभी ना गये शायद इसलिये महामाई रूठी हैं। अबकि चलो, ना जाने क्यों जी कहता है कि ई बार महामाई का आशीष मिल ही जायेगा। और देखो तो पिछले साल हरदेई को कहा था कि इस बार कूँख हरी होगी, अब साल भीतर ओली में लड़का खेल रहा है। सुनो ना कौन देवी के बाड़े जाने में कुछ लगता है, मेरे मन की तसल्ली के लिये ही चले चलो, तुम्हारे हाथ जोरती हूँ। हा... हा... बिनती करती हूँ!*

*अरे अरे! तो मैं कौन तुझे बाँधे हूँ, जा जैसी तेरी इच्छा कर*
*मुझे क्यों जबरा कर रही है, मेरा मन नहीं मानता।*

राधिका आँखों में तरईयाँ भरे धोती साफ करने बैठ गई। माधो उसके चेहरे पर जगमगाती उम्मीद को उसकी एक ना में मरते नहीं देख सका और बोला–

*ठीक है! अब मुँह उरमा के ना बैठ, चल... तो चलता हूँ।*
*बात तो ठीक है तेरी... देवी के दरशनन में का बुराई, चल चलते हैं!*

माधो अनमना सा पाँवों को घसीटता गुरगुराता धीरे–धीरे चल रहा था, और राधिका सरपट लम्बी डगें भरती हुई आगे चली जा रही थी। जैसे ही राधिका कहती जल्दी चलो, तो अपने डगों को लम्बा करने का स्वांग करता हुआ कहता–

*तू चल, मैं चल तो रहा हूँ, अब क्या गदबद लगा दूँ!*
*जब बोलोगे ऊसर ही बोलोगे, चाहे जितने टरक–टरक के चलो आज मढ़िया तो जायेंगे ही!*

माधो और राधिका दोनों अपने–अपने मन के गति के अनुसार पाँवों को घसीटते हुए लहर माई के दरीखाने पहुँच गये।

छोटी, ऊँची पताकाओं से सारा मन्दिर तुपा पड़ा था। सैन्दुर की टिपकियों से दीवारों ने अपने वास्तविक चेहरे भी खो दिये थे। भक्तों का जमघट ढोलक की थापों पर अपने फेफड़े उड़ेलते हुये कीर्तन गा रहा था। हवा धूप की सुगन्ध लपेटे भारी हुई चल रही थी। लोहे की सांगों से छेदे गये चबूतरे पर सिन्दूर बिखरा पड़ा था, महामाई का विग्रह भोग से अटा पड़ा था। भोग पर मक्खियाँ, चींटीयाँ, चूहे, कुत्ते, बिल्ली आदि प्रकृति पुत्र–पुत्रियाँ समय–समय पर आँख बचाकर टूटे पड़ रहे थे हालाँकि इनमें चीटियों और मक्खियों की प्रजातियाँ कुछ बेशर्म सी थीं सबके सामने चुनौती देती हुई महामाई के भोग पर डेरा जमाये बैठी थीं।

जैसे ही कोई पास आता तो गुर्राकर भनन-भनन करतीं और फिर वहीं टिक जातीं। घिटोई महामाई की शिला पर बैठी हुआ-हुआ कर रही थी। उसके दाईं तरफ बन्ने, बाईं तरफ सौतेला बेटा और सिर पर दूसरा सौतेला बेटा खड़ा था।

फरियादियों का जमघट लगा था। सबके हाथों में चढ़ावे से भरी थालियाँ थीं। कोई गेहूँ भर लाया था तो कोई अपने कछुवारों की हरी सब्जी, कुछ दूध घी ले आए थे। इस सब के साथ नारियल, बताशा, ओढ़नी, धोतियाँ, सैन्दुर, चूड़ियाँ लिये बैठे थे। कुछ अण्डा, नींबू, और शराब के पैकेट भी अपनी झोलियों में लुका छुपाकर बैठे थे। सबके मुखों पर ऐसा भय बिलस रहा था जैसे आज उनकी समस्याओं का हल ना हुआ तो वे जी ना सकेंगे। एक-एक करके सबका नम्बर आ रहा था।

जैसे ही एक भक्त अपना पूजापा लिये आगे बढ़ता वो महामाई तक पहुँचने से पहले बन्ने के हाथ चढ़ जाता और वो फरियादी डरते-डरते घिटोई के सामने जाता और आँखें धरती में गढ़ाये अपने लिये वरदान और निदान की याचनायें करता, ये याचना इतनी तीव्र होती थी कि याचक बोलते-बोलते रो पड़ता और अपना माथा घिटोई के चरणों में पटकने लगता।

घिटोई के सामने कुछ भूत, चुड़ैल की बाधाओं से ग्रसित महिलायें बाल छुटकाये हाथ-पाँव पटकते हुये अपने सिरों को वृत्ताकार नचा रहीं थीं। कुछ बेतहाशा भीड़भेदी हँसी हँस रहीं थीं। नम्बर एक बीस साल की युवती का चल रहा था-

*कौन है तू?*
*हूँ... हूँ... नई बताऊँगी!*
*का चाहिये तुझे?*
*भीतर से हुंकारे भरती हुई बाधा कहती, अबकि लाल चुनरिया लेके जाऊँगी... इसने मेरे गहने गुरिये नहीं दिये... मेरे गहने दे तब जाऊँगी!*

बन्ने ने युवक से कहा क्यों सही है ना, तेरी पहली लुगाई का प्रवेश है, बहुत कर्री है आसानी से ना जायेगी। अब बोल, चढ़ावा दोगुना लगेगा! युवक घिटोई के पैरों में सिर धरकर बोला–

*जो होगा सब दूँगा... बस जे बाधा मिटाओ माई... जे बाधा मिटाओ!*

घिटोई ने एक हुंकार भरी और बोली–

*हूँ...हूँ....बोल इस देह को छोड़ कैसे जायेगी...बोल?*

*हा... हा... हा... बिल्कुल ना छोड़ूँगी इस शरीर को*

*क्या चाहिए बोल?*

*अण्डा दो, दारू दो! हूँ....हूँ....*

तभी बन्ने ने सामने रखे धधकते हवन कुण्ड में मुट्ठीभर लोबान गुग्गल डाला और सटाक से एक हरी छड़िया उसकी पीठ पर लहराई–

*अरे दईया! ना जाऊँगी... बिल्कुल ना जाऊँगी....*

एक नींबू खड़ा काटकर उसके माथे पर निचोड़ा गया और जोरदार सटाक... सटाक...आठ दस छड़ियाँ सारी देह पर लहराई गई, बालों को मुट्ठी में भींचकर पूछा–

*बोल जायेगी कि ना जायेगी...*
*बाधा साँसे भरती हुई बोली– हाँ जाऊँगी... जाऊँगी...*
*सटाक... कब जायेगी?*
*अभी....*
*तो जा... सटाक!*

और बाधा ग्रसित युवती बेसुध हुई धरती पर लोट गई, हाथ बाँधे आँखें निकाले देखती हुई भीड़ जोर से बोल उठी– *लहर माई की जय...*

इस दृश्य को देख कुछ लोग तो रो-रोकर धरती में लोट गये...

*माई! जैसे इनके बिघन काटे हमारे भी काटो!*

इस भक्ति के स्वांग से भरी बखरी में सबकी अभिलाषायें पृथक् थीं किन्तु विश्वास एक सा था... वो था... अपनी इच्छा की पूर्णता का विश्वास... और हो भी क्यों ना वरदानों, निदानों का स्वांग ही तो संसार है। इन्हीं के चक्र में उलझते-सुलझते मनुष्य मरते जीते हैं। इनके ही फेर में जीवन के जीवन सरक जाते हैं।

राधिका की भी बारी आ गई। राधिका थाली में अपनी बखरी में लगे भटा, टमाटर, नारियल, सैन्दुर, दिया-बत्ती के साथ-साथ कुछ सिक्के ले आई थी। वो जैसे ही पूजन थाल लिये आगे बढ़ी बन्ने ने थाल छीन लिया और हँसी उड़ाते हुए फुसफुसाया- *क्यों रे माधो! तू तो बड़ा नास्तिक हुआ था... आज कैसे नाक रगड़ते चला आया!*

माधो ने उसे तिरछी निगाह से देखा और दाँत किटकिटाते हुये जवाब देने को हुआ तो राधिका ने उसकी कलाई पकड़ी और आँखों से ही अनुनय कर रोक लिया। राधिका आगे हाथ जोड़े घिटोई के सामने जा बैठी, माधो पीछे खड़ा रहा। पीछे से घिटोई के सौत के बेटे ने कांधे पर एक लाठी रख दी। घिटोई की साँसें तेज चलने लगीं थीं, मुख की भंगिमायें सौम्य से रौद्र हो चलीं।

राधिका घिटोई के चरणों में माथा टेकते हुए बोली- *माई तुमसे क्या लुका छिपा है, अपनी ई भगत की फिरयाद काट दो।*

घिटोई जोर-जोर से झूमने लगी, हुंकारे भरने लगी, ढपले बजने और तेज हो गये, घिटोई में देवी का आह्वान और तीव्र हो उठा, वो बाल लहराती कूद-कूदकर नाचने लगी, खिलखिलाने लगी, आस-पास बैठे लोग काँपे जा रहे थे...

लहर माई की जय, लहर माई की जय... का घोष और गगनभेदी हो चला, महिलाओं के देवीगीत और तेज हो गये,

*अरे माई के भुवन एक तिरिया रोबे,*
*लट छुटकायें लम्बे केस हो माँ!*
*कै तोरी सास ननद दुख दीन्ही*

*कै तोरे मायके सें हीन हो माँ!*
*ना मोरी सास ननद दुख दीन्ही*
*ना मोरे मायके सें हीन हो माँ*
*घर ही के ससुरा मोसे बाँझ कहत हैं*
*जे दुख सहे ना जायें हो माँ! ........ माई के भुवन....*

हो माँ! के भावों को सुन घिटोई और झूमने लगती और उसे देखकर सबके सुरों में थरथराहट घुल जाती, घिटोई पूरे मन्दिर के प्राँगण में उछल कूद मचाती हूँ... हूँ... हूँ कर उठी, साथ में चीखती, चुनर लूँगी, लाल चूनर लूँगी... मेरा मान काटा है तूने, हूँ... हूँ... हूँ... लाल चुनरिया, लाल चुनरिया!

राधिका ने माधो की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा– *कोई गलती हो गई का, जो हमाई फरियाद पे देवी माई ऐसे खेल उठीं हैं?*

राधिका हाथ जोड़ धरती में लोट गई–

*माई शान्त हो... माई शान्त हो ...तुम्हारी सन्तान हैं हम...*
*गलती हुई तो माफी देओ... माई शान्त हो!*

घिटोई कुछ देर बाद नाचना छोड़ मढ़िया के द्वार पर आकर झूलने लगी हूँ... हूँ... हूँ... जोर-जोर से साँसे लेती बस नागिन सी फुँफकार रही थी।

राधिका ने माधो को फरियाद करने का इशारा किया। माधो हाथ जोड़कर बैठा और बोला– *माई! बक्कुरो... महामाई शान्ति धरो!*

घिटोई हाँफती हुई बोलने लगीं– *तू तो मेरा तिरस्कार करता है फिर यहाँ मेरे दरीखाने में क्यों आया, हट जा यहाँ से!*

माधो विनती करता हुआ बोला–

*नहीं माई... गलती हो गई... अब क्षमा करो... क्षमा करो, अबोध हैं क्षमा... क्षमा... अब से कभी ना होगा मइया... हम पापी अज्ञानी... तुम दयावंत हो माता क्षमा करो!*

राधिका और माधो दोनों उसके चरणों में लोटे जार-जार रो रहे थे।

घिटोई की साँसें अब स्थिर हो चलीं, वाणी सहज हो गई, उसने एक तेज घरघराहट भरे सुर में कहा–

*तेरे पुरखों ने चोला बोला था, जब तू होने वाला था, आज तक चोला नहीं आया... तेरा ब्याह भी हो गया... हरदी लगाकर छोड़ दिया इसीलिये तेरे बाप को मैं ही ले गई... अब तेरा दादा जीते जी नरक भोगता है इसी कारण... तेरी बखरी हरी नहीं होती... इतना कहकर घिटोई फिर से हूँकने लगी...हूँ... हूँ...हूँ...हूँ...।*

*माधो ने लरजती आवाज में कहा – माई! हमें ना पता था, भूल-चूक माफ करो... पुरखों का दंड भोग चुके खूब... अब हम अपनी कुव्वत के हिसाब से मनौती मानता पूरी करेंगे... पुरखों की भूल की सजा पूरे परिवार ने काट ली माता... अब फरियाद सुन लो और जो आदेश करो वो सब करेंगे, बस बखरी हरी कर दो माई, बस बखरी हरी कर दो!*

घिटोई ने झूमते हुए कहा– *तो जा मैं आती हूँ तेरी बखरी में। अष्टमी को बड़ा चढ़ावा लूँगीं, लाल चुनरिया लूँगी, लाल चुनरिया लूँगी....*

इतना कहकर घिटोई बेसुध होकर गिर गई। शाम हो चली थी माधो और राधिका ने मढ़िया की धूनी की राख माथे पर लगाई और चेहरे पर आशीर्वाद की चमक लिये दोनों लौट आये, आज वर्षों बाद लहर माई ने उन्हें आशीष दिया था, मन में विश्वास जगमगा रहा था।

विश्वास भले ही तर्क की कसौटियों को पारकर अपना स्थान बनाता है लेकिन अंधविश्वास इतना बलवान् होता है कि इंसान से लेकर जानवरों में ईश्वर को देखने की ताकत रखता है। विश्वास में शंका की गुंजाईश हो सकती है लेकिन अंधविश्वास में सन्देह जैसा कुछ होता ही नहीं पर फिर भी ये तभी तक ठीक है जब तक किसी की हानि ना करे। अब गाँव के इन विश्वासों को अंधविश्वास कहिये या उनकी मासूमियत लेकिन ये उनके लिये जीवन की आशा होते हैं। यही आशा कई बार

इंसान को इतना मानसिक बल दे देती है कि वह आकाश छूने की हिम्मत भी दिखा सकता है और यही विश्वास का छल कितने जीवनों को नर्क की आग में जला डालता है।

घिटोई के लिये सत्य का मुख भले ही विपरीत था किन्तु माधो, राधिका के लिये तो ये छल का स्वांग, अटूट भक्ति और विश्वास का था उनके मन में आशा के बीज जम उठे थे।

अब राधिका भुनसारे से लहर माई को ढारने पूजने जाती, एक, दो, पाँच जितने भी पैसे होते लहर माई की मढ़िया में चढ़ा आती लेकिन फिर भी छह महीने होने को आये थे। चैत्र से क्वांर की नौदेवी लग गईं थीं लेकिन राधिका की कोख में बीज का कोई निशान तक नहीं उपजा। मन के विश्वास के धागे कुछ ढीले से पड़ चले थे। निराशा ने फिर दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया था। इस बार की नवरात्रि में ना तो मन्दिर गई ना ही घिटोई के दरबार लगने पर अपनी फरियाद लेकर पहुँची।

अबकि तो माधो ने कितनी ही बार कहा– *चल दर्शन तो कर आयें।*

लेकिन राधिका लाल आँखें करते हुए कहती– *अब जब तक लहर माई के दरीखाने ना जाऊँगी जब तक मोरी कूँख हरी नहीं होती।*

जब मनुष्य की आत्मशक्ति विरक्ति की ओर अग्रसर होने लगे तब शायद परीक्षा का अन्तिम चरण आरम्भ होता है। ये घोर निशा की गहनता अब राधिका के हृदय को अपने वशीभूत कर रही थी। माधो ने भी स्वयं को माटी गढ़ने में झोंक दिया था, राधिका भी बस अपने काम से काम रखती, दोनों लगभग मान चुके थे कि अब उनके जीवन में किलकारियों का कलरव नहीं गूँजेगा। पर ईश्वर तो ईश्वर है परीक्षा के बाद परिणाम तो देता ही है।

माधो की आँखों में भी बन्ने और गाँव के उन लफंडरों के ठहाके गूँजते थे जैसे उसके चारों तरफ उस पर तंज कसते दौड़ रहे हों। माधो रोज से दोगुनी मेहनत करता राधिका को अस्पताल भी ले जाने लगा था।

आखिर ब्याह के पाँच साल बाद कितनी मन्नतें, टोने-टोटके, दवाइयाँ, अस्पताल, जाने कौन औषधि थी जो राधिका की गोद की सूखी माटी में सुगन्ध पैदा कर गई। लहरिया का जन्म हुआ, माधो के आँगन में सुख जैसे पैजनियाँ पहनकर छमर-छमर करता आया था। ऐसा लग रहा था जैसे सुख को समेटने के लिये अनन्त आकाश भी छ्योंटा पड़ रहा हो। ढोलक लिये माधो बखरीभर में नाचा-नाचा फिर रहा था-

*मोरी राजरतन सी राकुमारी, चंदन चँवर डुलाऊँ,*
*जो माँगे दूध कचुल्ला, हीरन हार गढ़ाऊँ,*
*मोरी राजरतन सी सोनचिरैया, चंदन चँवर डुलाऊँ*

*साँसे भरते हुये माधो ने बेटी को गोद में उठाया... मेरी इस कुसुम कली को राजकुमारियों सा पालूँगा, इतनी मेहनत करूँगा कि आकाश छिटकी जुदैंया भी माँगेगी तो बदलियों की झोली से खरीद लाऊंगा।*

माधो के इस लाढ़ पर राधिका उपेक्षित सी हँसी और बोली-

*जीवन में अना धना तीन चना नहीं और बात करते हो बिटिया को सोनचिरैया सा पालोगे, फूस तरें राजमहल नहीं बनाये जाते। रोम-रोम कर्जे से डूबा है, पहले कर्जा उतार लो, दो बखत के चूल्हे की जुगाड़ करो और खुद को इस नशे... इतना कहते-कहते ठहर गई।*

स्त्रियाँ प्रायः सत्य को उसकी कटुता के साथ स्वीकार करने का हुनर रखती हैं, सम्भवतः वे इसलिये स्त्रियाँ हैं और संभवतः यही कारण भी होगा कि जीवन के कठोरतम कष्ट भी उन्हीं के हिस्से में आते हैं।

माधो ने आज इस कटुता को बिना किसी भाव के सुना और शायद गुना भी, आज उसे इस सत्य ने तनिक भी चोट नहीं पहुँचाई, बल्कि उसके शब्दों में दृढ़ संकल्प का गौरव, दीप्त हो रहा था। उसने बिटिया को छाती से लगाया और बोला-

*बेटियाँ आँगन में सुगन्ध लेकर आती हैं, चिड़ियों सी चहकती हैं, चमेली सी महकती हैं... और पलाश सा रंग सारे आँगन में बिखेर देती हैं। शायद लक्ष्मी की भी यही परिभाषा होती होगी, सुख देवी धन से सबल भले होती हों पर उसकी सवारी नहीं करतीं। चिन्ता की सब पीड़ायें मौन हो जायेंगी जब ये हँसेगी, जब ये आँगन में दौड़ी फिरेगी, बातें करेगी तो सारी निराशायें सुख का चोला पहन लेंगी, तू देखना हर पीड़ा, हर बेड़ी इसके आने से टूटेगी।*

राधिका बेटी के मुख की ओर देखती तो मन सन्तोष से भर उठता आखिर जिस पल के लिये पत्थरों पर माथे घिसे थे कम से कम उन पत्थरों ने सन्तान की लकीरें तो भाग्य में उकेरीं। अब यही लकीर शायद माधो के लिये नयी राह बन जाये। आशाओं की उम्मीद ही की जा सकती है, बाकी तो समय निर्धारित करता है।

राधिका सुख और संघर्ष के बीच झूल रही थी लेकिन माधो के लिये तो सबकुछ नर्म था, बिल्कुल अकंटक बहती धार की तरह, उसके लिये जीवन की काली रात जैसे बीत गई थी... और जब मन में सुख के पाँवड़े बिछते हैं तो जीवन में कितनी दरारें थीं, ये स्वप्न सा प्रतीत होने लगता हैं... पर जीवन तो चक्र है, यहाँ भी पहिया घूम ही रहा है।

आमतौर गाँव ज्वार में बेटियों के जन्म पर उत्सव मनाने का रिवाज नहीं होता लेकिन बेटी की दसटोन पर माधो ने पूरे गाँव को बुलाया, उसकी छोटी सी बखरी में जहाँ माटी कूरे के अलावा कुछ नहीं होता था वहाँ आज आम की बौरों के बंदनवारे बँधे थे। चाक की घड़-घड़ नहीं ढोलकों की टंकारें गूँज रहीं थीं। माधो राधिका की नोंक-झोंक की जगह पर बधाईयाँ, सोहरें गूँज रहे थे।

*'धिया बिना धरम ना होए, लाल बिन सोहर हो*
*रामा मथुरा में जन्में कन्हैया सो गोकुल में बधाये बाजें हो।'*

इन गीतों की बीच महिलायें बच्ची को गोद में ले कहतीं-

*साक्षात् देवी माई है राधिका, बड़ी मनौतियन के बाद आई है, देवी मइया खूब बगैचा हरो करें।*

राधिका आशीषों को झोली पसारकर माथे पर लगा लेती।

हरदेई ने पूछा- *क्यों री कौन राश (राशि) आई है पुरोहित कक्का सें पूछी की नहीं? बिटिया को नाम का रखेगी?*

राधिका ने देहरी पर बैठे माधो की तरफ देखा और बोली-

*ल अक्षर से निकरी है, और है भी लहर माई का बगैचा तो उन्हीं के नाम पे इसका नाम रखूँगी, लहरिया!*

*हरदेई ने छोर खींचकर धरती के पाँव छूते हुए कहा - जे देखो महामाई को चमत्कार लहर माई के परसाद की राश भी 'ल' से ही निकरी, हे महामाई! जैसो इनको संवारो ऐसई सबको बगैचा खिलाओ।*

लेकिन इसी समाज का दूसरा मुख भी होता है और उसे भी वैसे ही देखना पड़ता है जैसे सुख को देखा जाता है। कुछ ऐसी औरतों का भी जत्था था, जिनके चेहरे पर दोगले भाव दिखाई पड़ते थे। चेहरे पर हँसी और भीतर कुछ और, ये कुछ अनकहा सा बेरुखापन लिये बैठीं आपस में कानाफूसी कर रहीं थीं-

*जिज्जी! देखो तो, खाबे कों तीन चना भी नईंया कुठला में और ये दोनों ऐसे बुब्भ रच रहे हैं, जैसे कुँवर कन्हाई जने हों।*

*दूसरी महिला ने मुँह दबाते हुये... जेई तो होत है, जब घर में बड़े बूढ़े ना हों... मन मरजी के मालिक हैं... अजा है सो वो बेसुध बीमार परो रहत है... होबो ना होबो बराबर है। अपन को का करने लडुआ बताशा लो और अपनी रस्ता नापो।*

इस कानाफूसी के बीच से एक दबी सी हँसी गूँज गई। तभी बड़ी पुरखिन ने प्रवेश किया, बड़ी पुरखिन ऐसी ऐंठी आई थीं कि जैसे माधो के घर पहुँचकर उन्होंने कोई बड़ा एहसान लाद दिया हो। कान के कोने

से धोती झटकते हुये आई और बोलीं- *तूने इतना कहा था, इसलिये आई हूँ माधो, जल्दी जाना है, दिखा दे अपनी बिटिया का मुँह।*

माधो ने पाँव छुए और हाथ जोड़ते हुए कहा - *बड़ी पुरखिन... गरीब की कुठरिया में पहली बार चरण पड़े हैं... एक बार भीतर तक तो चलो।*

बड़ी पुरखिन ने धोती से नाक दबाई और भीतर प्रवेश किया। उनको आया देख, ढोलक की थापें शान्त हो गईं, खटिया बिछा दी गई। उस पर घर की सबसे नई चादर बिछाई गई। बड़ी पुरखिन नाक-मुँह सिकोड़ती बैठ गईं, सबने उनके पाँव छुए और घेरकर बैठ गईं।

राधिका ने पाँव छूकर आशीर्वाद माँगा तो उन्होंने मुँह में पान दबाते हुये तुनककर कहा-

> *क्यों रे माधो! ऐसा जलसा करता है जैसे लला जाये हों बहूरानी ने, हाथ सिकोर के काम करना सीख ले, चैंथी के बार झर जै हैं बिटिया के ब्याओ की तैयारी करत-करत, ऊपर से आजकल के बाल-बच्चन की फरमाईशें पूरी करबो तो आकाश में छेद करें के बराबर है...*
>
> *देखो तो हम औरें तो मरे जा रहे, रचना के ब्याह के लाने एक तो घर नई मिलत है जबकि सबरी माँग पूरी करें के लाने सजे बैठे फिर भी। बिटिया छाती पे ऐसो भार है कि उतरत दरद और चढ़े तो दरद हैई है... कलथे-कलथे फिर रहे बाप और भइया... फिर तुम तो भूखन मरत हो, काहे को जे बाभा रचत फिरत है!*

बड़ी पुरखिन की बातों से गाँवभर की महिलाओं नें सुर में सुर मिलाया-

> *बड़ी पुरखिन! बात तो तुमने खरी कही, घर-घर की जेई तो गाथा है, इस हरदेई की ननद आज तक बैठी है छाती पे... बाप चलो गओ अब भैया मरो जात है... सूख के हर्रा हो गओ घर ढूँढत-ढूँढत।*

हरदेई बेचारी बनकर अपना सारा दुखड़ा कहना चाहती थी लेकिन राधिका के उदास होते मुख की तरफ देखकर कुछ ना बोली।

उन सबकी बातें सुनकर राधिका का मुस्कराता चेहरा छुईमुई के पौधे सा मुरझा गया, अपनी गोद में सोई छोटी सी बिटिया के माथे पर हाथ फिराती माधो की तरफ याचना की दृष्टि से देख रही थी। माधो ने भी बड़ी पुरखिन की बातें सुनी तो उसके भीतर का पिता आक्रोशित हो बाहर की तरफ दौड़ने को था लेकिन जब छाती पर बल रखा हो तो श्वाँसों की गति भी बंध जाती है। उसने धीरे से कहा–

*'अभी तुम सब ही तो गा रहीं थीं कि धिया बिना धरम ना होए' अब उसी धर्म की धिया के लिये ऐसे शब्द बोल रहीं हो... मोरे लाने धन ना सही धरम तो रहेगा!*

राधिका ने माधो का हाथ दबाकर रोका, सबके चेहरों के भाव बदलने लगे थे कि माधो ने बिटिया को गोद में उठाया और बड़ी पुरखिन के पैरों में बैठकर बोला–

*बड़ी पुरखिन! लहर माई के आशीष का फल है तुमाई राई भरी... अब जब वे खुद आके बिराजीं हैं बखरी में तो हमें का फिकर सब वे ही करेंगीं।*

बड़ी पुरखिन ने मुँह सिकोरा और हाथ में पाँच रुपये थमाते हुए बोलीं–

*ठीक है...चलो जैसी तेरी इच्छा हम तो सलाह देन वाले हैं, ...कौन कोऊ की मुसीबत कोऊ कंधन पे ढो लेत है... चलत हैं देर होत है।*

सबने बड़ी पुरखिन के पैर छुए और विदा किया, बड़ी पुरखिन अनमने मन से राधिका के कलेजे में आशीर्वाद के साथ एक फाँस भी खोंस गईं थीं। मन आज के उत्सव को छोड़ भविष्य की शहनाईयों की फिक्र में डूबा जा रहा था।

आँखों की भाषा, पुराण लिख डाला करती हैं, राधिका की निचुड़ती

आँखों को देखकर माधो ने कहा- *ठीक है, दुनिया जहान तो बातें करता ही है।*

राधिका ने माधो का हाथ पकड़ते हुए निरीह आँखों से कहा-

*का हम लोग बिटिया को बड़ा ना कर पायेंगे?*

*माधो उसे सम्हालते हुये... तू गाँवदारी की बातों में ना पड़, जीभ उठाकें पटकें में कौन पइसा लगत... सो जितनी पटको, ...ऐसे सुनके गुनेगी तो मर जायेगी... और बता तो इसी सन्तान के लिये तू हर पथरा पे माथा घिसती फिरती रही है आज इतनी सी बातों से मन मैला करती है। तू काहे चिन्ता करती है... मैं हूँ सब होगा... अपनी लहरिया की हर इच्छा पूरी करूँगा... इतनी भी कसर ना छोड़ूँगा... देखना तू दिन-दूनी-रात चौगुनी मेहनत करूँगा।*

जब मन विचलित हो तब सहानुभूति और साथ के दो शब्द अमृत सा असर करते हैं। राधिका का मन भी माधो की दिलासा से शान्त हो चला था। सन्नाटे से भरे आँगन में अब नन्ही किलकारियाँ शोर करतीं मटकती फिरने लगी थीं, लहरिया के अधटूटे आखरों में रूठना, हँसना, खिलखिलाना, उसकी शैतानियाँ... इस मिट्टी की कुठरिया में सुख के नीड़ स्थापित किया करने लगी थी।

लहरिया के जन्म के साथ माधो के भीतर जैसे किसी चेतना ने भी जन्म ले लिया था। जैसे-जैसे लहरिया बढ़ रही थी उसकी नशे की आदत भी दूर हो रही थी। अब वो चाक पर दोगुनी मेहनत मजदूरी करने लगा था। सबकुछ ऐसे फलने लगा था मानो किसी सूखे वृक्ष पर सहसा ही बसन्त का आगमन हो गया हो।

# मूक वेदना

अतीत के आकाश में उभरे दूध भरे कटोरे से राधिका बातें कर ही रही थी कि दरवाजे पर सांकर बजी। उसने उठकर किवाड़ खोले, माधो सामने था।

*तुम दोनों जल्दी काहे आ गईं... पंगत तो अभी-अभी शुरू हुई... लहरिया भूखी सो गई का?*

राधिका ने कहा- *रोटी खबा दी थी।*

*अरे! गाँव भर ने पूड़ी मिठाई खाई हमाई मौड़ी ने सूखी रोटी, वहीं खबा लाती तो का बिगर जाता।*

*राधिका कुछ कांखते हुए धीरे से बुदबुदाई... किसी के घर का अन्न या तो प्रेम में खाया जाता है या फिर आपत्ति में, प्रेम तो देख ही लिया, और आपत्ति...*

*क्या कहा?* माधो बोला।

राधिका ने गले की नसों पर जोर देते हुए कहा- *अरे कुछ नहीं, हरारत हो आई थी लहरिया को और वहाँ लड़के बच्चों के रंग-बिरंगे चमचमाते कपड़ों को देखकर रो रही थी... इसलिये लेकर आ गई।*

राधिका की रुआँसी आवाज सुनकर माधो ने राधिका की हथेली पकड़ी तो उसकी देह आग सी तप रही थी- *अरे बुखार तो तुझे भी है?*

राधिका ने रुंधते गले से कहा- *लहरिया को चिपकाये परी रही हूँ इसलिये लगता है... मुझे भी बुखार हो आया है।*

माधो ने लहरिया का माथा छुआ- *इसको तो अब नहीं है पर तू इतनी तप रही है... पानी की पट्टी रखता हूँ !*

राधिका ने काँखते हुए कहा-

> *ये तो शरीर का ताप है उतर ही जायेगा, मन के उस ताप का करूँ, जो अपनी फूल सी आत्मा को एक लत्ते के लिये बिलखते देख तप रहा है... जब-जब इसकी आत्मा किलपती है... ऐसा लगता है कलेजे में सैकड़ों बिच्छू जैसे डंक मार गये हों।*

माधो के मटमैले से चेहरे पर भी दर्द की कुछ रेखायें उभर आईं लेकिन उसने घड़े के ठंडे पानी से छींटें मारकर उन्हें सुला दिया।

राधिका लहरिया को छाती से चिपकाये उसका माथा चूमती रही। लहरिया नींद में भी सिसक उठती, बार-बार दंदक जाती। ये दिन गाँवभर के लिये उत्सव के थे लेकिन इस कुम्हार के छपरे में कुम्हलाया सा बचपन पड़ा था जिसे देख माता-पिता किस्मत की लकीरों को कोसते हुए चुपचाप उदास कोनों में सिकुड़े बैठे थे।

मन में प्रश्नों और भावनाओं का आकाश लिये बखरी में पड़ी खटिया पर माधो भी लेट गया। उस झीनी सी छत से चमकते सितारों से भरे आकाश को ताकने लगा। काले-काले आकाश की स्लेट पर जैसे किसी ने सफेद खड़िया से तरह-तरह के चित्र बनाये हों, किसी की अधूरी ख्वाहिशें लिखीं गई हों, वो शायद उसकी अपनी थीं जिन्हें वो दूर से देख तो सकता था बस छूने की हिमाकत नहीं कर सकता था।

रात आधी हो चली थी। बारात का शोर भी थम गया था। बाहर से अब कुत्तों और विभिन्न प्रकार के प्रकृति के जीवों की आवाजें सुनाई देने लगीं थीं। राधिका सो चुकी थी लेकिन माधो की नींद अब तक चाँद से उसके झोपड़े का सफर तय नहीं कर पाई थी। बार-बार करवटें बदल-बदल कर पैसों की जुगत लगा रहा था लेकिन शायद उसके

जीवन की अमावस्या इतनी गहरी थी कि चमचमाते नक्षत्र पिण्डों का प्रकाश भी उस तम को मिटाने में सक्षम नहीं था। प्रश्नवाचक मुद्रा में सप्तर्षि मण्डल भी उसके प्रश्नों को जैसे गूढ़तम बनाने को आज और चमचमा रहा हो।

भोर के चार बजे का मुर्गा बोल गया था। उत्तर का तारा आकाश में लटका माणिक सा झिलमिला रहा था। बड़ी कोठी से पण्डित जी के विवाहमंत्र हल्के सुर सुनाई दे रहे थे। माधो खाट पर उठकर बैठ गया। देर तक बैठा अपने हाथों को देखता रहा मेरे पास दो ही सबसे बड़े धन हैं एक मेरे हाथ और दूसरा साहस। माधो ने अपने साहस और शक्ति को समेटा और छपरे के पिछवाड़े जाकर माटी रौंदने लगा।

सूरज की आभा ने छपरे की छत से राधिका के मुख पर हल्की सी रेख डाली तो वो भी उठ बैठी। बाहर आई तो माधो को पसीने में लथपथ मिट्टी रौंद रहा था।

उसे इस तरह देखकर राधिका ने कहा– *इतने सबेरे से अकेले माटी रौंद रहे हो, मुझे भी उठा दिया होता।*

माधो ने अपनी साँसो के वेग में से कुछ शब्द चुराते हुए कहा– *अरे तुझे रात में बुखार था, आराम कर कहीं बिगड़ गया तो लेने के देने ना पड़ जायें, वैसे भी सरद–गरम मौसम है।*

राधिका ने बाल्टी में पानी उड़ेलकर घड़ा खाली किया, गला कुछ बैठ सा गया था। उसने कंठ में थोड़ी सी शक्ति लगाकर कहा–

> *मन की पीड़ा का बुखार था, भोर होते ही उसे तो जाना ही होता है.... कुहासे पर जब धूप बरसती है तो कुछ नहीं रह जाता... चिन्ता ना करो।*
>
> *फिर कुछ उदासीन मुस्कुराहट के साथ बोली... ऐसा कहना सुनना तो हमारी किस्मतों में जन्म लेने से पहले लिख दिया जाता है... इनकी फिकर लेके परे रहे तो उठ ही ना पायेंगे!*

माधो ने राधिका की इस बात का कोई जवाब नहीं दिया, बात बदलते हुए उसने कहा–

*अबकि बार ज्यादा काम करना है, कुछ पैसे ज्यादा होने चाहिये और चैत का मेला भी आ रहा है। सुना है इस बरस पिरधान जी ने बड़े–बड़े खेल तमासे मंगाये हैं, तो भीड़ तो अच्छी हो ही जाएगी, अगर मेहनत करीं हो गई तो बहुत अच्छा काम बन जायेगा। कुछ हालत भी सम्हल जाएगी लेकिन बस एक ही चिन्ता है आजकल माटी का मोल समझता कौन है, सबको पलास्टिक के खेल–खिलौने ज्यादा भाते हैं, रंग–बिरंगे, टूट–फूट से दूर।*

*राधिका बोली... काम से पहले हिम्मत काए हारते हो, माटी का मोल कोई समझे ना समझे लेकिन माटी अपना मोल सबको समझा ही देती है। चिन्ता ना करो मैं इस बार ऐसे रंग भरूँगी कि मरी पलास्टिक कहीं ना टिक पायेगी हमारी गुड़ियों के आगे।*

माधो राधिका को एकटक देख रहा था। ये वही राधिका है जो रात को बेटी की सिसकियों के आगे टूटी निढाल सी पड़ी थी और सबेरे मुझे हिम्मत देती सिंहनी सी खड़ी है। शायद इसी को स्त्री शक्ति कहते हैं जो टूटकर भी पहाड़ सी मजबूत हुई खड़ी रहती है।

माधो ने हँसते हुए कहा– *तुझे ऐसे देखकर तो मुझे भी हिम्मत बँध रही है। अब तो इस बार ऐसा काम करूँगा कि लोग माछीयों से भिनभिनायेंगे हमारे पुतरा–पुतरियों पे, तू बस देखती जा।*

राधिका पति की हिम्मत देख मुस्कुराई और कमर में घड़े दबाये पानी के लिये निकल गई। मानव को धन की परछाई का भी अंदेशा हो जाये तो वह उसके व्यय का मार्ग पहले गढ़ने लगता है।

लहरिया का नीला लहँगा, राधिका के कलेजे में किसी चाक के घाव की तरह रिस रहा था–

*इस बार चाहे खाने को बैठी रहूँ लेकिन अपनी बिटिया की इच्छा को माटी नहीं होने दूँगी... हम खुद चिथड़े पहनेंगे सालभर लेकिन अब और ना रोयेगी हमाई लहरिया... उसे वो काँच जड़ा लत्ता छूने के लिये ऐसा दुत्कारा जैसे उसमें आकाश सें टोर के सितारे टाँके हों जो मौड़ी की तनक-तनक से हांथन के छुबें भर से टूटकर बिला जाते। बहुत हो गई अब और किलपना नईं होन देने।*

पर कुछ ही पल में फटी छत भी उसके सामने आकर खड़ी हो गई, ...पर छपरा भी ऐसो टूटो है कि अब ठीक ना भओ तो चौमासे में लेने के देने पड़ जै हैं... मरबो हो जै है बिल्कुल। दिमाग भन्नानो जात है का करूँ का ना करूँ? सोचो हतो दो चार किलो अरहरा ले लै हैं, बरस की बरस गुजर गई दाल के दर्शन भी नईं भये... अब तो चूल्हो भी हींड़न लगो कि पीरो पानी ही कम से कम भीतन पर छिटक जाये पर करूँ कैसे कछु समझ नहीं आता? जो भी है जान मार के काम करूँगी। इनसे भी कह दूँगी ज्यादा भलमनसाहत ना दिखायें, बड़े दयावंत बन जात हैं, और बड़ी पुरखिन तो रत्तीभर को नहीं छोड़तीं माटी के धेला भर को पैसा भी वसूल लेती हैं। फिर हम काहे धर्मात्मा बने फिरें इनसे कहूँगी कि अपने बासनन को भी बाजार भाव लगायें।

मन की प्रश्नोत्तरी में डूबते उबरते राधिका कुएँ पर पहुँची तो घिटोई पान चबाती, बड़ी पुरखिन के यहाँ हुई बातों में चूना-कत्था लगाकर पनिहारिनों के झुण्ड में परोसने में लगी थी। राधिका को आते देख सब एकदम चुप हो रहे, तभी घिटोई बोली-

*ओ री मैं ना कहती थी, अपनी राधिका बड़ी हिम्मतन है... इत्ती छोटी-मोटी बातें कौन उसे लगती हैं... देखो तो आँखें कैसी बताशा जैसी फूल गईं हैं बेचारी की!*

राधिका ने घिटोई को ऊपर से नीचे तक घूरा और बोली-

*जिज्जी! हिम्मती हूँ या ना हूँ पर अपनी बखरी... अपनो साज*

*करबो खूब जानत हों। ऐड़ी उटका के ऊपर उठबे की हिम्मत नई करत... अपनी कुठरिया में ही अपनी इच्छायें कैद रखती हूँ... कोऊ की ड्यौढ़ी पे डमरू बजाने नहीं जाती... लेकिन तुम तो ब्याह के चार चूना जब तक गा ना लै हो तुम्हाओ पेट पिरात रैहै।*

*घिटोई ने मुँह उमेठते हुये कहा... अरी, मैं काहे के चार चूना कहती हूँ, तेरा मन खराब है सो सब एक से लगते हैं तुझे मैंने कब कहा कि तू ऐड़ी उचकाके ऊपर उठती है... इंसान का मगज ठिकाने ना हो तो भली कहो बुरी लगती है...*

*जा तो तू पानी भर ले और दो चार गगरा अपने ऊपर से ढार लेना ताकि मगज जुड़ा जाये। ऐसई तू कल सुना के चल दी थी, मैंने कहा चल जाने दो, पर आज भी ऐसा दिमाग दिखाती है, ...जैसे बड़ी जैजात की मालकिन हो, कौन बात का घमंड है री तुझे तेरे तैसे पचहत्तरों को ठिकाने लगा दूँ मैं।*

राधिका ने घिटोई को तरेरते हुए अपने क्रोध को रस्सी पर उड़ेल दिया, झटपट गगरों में पानी भरा और सर्राती निकल गई।

*ऊँह...ऐंठ तो देखो इसकी, ऐसी है कि का कहों, मैं तो कल इसके सामने खड़े हो इसके ही पक्ष में बड़ी पुरखिन से जिरह कर रही थी और इसको देखो आज कैसी बातें कर गई। है तो माटी गोड़ने वाली बराबरी महलों से करती है।*

*मौड़ी ना हुई कौनऊ देवी हो गई जो बो कहे सो करना है। नौखी इसी को बिटिया हुई है जैसे... मोरे छज्जन को आये दिन मारती–पीटती है पर मैं कुछ नहीं कहती क्योंकि उसको देख छाती पिघल आती है मेरी... पर महतारी के ठनगन देखो तो गुस्सा लगने लगी अब तो।*

पनिहारिनों ने घिटोई के कांधे पर हाथ फेरते हुए कहा–

*अरी ठीक है, काहे को इतना बरबराती है... मन दुखा है उसका सो कह गई... तू काहे अपने कलेजे पर पथरा धरती है। आजकल की लुगाईयों का तो ये ही है कि लोग चले मोहे हूमस लागी... अब मड़ैया उचक के महल के कंगूरा तो नईं छू सकतीं... चाहे जितना गला फाड़ ले फिर तू काहे मुँह जलाती है।*

घिटोई ने अपनी कमर से बीड़ी का बंडल निकाला और साँसे भरती हुई तम्बाकू फूँकती पाटपर पाँव पटककर बैठ गई–

*अरी बताओ तो भलाई का जमाना नहीं, इसको कितना मानती हूँ। अपने कलेजे के टूंका तक गिनवा देती हूँ पर फिर भी आज कैसा सुना गई... एक-एक शबद ऐसा लगा कि छाती पे साँप लोटते हैं साँप।*

धीरे-धीरे सब पनिहारिनें फुसफुसाते हुए निकल गईं लेकिन घिटोई ऐसी बिलबिलाती बैठी रही जैसे कोई टोंगस की खुजली चिपका गया हो। राधिका माथे पर बल लिये घर पहुँची तो माधो मिट्टी पर हाथ चलाता पुतरियाँ गढ़ने बैठ गया था–

*आ गई तू! देख तो... इस बार ऐसी डिजान बनाऊँगा का कहती है?*

राधिका ने घड़ा घिनौची में रखा पास आकर बोली–

*आहा...! सही में बड़ी ही जँचती है, इस बार दुल्हन के जैसे कपड़ों वाले रंग रंगेगे, दूल्हा-दुल्हन की जोड़ी, बहुतई अच्छी लगेगी। मेरी तो आँखों में तैर गई बिल्कुल।*

*बो सब तो ठीक है पर समय लगेगा बनाने में और अपने पास इतना पईसा भी नहीं कि इतना रंग-रोगन माटी ले सकें, जो भी है सो बो तो नांज पानी में चला जायेगा, तो कैसे होगा।*

*हो जायेगा इस बार बड़ी पुरखिन से बजार के दाम पर*

*बासनन के पइसा लेना। जब देखो तब दस रुपल्ली पकरा देती हैं। आजकल एक गगरी पचास-पचास में बिकती है।*

माधो ने कुछ व्यंग्य मिली हँसी आँखों में घोलकर राधिका की तरफ देखा और बोला-

*तूने कह दिया और हो गया, सपने देख ले, ना नौ मन तेल होने ना राधा नाचने।*

*राधिका मिट्टी पर हाथ पटकते हुये... कभऊं-कभऊं लगत है बड़े सहर में जाके बस जायें कम से कम काम की बकत तो हो है। यहाँ तो सूखी रोटी कमायें में ही प्रान निकले जात हैं। ऊपर से छत ने भी आँखें तरेर रखीं हैं कि इस बार आर करो नहीं तो हम तुम्हें पार लगा दें हैं।*

*माधो भी ठहाका मारकर हँस दिया... सही कहती है, कहाँ से का करें कुछ नहीं सूझता पर एक बात सो है सहर में अपने खरच हैं... वहाँ कौन माटी कूरा के बासनन को मोल है... फिरिज को जूड़ो-जूड़ो पानी पीयत हैं। बाकी तसला, खपरियाँ जोर के का कर हैं बो लोग... यहाँ तो कम से कम फटी चिथी सही छत तो अपनी है... चूल्हो अपनो है... अब भले रूखी रोटी सिकती हों।*

*हम्मम....राधिका ने लम्बी साँस ली, जरूरतें मुँह बाये खड़ी हैं कि आओ हमें भक्ष्य दो और इस मिट्टी की मड़ैया में दो कनूके भी नहीं। क्या कहें इनसे कि यहाँ केवल ख्वाहिशें पकती हैं और बूढ़ी होकर दम तोड़ देती हैं, उनके स्वयंवर कभी नहीं हुआ करते।*

खैर आवश्यकतायें नग्न होकर कितने भी वीभत्स नृत्य करें अथवा सुखद उत्कर्ष की योजनायें गढ़ लें किन्तु जीवन अपनी रेखागणित स्वयं ही लिखता है।

# पूर्णिमा सी आस

मनुष्य का जब तक माटी से प्रेम रहता है तो माटी भी उसे जीवन की आस दिये रहती है। माधो और राधिका ने पूरे सप्ताह ना दिन देखा ना रात, बोरी भर माटी से दुल्हनों के जोड़े वाली पुतरियाँ गढ़ डालीं।

रात का आधा पहर था। पूरणमासी का पूर्ण चन्द्रमा पूरे रुआब से आकाश में बैठा जैसे तारों को बिछाकर चौसर खेल रहा था। सितारे हीरे की कनी से चमक रहे थे। जुगुनुओं के झुण्ड ऐसे झिलमिला रहे थे मानों तारों के साथ स्पर्धा कर रहे हों, आकाशगंगायें इठलाती सी बहती प्रतीत हो रहीं थीं। चाँदनी ने जैसे माधो की मदद के लिये अपना दूधिया आँचल और पसार दिया था ।

राधिका की आँख खुली तो देखा माधो अपनी खटिया पर नहीं था। उसने छपरे के चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई तो वह कहीं ना दिखा। छाती से चिपकी लहरिया को धीरे से अलग करने की कोशिश की तो उसने आँचल और कसके भींच लिया राधिका ने उसकी मुट्ठियों में दबा छोर धीरे से निकाला, माथा चूमा और उठ बैठी।

महतारी है तो केवल ममता लिये तो पड़ी नहीं रह सकती रोज की जरूरतें उससे पहले कसमसा के उठ जाया करती हैं। जिरह करती हैं, ममता से झगड़ा करती हैं! फिर झटककर मोह से दूर उसी माटी में ले जाती हैं जो उनके पेट में लबलबा आई भूख को खा सके।

राधिका ने बखरी में आकर देखा तो माधो अपने औजार लिये पुतरियाँ

तराशते हुये देख– *सबेरे कर लेते, आधी रात में काहे लिये बैठे हो, ढँग से कुछ दिखाई भी न देत हो है।*

माधो हँसा और बोला– *कारीगर हूँ और कारीगरों के हाथों में, मस्तिष्क में सब जगह आँखें होती हैं, एक–एक उंगली प्रकाश का काम करती है, पूरणमासी नहीं अमावस भी होती तो भी ये हाथ ऐसे ही सुघढ़ता से चल रहे होते, बिल्कुल वैसे ही जैसे तू अंधेरे में अपनी मड़ैया के अरवे में रखी छोटी सी काजल की डिबिया भी उठा लेती है।*

*राधिका हँसते हुये... हूँ...बो तो सही बात है पर मुझे भी जगा लेते तो दो से चार हाथ हो जाते।*

*....लहरिया तो ठीक है ना अब, आज आठवाँ दिन है वो कमबखत नीला लहँगा...नई बिसरता उसे, मौड़ी रो–रो आधी हुई जाती है।*

*का करूँ कैसे समझाऊँ कुछ समझ नहीं आता। ऐसी हठ तो कभी ना की थी... का कह दूँ कि कोई नहीं है जो उसके लिये कोई लहर–पटोरे लेकर आयेगा और कहेगा कि बेटा, जे ले अब और ना रोना! रात रो–रो ऐसा घर भरा था कि अब तक हिल्कियाँ नहीं छूटी हैं... कहते–कहते राधिका के गले में खिरांचें उभर आईं! जे सब छोड़ो जे बताओ... कितनी बना ली हैं पुतरियाँ... माटी तो और दिखती नहीं?*

*....जितनी माटी थी उतनी बन गई हैं, और माटी लेने खदनिया गया था तो कहते थे अभी माटी ना मिल पायेगी। पहले पइसा धरो, अब बखत है नहीं, पइसा के नाम पे दमड़ी नहीं। अब कैसे माटी मिले? कैसे का हो? मेरा तो दिमाग भन्नाया जाता है।*

*सोचता था सौ–पचास पुतरियाँ बन जातीं। कुछ बासन भाँड़े बना लेते तो चार दिन का मेला अच्छे से हो जाता अगर कुछ*

*बचता–खुचता तो बड़े बजार में भी बेंच आता पर बड़ी पुरखिन का मिजाज ही बिगर गया। अब ऐसे ऐंठ निकाल रही हैं अपनी।*

*राधिका ने कहा.. अभी जितनी बनी हैं उन्हीं को बेचना तो आकाश में थिगरिया लगाने से कम है का!*

*...अब चाहे आकाश में थिगरिया लगाने सा हो या टाट बिछाने सा, बनाना अपना काम है सो कर रहे। मैं तो राम भरोसे हूँ फिर भी माटी मिल जाती तो सब काम सकिल जाते।*

राधिका के नर्म माथे पर कुछ मोटे त्रिपुण्ड उभर आये लेकिन सुर को संकुचित कर बोली–

*ढार–ढार के कहने की का जरूरत है जो है साफ कहो कि का चाहते हो का करूँ? बिटिया को लिबा जाऊँ चरणों में डालकर नाक रगडूँ कि खलरिया उधरवा लूँ, जो कहो सो कर लूँ, गलती तो हो गई वो भी बस इतनी कि बिटिया की ढाल बन रही।*

माधो ने हाथ रोककर उसे देखा फिर कहा–

*मैंने ऐसा कब कहा अपने मन से कुछ भी बिचारती है। अरे ठीक है ना देने दे माटी, जितना है उतने में ही करेंगे और बिटिया लहँगा ना पहरेगी तो बड़ी ना होगी का, छपरा इस बरस ना सुधरा तो गंगाजी की धार तो नहीं बरसनी जो बह जायेंगे, ना ही सक्कर हैं कि घुर जायेंगे। ईसुर ने चोंच दी है तो चुन देगा। हाथ चलाना अपना काम बाकी उनका।*

*राधिका बुदबुदाई... जब कुछ होगा ही नहीं तो हाथ का दीवारों पे मारेंगे।*

*का कहा? क्या गुलर–गुलर कर रही है साफ बोल ना?*

राधिका झटके से उठी और 'कुछ नहीं' बोलकर भीतर चली गई। माधो

देर तक दीवार से टिका कैसे, क्या की जुगत लगाता बैठा रहा। कभी मिट्टी को ताकता कभी अपनी उंगलियों को रगड़ता, विवशताओं को घिसने के जब कोई औजार नहीं रह जाते तो यही बेधार शस्त्र होते हैं, जिनसे उन्हें रेतने के असफल प्रयास किये जाते हैं। रात घनी होकर झरने लगी थी। माधो की उंगलियाँ ठहरती, चलतीं कभी चिन्ता में डूब जातीं कभी कर्म के अनुबन्ध में बँधी दौड़ने लगतीं।

भोर की मिलन वेला के चिह्न आकाश में अवतरित होने लगे थे। चन्द्रमा डूब चुका था.... सोने ने पिघलकर सूर्य की अगवाई के लिये चमचमाते पाँवड़े बिछा दिये थे... हवायें इत्र छिड़कती डोलने लगीं, चिड़ियों ने सुहावने सुर छेड़ दिये थे, गौरैयाँ, कोयलें नाचती गाती पेड़ों की इस डाल से उस डाल पर कूदतीं फिरने लगी थीं। मुर्गे-मुर्गियाँ कूकड़कूँ करते सबको जगाते फिर रहे थे।

*रात भर बैठे रहे? राधिका ने उठते हुये पूछा।*

*हाँ सोचा जितना काम है निपटा लूँ... तो आज फिर जल्दी खदनिया चला जाऊँगा... शायद कुछ काम बन जाये।*

*हूँ... अब जाओ कहीं लहरिया उठके यहाँ को आ गई तो फिर जे भी ना रहने देगी। जाओ अगारे चले जाओ।*

माधो उठकर कुल्ला करने लगा, राधिका पानी भरने के मटके माँजने बैठ गई। लहरिया ने कुनमुनाकर यहाँ-वहाँ हाथ पटके तो अम्मा कहीं नहीं थी। खटिया से उठी और आँखों से नींद को रगड़कर झाड़ती हुई बाहर आ गई। सामने कोई ना दिखा तो पीछे की बखरी में जा पहुँची। सामने गुड़ियों की कतारें देख आँखें बड़ी करते हुये चिल्लाई-

*इत्ती सारी पुतरियाँ!*

*लो हो गओ खेल, लुक गई गुड़ियाँ, देख लई भमानी ने अब कैसें समझाउत हो समझाओ! राधिका ने माथे पे हाथ पटकते हुये कहा...*

*कोनऊ बात नहीं, कब तक लुका के रखते देखने ही हतीं, हमाई लहरिया बड़ी सयानी है... सब मान जायेगी।*

लहरिया दौड़कर सीधे गुड़ियों के सामने खड़ी हुई –

*इत्ती सारी गुड़िया..., सब हमाई हैं, आहा... जे तो कित्ती अच्छी हैं...*

*लहरिया गुड़िया उठाने को झुकी कि राधिका ने पकड़कर उसे दूर किया... रूक...रूक...जे तेरी नहीं, तेरे लिये दूसरी लायेंगे।*

राधिका ने लहरिया को उठाया और पनारे की तरफ ले जाने को हुई लेकिन वो छटपटाई और छुटककर सीधे बाबू के कांधे से जा चिपकी–

*बाबू जे सब हमाई हैं...*

माधो ने बस हूँका दिया और कांधे हिलाकर उसे झुला दिया, लहरिया ने बाबा की ठोढ़ी अपनी तरफ घुमाई और आँखें नचाती हुई बोली–

*बाबू! बोलो ना बाबू, जे पुतरियाँ हमाई हैं नां?*

माधो ने लहरिया को कांधों से उतारकर अपनी बाहों में समेटा, माटी से एक छोटा सा टीका उसके गोल गुब्बारे से गालों पर लगाया और चूमते हुए बोला–

*न बेटा! ये तेरे लिये नहीं हैं, तेरे लिये तो इनसे और अच्छी–अच्छी लायेंगे।*

*लहरिया ठुनकते हुए बोली कि नईं बाबू... जेई चइये... इन सब को तला पे ले जाऊँगी... और... और बाबू इनके लिये भी बो नीला बाला लहँगा लाना, और... और.. हार भी! हम सब खूब चमचम करेंगी।*

सुख की लार उसके मुँह को बार–बार गीला कर रही थी, उस नमी को भीतर तक समेटती लहरिया का एक–एक शब्द जैसे उस अकल्पनीय सागर में गोते लगा–लगाकर गले से बाहर आ रहा हो!

*और बाबू जे सबको किसी के साथ खेलने नई दूँगी, बो छज्जन भी अपनी गाड़ी नई देता, और... और... कुट्टी भी हो गया। अब तो बो भी चिढ़क जायेगा, खूब तिनगाऊँगी उसको।*

माधो ने लहरिया को गोद से उतारा और कहा–

*बेटा! इनको नीला लहँगा भी पहरायेंगे और हार भी पर जे सब तेरे साथ खेलने ना जायेंगी। तेरे लिये तो इनसे भी अच्छी बनायेंगे... इतनी बड़ी सी फिर ले जाना तला पे छज्जन को भी दिखाना फिर वो भी तुझे खिलाएगा अपने साथ।*

*नई बाबू! हमें तो जेई बाली पुतरिया चइये और लहँगा और हार और...*

*बस... बस... सब दूँगा पर अभी जा अम्मा के पास, देख तो क्या कह रही सुनकर आ तो जरा!*

बाबू से छिटककर लहरिया दौड़ी–दौड़ी अम्मा के सामने पाँव पटकती हुई ठुनकी– *अम्मा! का है?*

*कुछ तो नहीं?*

लहरिया अम्मा का उत्तर सुनकर फिर बाबू के पास पहुँच गई, वो कुछ कहती उससे पहले माधो उठकर बाहर को चला गया। लहरिया अब अम्मा के पास पहुँचकर कदमताल करती हुई बोली –

*पुतरिया चइये, जेई बाली चइये, बाबू से कहो न हमें चइये, देखो तो बेचारी सब रो रहीं हैं, कहती हैं नीला लहँगा चइये, और हार भी...*

*अच्छा मुझे तो नहीं सुनाई देता, का तेरे कान में आके कहती हैं... राधिका ने हँसते हुये कहा*

*हाँ अम्मा! सच्ची और जे भी कह रही हैं कि लहरिया संग खेलने जाना है।*

राधिका छोर से मुँह दाबकर खिलखिलाकर हँसी और उसकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए बोली–

*अच्छा! बड़ी सयानी है री तू, सब तेरे साथ खेलने के लिये मचल रहीं हैं। देखूँ तो ये माटी की पुतरियाँ कैसे मचलती हैं!*

लहरिया के मुख पर अब हठ के आँसू टपकने लगे थे,

*ऊँहू...ऊहूँ...ऊहूँ....हमें चइये जे सबरी पुतरियाँ चइये।*

माधो देहरी से गाते हुए आया–

*राम जी की गुड़ियाँ, राम जी के द्वारे, हमारी लहरिया सब जानती है, बड़ी होसियार है जे पुतरियाँ तो राम जी की हैं.. तुझे तेरी वाली लेके देंगे।*

लहरिया के अधरुआंसे मुख पर ख्वाहिशों का पूरा आकाश छाया था, एक सप्तर्षि मण्डल नीले लहँगे और गहनों का था, चाँद इन माटी की पुतरियों सा था और इनको सजाने के ख्वाब असंख्य तारों से चमचमा रहे थे। गुड़िया पाने की सारी जुगतें लहरिया कभी आँखों से, कभी हाथों से, कभी धरती पर पटकते पैरों से बुनने में लगी थी लेकिन एक जुगत ना चली। राधिका के हाथों से छुटककर लहरिया अब अपनी मनौती का टोकरा लिये बाहर चबूतरे पर लेटे दद्दा के पास पहुँची, दद्दा के पेट पर चढ़ी और बोली–

*दद्दा, दद्दा! बाबू पुतरिया नई देते, हम उनको नीला बाला लहँगा पहराऊँगी!*

दद्दा खाँसते हुये चिल्लाये–

*अरे दइया! मर गया उतर पहले, कौन सी गुड़िया नई देते, अरे ओ माधो काहे नई देता मौड़ी को पुतरिया कौन एक में सबरी कमाई बही जाती है तेरी।*

*नई दद्दा! हमें तो सब चइये, बो ना... बो ना... रोती हैं कहती हैं, लहरिया के साथ खेलना!*

*अच्छा तुझे सब चइये फिर तो तेरा दद्दा भी ना दिबा पाएगा बेटा! दद्दा की साँसे उखड़ने सी लगीं, जोर-जोर से खाँसते हुए फिर बोले - अरी इसे लेजा यहाँ से पेट पे चढ़ी बैठी है...*

राधिका घूँघट काढ़े दौड़कर आई- तुमई तो बौसयाएं हो बिटिया को, अब भुगतो। उसने लहरिया को उठाया तो हाथ-पाँव चलाती फड़फड़ाने लगी- *नईं जाना! हमें गुड़िया चइये, चइये!*

राधिका ने पनारे पर ले जाकर उसका चेहरा धुलाया और बोली-

*कहा ना तुझसे! ये तेरे लिये नहीं हैं, तेरे लिये इससे और अच्छी बनाएंगे, बो इतनी अच्छी होंगी कि जे वाली पुतरियाँ भी कहेंगी कि हमें भी तेरी वाली गुड़िया चइये।*

*पर अम्मा! अभी तो जे बाली बेचारी रोती हैं, देखो तो कित्ती जोर से रो रहीं?*

*मुझे तो नईं दिख रही रोते, तुझी को दिखती हैं बस!*

लहरिया अब सोच में पड़ गई, अम्मा के इस तर्क का क्या उत्तर दे, कुछ तो देना ही होगा-

*अम्मा! तुम नईं जानतीं जे सब हमाये कान में आके रोती हैं, कहती हैं इनको भी नीला बाला लहँगा चइये, जे नाचेंगी पहर के छम... छम... छम... जैसे बो कोठी पे सब नाचते थे।*

अचरज से आँखें बड़ी करते हुये राधिका बोली- *अच्छा!*

अपने गालों पर दोनों हाथ टिकाकर प्रश्नवाचक मुद्रा में मुँह बनाये लहरिया बोली-

*हाँ अम्मा! सच्ची में ऐसई करती हैं, अब बताओ हम का करें, कैसे पहरायेंगे इनको लहँगा?*

*नीला लहँगा... नीला लहँगा... सुन-सुन के छक गई हूँ। नहीं हैं तेरे महतारी बाप के पास इतने पैसे कि तेरी हठें पूरी करते*

*बैठे रहें। अब तू कुछ ना करेगी चुपचाप रोटी खा और खेल, इनका रोना मैं देख लूँगी, ऐसा चुप कराऊँगी कि कभी तेरे कान पे फटकेंगी भी ना।*

*सुर खींचते हुए लहरिया बोली... नई अम्मा! तुम्हें कुछ समझ नई आता, हम सब जानती हूँ, जे काये रोती हैं।*

राधिका और माधो को लहरिया के बहानों पर अधहँसे से उसे टकटकी लगाये देख रहे थे। देखो तो कितनी बातें बनाने लगी है!

यही मनुहारें, हठें ही तो राधिका, माधो की सूखी उदास जिंदगी का खिलखिलाता प्रकाश हैं, जिसके कारण वे हँस पाते हैं, कुछ देर के लिये ही सही जिंदगी चलाने की जुगत की चिन्ता से मुक्त उन्मुक्त सुख की अनुभूति कर पाते हैं। लहरिया रुआंसी हुई मुँह घुटनों में दबाये दीवार से टिककर रूठकर बैठ गई।

राधिका ने लहरिया को छाती से चिपकाया और बोली–

*ना तेरी पुतरियाँ रोयेगी ना तू, हम सबको अच्छे से समझा देंगे पर पहले तू तो ठुनकना बन्द कर!*

लहरिया अँगूठा मुँह में देकर बोली–

*अम्मा, लेकिन इनको भूख लगी तो?*

*अरी मेरी अम्मा! टुकनिया भर रोटियाँ इनके लिये अलग से बनाऊँगी।*

लहरिया के सारे प्रश्नवार खाली चले गये थे। अब क्या करे? कुछ देर बाद चुपचाप अम्मा की गोद से निकलकर बाबू के बगल में बैठी माटी पर नाचती उंगलियों को गौर से देखती रही। माधो की उंगलियाँ जिस तरह पुतले गढ़ रहीं थीं, लहरिया का मन नई योजना गढ़ रहा था। कुछ देर की चुप्पी के बाद लहरिया के मन के परिन्दों के पंख पुष्ट होकर फड़फड़ाने लगे। हो भी क्यों ना इस उम्र की जिज्ञासाओं से गहरी दोस्ती जो हुआ करती है।

*बाबू! इत्ती छोटी क्यों हैं जे सब?*

माधो ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया- *तू भी इतनी सी ही थी बिल्कुल रूई के गोले सी।*

लहरिया की गोल आँखें चमक उठीं- *हाँ, बाबू! सच्ची में? तो फिर इनको भूख लगती है तो खाना कौन खिलाता है, इनकी अम्मा कहाँ हैं?*

माधो ने कहा- *इनकी अम्मा तो देवी मइया हैं, जे खाना नई खाती अभी।*

*लहरिया ने फिर पूछा कि बाबू! जब हम इत्ती सी थी, तो बोलने कैसे लगी?*

*क्योंकि तू बड़ी हो गई, फिर धीरे-धीरे बोलने लगी।*

*तो हम इत्ते बड़ी कैसे हो गई?*

*देवी मइया ने बड़ा कर दिया सो हो गई तू बड़ी!*

*तो....देखो हम तो चलते भी हैं?*

माधो ने बाल्टी में माटी भरे हाथ धोये और लहरिया को गोद में उठाकर पिता के दुलार के मोती उसके गालों पर बिखेर दिये, उसकी नन्ही नन्ही मुट्ठियों में अपनी उंगलियाँ थमा दीं और उसे जमीन पर सीधा खड़ा करके कहा-

*ऐसे हमनें अपनी उंगलियों से जादू किया और चलना सीख गई मेरी लाडो! कितनी बार चोट भी लगती थी, गिर भी पड़ती थी तब जाकर चलना सीखी है तू।*

*अरे बाह! बाबू! तो फिर अपनी उंगली से जादू करके इनको भी चलना सीखा दो फिर इनके साथ हम पोसंपा.. पोसंपा खेलूँगी, तला पर जाऊँगी।*

माधो ने जोर का ठहाका लगाया और कहा- *न... न... मेरी रानी बिटिया! ये तो माटी की पुतरियाँ हैं... इन्हें तो देवी माई ही चला सकती हैं।*

लहरिया अब अपनी अगली जिज्ञासा बाबू के कंठ में उलझा पाती उससे

पहले माधो ने कहा– *बस बाकी बाद में बताऊँगा अभी बाबू को माटी लेने खदनिया पर जाना है, तू खेल जाके।*

माधो राधिका को आवाज देते हुए निकल गया– *जाता हूँ, देखे रहना इसे, मैं खदनिया जा रहा हूँ।*

> *राधिका पास आकर... कुछ हो तो बताना, ना हो तो चली जाऊँगी... बड़ी पुरखिन के पास हाथ-पाँव जोरूँगी, अब तला में रहके मगर से बैर तो नहीं ले सकते।*

> *अरे ऐसा कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ेगी... आज बड़े मुखिया से बात करूँगा मान जायेंगे। तू फिकिर ना कर, चलता हूँ... लहरिया को देखे रहना... कछु पुतरियाँ गीली हैं तनिक भी छुईं तो भुस्स उड़ेंगी।*

राधिका ने हामी भरी और पीछे अवे के पास जाकर आग ठीक करने लगी इधर लहरिया अनमने मन से गुड़ियों के पास जाकर बैठ गई।, राधिका दूर से ही चिल्लाई–

> *लहरिया एक भी पुतरिया ना छूना, नईं तो अबकि बड़ी पुरखिन के पास छोड़ आऊँगी... फिर लेकर भी ना आऊँगी, और ना तेरा लहँगा आयेगा!*

लहरिया लहँगे का नाम सुनते ही झट से पीछे हटी और चिल्ला के बोली– *नईं छुऊँगी अम्मा!*

लहरिया दूर खड़ी देर तक बेबस सी उन्हें निहारती रही और अपने हाथों को देखती रही। इतने सारे सवाल जवाब के बाद भी उसके मन में बहते प्रश्नों की लहरें कम ना हुई थीं।

अब उसके सामने नया प्रश्न बनके उभरीं थीं देवी मईया! बाबू तो माटी के लिये चले गये, अब किससे पूछे। उसने चारों तरफ देखा अम्मा आस-पास नहीं थी, कोठरी की आगे वाली बखरी में थी तो उसने धीरे से एक उठानी चाही लेकिन राधिका आवाज सुनते ही जैसे किसी करंट

ने उसे झटक दिया उसने हाथ वापस लौटाया और दूर से ही गुड़ियों को चूमते हुए, देर तक निहारती रही और ऐसे मुस्कुराती रही जैसे वो मिट्टी भी उसे देखकर मुस्कुरा रही हो।

लहरिया धरती पर पसरी उन माटी की गुड़ियों से आँखें मिलाती धीरे से बोली- *क्यों पहरेगी नीला लहँगा?*

तभी सामने से अम्मा को आते देख तो झटपट उठी और फुसफुसाई-

> *देवी मईया को बुलाके लाऊँगी, वो तुम्हें चलना सीखा देंगी फिर तुम और हम, दोनों लहँगा पहर के तला पे भग जायेंगे, अम्मा-बाबू पकड़ भी ना पायेंगे... हमें ऐसे कसके छम... छम ...करके जोर से दौड़ लगायेंगे, खूब मजा आयेगा, अभी जाती हूँ... देवी माई को लिवा लाऊँ!*

इतना कहकर लहरिया बाहर की तरफ दौड़ी चली गई। सामने से छज्जन बस्ता टाँगे स्कूल की तरफ जाता दिखाई पड़ा तो दौड़कर उसके पास गई- *छज्जन ओ छज्जन...*

छज्जन ने मुँह बिराते हुए कहा - *का है? तेरी मेरी तो कुट्टी थी ना फिर मुझसे क्यों बोल रही है?*

लहरिया ने कहा- *अब दोस्ती कर लेते हैं, अब तू हमें नई मारना, हम भी ना मारूँगी, ना तेरी गाड़ी तोडूँगी।*

छज्जन ने कहा- *ठीक है...पर तू अगर मुझे मारेगी, बिराएगी या फिर मेरे खिलौने तोड़ेगी तो फिर कभी बट्टी ना करूँगा।*

लहरिया- *नई करूँगी ना।*

दोनों ने अपनी छोटी-छोटी हथेलियों की छोटी उंगली मिलाई और चूम लीं, मतलब दोस्ती हो गई।

> *अब जल्दी बता क्यों बुला रही थी? मुझे स्कूल जाना है!*
>
> *तू देवी मईया को जानता है?*

छ्ज्जन मुँह दबाकर खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला– *तुझे इतना भी नहीं पता, देवी मइया कौन होती हैं?*

लहरिया उसकी व्यंग्य भरी हँसी से सहम गई, नजरें नीचे गड़ाए बोली– *बता ना कौन है देवी मइया?*

*तू अपनी अम्मा से बाबू से या फिर दद्दा से पूछ लेती, क्यों ना पूछा?*

*जब भम्मान जी को पूछा था तो दद्दा, अम्मा सब रोने लगे थे, लड़ाई-लड़ाई भी हो गई थी, और दद्दा अम्मा रोए तो हमको भी जोर-जोर से रोना आता था... इसलिये... इसलिये... तू बता देवी मइया कौन होती हैं? लहरिया ने पूछा...*

छ्ज्जन कुछ देर अपने सिर को खुजाता रहा... आकाश की ओर ताकता रहा, शायद देवी मईया को समेटकर कोई परिभाषा गढ़ रहा था... आँखें चौड़ी करके बोला–

*देवी मइया बहुत बड़ी होती हैं, लहरिया! बहुत ताकत होती है उनमें और... हाँ, लाल-लाल धोती, लाल बिन्दी पहनती हैं। हमाई अम्मा ने बताया था, बड़े-बड़े राक्षसों को ऐसे (चुटकी बजाते हुये) मार गिराती हैं, और तुझे पता है मेरी अम्मा हैं ना उनमें देवी मईया आती हैं।*

लहरिया की आँखें चमक उठीं– *सच्ची तेरी अम्मा देवी मईया हैं और बो जादू भी कर सकती हैं?*

छ्ज्जन ने कहा– *हाँ... वो कुछ भी कर सकती हैं, बहुत बड़ी होती हैं न इसलिये।*

*तेरी अम्मा तो देवी मइया हैं, तू हमें देवी मईया दिबा दे ना छ्ज्जन.... लहरिया अनुनय करते हुए बोली*

छ्ज्जन ऐंठता हुआ बोला– *चल हट्ट! अभी स्कूल जाना है, ना गया तो अम्मा बहुत नाराज होगी।*

लहरिया ने झट से उसका बस्ता पकड़ा और बोली–

*ना जाने दूँगी, पहले चल, हमकी गुड़िया भी ले लेना, और मैं तेरी बन्दूक भी ना माँगूगीं, चल देवी मईया दिबा दे ना!*

*ओहो... चल तो अभी हमारे घर, लेकिन तू अपने दद्दा से एक गोल मिठाई मेरे लिये भी लाएगी रोज?*

*हाँ हम दूँगी! पर चल अभी जल्ली से देवी मईया चइये हमें।*

छ्ज्जन लहरिया का हाथ थामे मढ़िया की तरफ चल दिया, लहरिया अपने अधमिले उत्तर के अनुरूप देवी मईया को लिबा लाने के उत्साह को लिये दौड़ी चली जा रही थी, कि घिटोई रास्ते में ही दिखाई पड़ गई

*अरे... अरे... तुम दोनों ऐसे कहाँ गदबद दिये हो? और क्यों रे तू स्कूल क्यों ना गया?*

लहरिया और छ्ज्जन घिटोई को देखकर ठहरे तो छ्ज्जन दौड़कर अम्मा के पास पहुँच गया। लहरिया सिर से पाँव तक छ्ज्जन के बताये देवी माँ के हुलिये से घिटोई का मिलान करते वहीं खड़ी रही। घिटोई डील–डौल में किसी पहलवान से कम ना थीं, उस पर आज चटख लालधोती के साथ लाल बिन्दी, चूड़ी, महावर लगाया था।

लहरिया के चेहरे पर पूनम का चमकता चाँद उभर आया अब तो देवी मईया मिल ही गई। अब उसकी गुड़ियों को लहँगा भी मिलेगा और वे छमछम करके चलेंगी, दौड़ेंगी, नाचेंगी भी... मन ही मन सोचती हुई खुश हो रही थी।

छ्ज्जन कुछ कहता उससे पहले लहरिया झपट घिटोई के पास पहुँची, हाथ खींचते हुए बोली –

*'चाची माई! चलो न, चलो न, हमाई गुड़ियों को चला दो! चलो हमाए घर'*

घिटोई हड़बड़ाई सी बोली– *अरी रुक तो बिटिया! कहाँ झटके लिये जाती है? रुक! बता तो का बात है?*

छज्जन बीच में बोल पड़ा– *इसे देवी मईया चइये अम्मा! बहुत जरूरी काम है इसलिये स्कूल ना गया सीधे तुम्हारे पास ले आया, तुम तो देवी मइया हो ना?*

छज्जन के इस प्रश्न ने मानो घिटोई को सिर से लेकर पाँव तक चीर दिया हो। काटो तो खून नहीं, पलभर में मुख की लाली पर जैसे किसी ने पीत रगड़ दिया हो!

*किसने कहा तुझसे ये सब?*

*सब तो कहते हैं अम्मा! और मैंने भी तो देखा है!*

लहरिया घिटोई का हाथ झटकते हुए बोली– *तुम देवी मईया हो चाची, चलो...चलो!*

घिटोई ने दोनों बच्चों को अपनी तरफ आशा भरे दीपक के समान देखते हुए देखा तो जैसे सहम गई, स्वांग कहे या सच कहे समझने के लिये पलभर ठहरी फिर बोली–

*अरे...रेरे...रे... ठहर तो जा बेटा! कित्ती सयानी है री, हम कौनऊ देवी मइया नहीं हैं। किसने कहा तुझसे?*

लहरिया का खुशी से खिला चेहरा इस उत्तर से मुरझा गया– *तो कौन है देवी मईया? छज्जन तू झूठ बोलता था का?*

छज्जन ने अब अपनी अम्मा की ओर आश्चर्य से देखा और बोला–

*अम्मा! तुम देवी मईया हो, बाबू भी कहते हैं, गाँव भर कहता है, और तुम पिछले मेले में देवी मईया तो थीं, मुझे भी ना चीन्हती थीं... तब बाबू ने कहा था कि तुम देवी मईया हो गई हो... इसलिये नहीं जानती मुझे।*

घिटोई ने चारों तरफ देखा और दोनों बच्चों का हाथ थामे अपनी कोठरी के भीतर ले गई, दोनों को खाट पर बैठाया और खुद मचिया सरकाकर बैठ गई। कुछ देर सोचती रही, क्या कहूँ इन नादान बच्चों से, क्या बना दूँ कोई नया स्वांग... ये क्या जानें सच-झूठ या फिर नहीं... ये तो

भगवान् का रूप होते हैं इनसे कैसे? पहले ही इतना पाप लादे घूम रही हूँ, अब और नहीं, पर अगर इन्होंने गाँव में किसी से भी कह दिया तो वो नीच बन्ने और उसके मुसटंडे मेरी करदक्षना कर देंगे। अब जो होगा सो होगा, पर इनसे झूठ नहीं बोलूँगी।

घिटोई अपने मन की तुला पर स्वयं को तोलती उतारती बैठी थी और बच्चे उत्तर की प्रतीक्षा लिये उसके मुख पर उतरते-चढ़ते अनगढ़ भावों को समझने की कोशिश कर रहे थे। पर वे खुद भी तो अभी अधगढ़े ही थे तो क्या समझते।

लहरिया झटके से खटिया से कूदी और बोली- *बोलो ना चाची, तुम हो ना देवी मईया?*

घिटोई थूक गुटकते हुए बोली-

> *बेटा! किसी से ना कहना पर मैं कोई देवी नहीं हूँ, बस नौटंकी करती हूँ। असली देवी मईया तो मन्दिर में रहती हैं। जिनकी हम पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं, पाँव छूते हैं, उनकी तो छाया भी कोई नहीं देख सकता बेटा।*

छज्जन मुँह बाये अम्मा को देख रहा था। लहरिया छज्जन को, कोठरी में सन्नाटा था। लहरिया की समझ के धागों में घिटोई की बातें उलझकर रह गई थीं, सुलझकर बस इतना समझ पाई कि देवी मईया वो नहीं बल्कि मढ़िया वाली हैं। लहरिया अपनी समझ के धागों को गूँथते हुये बोली-

> *अच्छा तो देवी मईया मन्दिर में रहती हैं, पर जे तो बताओ जिनकी आरती उतारते हैं बो जादू कर पाती हैं कि नहीं?*

घिटोई ने उसका छोटा से मुख चूम लिया और कहा- *हाँ बेटा! वो सब कछु कर सकती हैं, महामाई हैं बो तो!*

लहरिया आगे कुछ नहीं कहा सीधे मढ़िया की तरफ भाग गई, घिटोई पीछे से आवाज देती रह गई लेकिन वो चली गई। छज्जन अब भी सोच

में डूबा था, एकसाथ कितने सारे गुणा-गणित उसके मन में उठापटक कर रहे थे उसने धीरे से अम्मा से कहा-

*अम्मा! हमें अब सब समझ आ गया है कि बाबू, भइया सब हम दोनों को काये मारते हैं, हमाये ऊपर इत्ता बड़ा पाप पड़ गया ऐईसें, अम्मा! अब हम मर जायेंगे का?*

इतना कहते-कहते छज्जन डर के मारे रोने लगा... घिटोई के चेहरे पर एक साथ जैसे सैकड़ों काली घनी परछाइयों का डेरा आ पड़ा हो, आँखों से भय और पीड़ा की मिश्रित झिर फूट पड़ी।

उसने छज्जन को छाती से चिपकाया और बोली-

*तुझे कुछ ना होने दूँगी बेटा चाहे जित्ता पाप पड़े, तेरे लिये दुनियाभर के पापों की गठरिया लादने को तैयार हूँ... पाप ही ओढ़ूँ, पाप ही बिछाऊँ, प्राण देना पड़े तो भी पीछे ना हटूँगी। तू काहे डरता है... तू तो अभी बच्चा है और महारानी लहर माई बाल-बच्चन पे कभऊँ किरोध नईं करतीं... तू बिल्कुल ना घबड़ा बेटा।*

इधर लहरिया लहर माई की मढ़िया में पहुँचकर कुछ देर द्वार पर खड़ी होकर मुआयना कर रही थी। चारों तरफ देखा तो उसे छज्जन के वर्णनानुसार देवी मईया जैसा वहाँ कोई ना दिखा, भीतर गई तो माता की मूरत सामने थी, कुछ देर टकटकी लगाए विग्रह को निहारती रही, फिर अपनी बाल भाषा में अटकते चटकते हुये बोली-

*देवी मईया तुमई हो का?*

उत्तर की प्रतीक्षा लिये कुछ देर मूर्ति को निहारती रही जब कोई जवाब नहीं आया तो लहर माई की मूर्ति के चौतरे पर चढ़ी और वरमुद्रा में उठे देवी का हाथ झटकते हुये बोली-

*हमारे घर चलो, बाबू कहते हैं तुम गुड़ियों को चला सकती हो और जादू से लहँगा भी ला सकती हो, हमाये घर... चलो।*

लहरिया देर तक पूरी ताकत लगाकर माता के विग्रह का हाथ पकड़ झटकती रही। थक जाती तो साँसें भरते हुये बैठ जाती, फिर झटकने लगती। जब मूर्ति टस से मस ना कर सकी तो बोली–

*का है देवी माई गुस्सा हो का जो हमाये साथ नईं चलती हो? अच्छा बस एक बार चलो तो हम तुम्हें दद्दा से गोलमिठाई दिबाऊँगी... बो... बो... भोत मीठी होती है और मिठया कक्का बाली बरफी और छज्जन जैसी बन्नूक भी...*

इतनी मनुहार के बाद भी कुछ ना हो सका तो फिर अपनी अम्मा के माहुर, बिन्दी, और अपनी फराक देने का लालच भी सामने रख दिया। पर ऐसी मनुहारों से पत्थरों में हरकत होती तो दुनिया का नैन–नक्श ही अलग होता, लहरिया थक हारकर बैठ गई, धीरे से बुदबुदाते हुये बोली–

*अरे तुम भी देवी माई नईयाँ। तुम भी गुड़िया ही हो, जैसे हमाई पुतरिया नईं बोल पातीं वैसई ना तो तुम बोल पाती हो, ना ही चल पाती हो फिर तुम हमाई गुड़िया को कैसे चलाओगी?*

*घिटोई चाची को भी नईं पता कि तुम देवी माई नईयाँ, पर तुम रोना नईं, हमाई बाली पुतरियों को चलाने जब देवी माई आयेंगी ना, तब उनसे हम कहूँगी इसको भी चला दो, बेचारी चल नईं पाती है, और... और... बो नीला बाला लहँगा, हार भी दिबाऊँगी... फिर तुम भी हम सबके साथ छम... छम.. . छम... करके तला पे चलना।*

*घिटोई चाची को भी कहूँगी... देखो तुम्हें भी नहीं पता कि देवी माई कौन हैं... पर...पर... अभी तो देवी मईया मिली नईं! अब कैसे लहँगा मिलेगा... हमाई पुतरियाँ चलना सीख पायेंगी? कैसे उनके साथ खेलूँगी? सबको दिखाऊँगी कैसे?*

ईश्वर की भी सम्भवतः अपनी विवशतायें होंगी वर्ना इतनी कोमल, धुली

और मासूम मनुहारों को कौन अनसुना करता है... शायद विवशता में ना होती देवी मईया तो पत्थर से निकलकर इस छोटी सी मानवी का मुख सैकड़ों बार चूम लेतीं और कहतीं चल ले चल जहाँ तू चाहे...

इस बाल ईसुरी की बातें सुनकर आकाश में बैठी देवियाँ भी इसकी बलायें लेती होंगी, रीझती होंगी, हँसती होंगी। मन्दिर में चिड़ियों की चहचहाहट ऐसे गूँज रही थी, जैसे लहरिया के सारे प्रश्नों का उत्तर देने आकाश से देवियों ने उनको विशेष कंठ दे दिया हो। लहरिया अपने सारे विफल प्रयासों से दुखी होकर बाहर उदास बैठ गई उसका प्रश्न अब भी वहीं का वहीं था कि देवी मईया को ढूँढे तो ढूँढे कहाँ?

दोपहर का दूसरा पहर हो चला था, राधिका लहरिया को ढूँढती हुई मढ़िया में पहुँची तो लहरिया अनमनी किसी सोच में लीन बैठी चारों तरफ कभी पेड़ों की आरती उतारती, कभी मढ़िया के बाहर के शिवलिंग पर चढ़ी घंटी बजाने का प्रयास करती। राधिका ने लहरिया को शिवलिंग पर चढ़ा देखा तो चिल्लाते हुये दौड़ी–

*अरी महामाई! जे का कर रही तू यहाँ?*

राधिका ने छोर पकड़कर माथा धरती में रगड़ते हुये विनती की–

*हे भोलेनाथ, हे महामाई! बच्चा है, इसकी गलती धूरा सी झार देना... तुमसे मूड़ पटककर बिनती करती हूँ।*

राधिका ने बाँह पकड़कर लहरिया को झटका–

*चल यहाँ से, का करती थी कहीं भगवान् की पिण्डी पे चढ़ा जाता है? और... और... आई कैसे यहाँ?*

*अम्मा! छज्जन लिवाके आया था, देवी मईया को लिवाने!*

*देवी मईया को लिवाने?*

*हाँ उसने कहा था उसकी अम्मा देवी हैं, पर घिटोई चाची बोली जे देवी मईया हैं, लहरिया सिसरियाई सी बोली*

*हाँ तो जे ही हैं देवी मईया चल मूड़ धरके पाँव पर।*

राधिका, लहरिया का माथा जमीन पर छुआकर कलाई पकड़े ले गयी।

लहरिया बोली- *पर अम्मा जे कहाँ चलती हैं, कहाँ बोलती हैं?*

*जाने कितनी कतरनी सी जुबान चलने लगी है तेरी चल चुपचाप, जे ही तो हैं देवी मईया तेरे लिये कोई सरग से उतर के थोड़ी आयेंगी।*

*क्यों, हम तो तब ही मानूँगी जब जे चलेंगी हमाये साथ।*

राधिका ने लहरिया को झिड़का-

*चुप! अब जादा बोली तो दो थपाड़ा दूँगी, और जब देखो तब छज्जन के पीछे चल देती है और उसकी महतारी लड़ने-सुनाने का एक मौका नहीं चूकती।*

लहरिया अम्मा को नाराज होते देख चुप तो हो गई लेकिन जिज्ञासाओं की पथरीली पहाड़ियाँ अब भी उसे चुभ रहीं थी, प्रश्नों की खदबदाहट बढ़ गई थी, उनके उत्तरों की खोज में उसके मस्तिष्क में नई परिकल्पनाओं के साये सजीव हो रहे थे।

घर आकर लहरिया घुटनों के बीच उदास मुख फसाये बैठी माटी की बेजान पुतरियों को निहारते हुए बोली-

*पता है वहाँ मढ़िया में भी एक पुतरिया है, वो भी तुम्हारी तरह नहीं चल पाती, अब जब देवी मईया को हम बुला लाऊँगी तो कहूँगी वो अपनी उंगली पकड़कर उसको भी चलना सीखा दे।*

*फिर हम सब उसको भी साथ लेकर तला चलेंगे, खूब खेलेंगे, छम...छमा...छम नाचेंगे अहा... कित्ता मजा आयेगा... हमाये पास इत्ती सारी सहेलियाँ होंगी... फिर तो छज्जन को भी ना खिलाऊँगी अपने साथ... पर जे देवी मईया हैं कि मिलती ही नहीं अब बताओ कहाँ से लाऊँ..?*

नौनिहाल मन अनुसंधानों के फेर में उलझ रहा था। मानवों, देवों के फर्क के बीच गोते लगाता कभी उस पार गिरता, कभी इस पार किन्तु ना तो वहाँ पाट मिलता ना यहाँ किनारा... हर जगह प्रश्नों और समाधानों के प्रवाह में यहाँ-वहाँ टकरा रहा था।

रात हो चली थी, राधिका रसोई समेटकर आई और गुड़ियों के सामने लहरिया को बुदबुदाते देख बोली-

अब आज ही सारा बतबड़ हो जायेगा तेरा इनसे, चल सो जा! लहरिया अनमना सा मुँह लिये चुपचाप उठकर छपरे में जाकर खटिया पर पड़ रही, राधिका ने दद्दा का चादर पानी बाहर रखा, माधो की खाट बखरी में बिछाई और लहरिया के बगल में जाकर पड़ गई, दिनभर की मेहनत अब पलकों को पलभर उठे रहने की आज्ञा नहीं दे रही थी लेकिन लहरिया बार-बार अम्मा से प्रश्न करती-

*अम्मा! बताओ ना पुतरियाँ कब चलेंगी।*

राधिका कभी हूँका देकर टाल देती, कभी चुप रह जाती, इस बार लहरिया ने अम्मा को जोर से हिलाया और बोली-

*अम्मा! पुतरियाँ कब चलेंगी बताओ ना, देवी मईया अपनी उंगली पकड़कर कब चलायेंगी, बोलो ना, और लहँगा मिलेगा ना हमें?*

*अरे राम! जब देवी मईया की मर्जी होगी चला जायेंगी, लहँगा भी दे जायेंगी पर अभी सो जा, अब आवाज ना सुनाई दे।*

राधिका ने लहरिया को छाती से जबरन भींच लिया और थपकियाँ देते-देते सो गई। लहरिया कभी इधर करवट लेती कभी उधर कभी अम्मा की छाती से चिपकती, कभी सीधी पड़ी आकाश में चमकते चन्द्रमा को ऐसे ताकती जैसे याचना करती हो कि यदि जानते हो तो तुम्हीं देवी मईया को भेज दो। इस याचना, उलझने-सुलझने के फेर में पड़कर लहरिया भी नींद की नदिया में डूब गई। बार-बार बर्राती देवी

मईया आ जाओ, नीला लहँगा दिला जाओ... गुड़िया को चला जाओ, देवी मईया आ जाओ। जैसे ही लहरिया की आवाज निकलती राधिका उसे थपकी देती, छाती से और कसके चपेट लेती और इस भींचन में लहरिया की याचना भी नींद में रूंधी फुसफुसाकर चुप हो जाती, सिलसिला रातभर चलता रहा।

# मिल गये भगवान्

भोर की सूरजमुखी पूरी खिल गई थी। बाबू की घंटी की टनटन से लहरिया की नींद टूटी। आँखें मीड़ते हुए पलकें लपलपाईं तो देखा बाबू प्रतिदिन की तरह उसकी आरती उतार रहे थे। बत्ती की लौ में लहरिया की मीचमिचाती आँखें और मुस्कुराता छोटा सा मुख किसी दैवीय आभा सा ही दीप्त हो रहा था। माधो ने आरती उतारकर उसके नन्हें-नन्हें कदमों को माथे पर रगड़ा और बाहर को जाने को पलटा तो लहरिया उचककर पीठ पर लटक गई, माधो चौंक कर बोला- अरे... अरे... गिर परेगी... उतर नीचे!

रात्रि की याचनायें, प्रश्न, अनुसन्धान सारे एक साथ लहरिया के मस्तिष्क में जागृत हो उठे थे, कुनमुनाते हुए बोली- *नईं बाबू! पहले बताओ तुम रोज-रोज हमकी आरती कियों उतारते हो? घिटोई चाची कहती थी कि जिनकी आरती उतारी जाती है, पाँव छुये जाते हैं बोई तो देवी माई होती हैं, तो...तो...हम का देवी माई हैं?*

माधो बोला- *पहले तू नीचे उतरकर सामने खड़ी हो फिर बताता हूँ!*

लहरिया झटसे कूदी और तपाक से बाबू के सामने मुस्कुराती हुई खड़ी हो गई- *अब बताओ!*

माधो ने पूजा की थाली किनारे रखी, उसे गोद में उठाकर माथे पर हाथ फिराया, उसका माथा सूंघा और बोला-

*हाँ, मेरी लहरिया माई! तू ही तो हमारी देवी मईया है, तेरे*

*कारण ही तो ये बखरी हरी है... हम जीते हैं... हँसते बोलते हैं... अपनी सारी परेशानियों में हौसला बाँध पाते हैं।*

लहरिया के मुख पर उगे आश्चर्य ने अन्य कुछ नहीं बस इतना ही समझा कि अरे! देवी मईया तो मैं ही थी और बताओ यहाँ से वहाँ कितना ढूँढती फिर रही थी।

उसकी गोल-गोल ब्रह्माण्ड सी गहरी हो उठी आँखों में जैसे सारे चमकीले नक्षत्र, तारे बिना रात की प्रतीक्षा किये भोर में ही उतर आये-

*सच्ची में बाबू! हम देवी मईया हूँ। हाँ बिल्कुल सच्ची!*

लहरिया गोद से कूदकर सीधे माटी के पुतरियों के सामने माथा ताने, कमर पर हाथ रखकर खड़ी हुई। स्वगर्व से भरी हुई बोली-

*तुम सब को पता है हम ही देवी मईया हूँ। अभी-अभी बाबू ने बताया हमें तो पता ही नई था। अब बाबू पहले बता देते तो तुम सब कल ही चलने लगतीं।*

*अभी हम उंगरियों को पकड़ाकर जादू करूँगी और तुम सब दौड़ने लगोगी फिर हम छूमंतर से नीला-नीला लहँगा लायेंगे, छम...छम...छम... करके सब साथ में तला पे जायेंगे, क्यों देवी माई के साथ खेलने चलोगी ना?*

*हम सब मिलकर सबको खूब बिरायेंगे, सब हमें छोटी-छोटी कहकर भगा देते हैं, फिर हम किसी को तुम सब के पास हिरकने भी ना दूँगी, अब तो हम देवी माई हूँ, छूमंतर भी कर सकती हूँ, आहा.....कित्ता मजा आएगा..।*

ताली पीटकर कूदती लहरिया खुशी से चिल्ला रही थी-

*बड़ा मजा आया... दही जलेबी खाया... बड़ा मजा आया! फिर ठहरी और धीरे से फुसफुसाई तुम सब बिल्कुल नईं रोना आज हम सबको जादू से चलना सिखा दूँगी और वो मढ़िया वाली पुतरिया को भी!*

लहरिया पुतरियों को उठाने को जैसे ही झुकी माधो ने देहरी से ही चिल्लाया- *अरे... का करती है, इन्हें ना छूना... नईं तो अम्मा मारेगी।*

लहरिया सहमकर हाथ सिकोड़े खड़ी-खड़ी बाबू का मुँह देखकर होंठ पसारती हुई भीतर खटिया पर दुबककर बुदबुदाई-

*पहले कहते हैं, हम देवी माई हूँ फिर डाँटते हैं, जब हम देवी माई हूँ तो अम्मा बाबू पुतरियाँ क्यों नहीं देते?*

एक प्रश्न सुलझा तो अब इस प्रश्न ने लहरिया के मन की लहरों में ज्वार भाटे भर दिये, पर बालपन से ना तो जिज्ञासायें छीनी जा सकती हैं और ना ही प्रयोगधर्मिता।

इतनी सारी बातें, इतने सारे सपने, इतने सारे ख्याल, इतनी जिज्ञासायें, पलभर में लहरिया ने बुन डाली थीं। वैसे ये शक्ति मनुष्यों के पास प्रारब्ध से होती है किन्तु इतनी निश्छलता केवल इसी अवस्था को ही उपहार स्वरूप मिलती और यही सौन्दर्य है, यही अनुराग है इसका, जो ईश्वर को भी रिझाकर धरती पर उतार लाने की सामर्थ्य रखती है।

इसी सुख के लिये तो मनुष्य सम्पूर्ण जीवन अपनी बाल्यावस्था में लौटने की कल्पनायें करता है... जब पीड़ायें बढ़ जाती हैं तो ऐसी ही शरारतें ही आनन्द की घुट्टी हुआ करती हैं।

माधो बंडी पहनकर निकलने को हुआ तो राधिका ने पूछा- *सबेरे से कहाँ को सज गये हो?*

*जाता हूँ खदनिया पर शायद आज माटी मिल जाये... चार दिन हो गये... रोज आज कल करके टरका देते हैं, अब तो मेला खोपड़ी पे आ गया है।*

*...रौंपतयानी हैं बड़ी पुरखिन मुझपे... ब्याह में मैंने ही जबान पे धीरज धर लिया होता..., पर का करूँ मौड़ी को बिलखता ना देख सकी थी... अब कहो तो चलूँ हाथ पैर जोर लूँगी शायद मान जायें।*

*...जो हुआ सो हुआ का करेगी जाकर, तुझे देख कहीं और ना लालटेन हो परें रहने दे, जितनी बनी हैं वो पुतरियाँ रंगने पे आ गईं हैं, तू अब उनका रंग-रोगन करके जल्दी सम्हार के रख दे... रामजाने अब कहीं बदरा ना झर परें।*

*...रंग-रोगन कौन एक दिना का काम है, कोठी पर तो दो-एक घंटा ही लगेगा जादा से जादा... तुम ठहरो चलती हूँ, हाथ-पाँव, मूड़ धरके पाँव पर लूँगी, मानेंगी काये नहीं।*

*...अरे सुन तो रहने दे... लहरिया अकेली ना रह जायेगी।*

*...अरे दद्दा तो हैं... रह जायेगी।*

*...दद्दा का करेंगे... बिचारे ना देख पायें ना उठ बैठ पायें... उन्हें परेशान ना करने लगे।*

*...कुछ ना करेगी, समझा जाऊँगी, पर आज चलती हूँ। बहुत दिन से फाँस सी गड़ी है छाती में।*

*...ठीक है! जैसी तेरी मरजी।*

राधिका ने झटपट हाथ धोये, बोरी उठाकर लहरिया को बोली-

*देख बेटा! हम खदनिया तक जाते हैं... दद्दा को बिल्कुल हैरान ना करना... ना उनके ऊपर चढ़के बैठना... खेलना हो तो यहीं बखरी में खेलना कहीं और ना जाना।*

लहरिया झट से खटिया पर उठ बैठी और बोली- *हाँ अम्मा कहीं ना जाऊँगी हम, और... और... दद्दा को भी परिशान ना करूँगी।*

माधो ने जाते-जाते दद्दा से कहा - दद्दा! लहरिया बखरी में है, देखे रहना, हम दोनों थोड़ी देर में कोठी से होके आते हैं।

*कोठी पे क्यों जाते हो, फिर कौनऊँ बवाल बाँध लिया का तुम दोनों नें?* दद्दा काँखते हुए बोले

*ना दद्दा कुछ ना हुआ है, बस बड़ी पुरखिन के पाँव परके आते हैं। बहुत-बिलात दिन हो गये हैं कहेंगी दोनों ने सूरत ना*

*दिखाई बस इसलिये।*

*ठीक है जाओ, जल्दी आ जाना, तुम्हारी मौड़ी अब मुझसे नहीं सम्हरती।*

*हओ अभी आते हैं घंटाक में!*

माधो आगे-आगे राधिका पीछे-पीछे घूँघट काढ़े निकल गए। चैत चटकने को था, गाँव भर में चिरैया भी ना दिखती थी, कोठी पर भी सन्नाटा पसरा था, बड़ी पुरखिन तखत पर माला लिये मसनद पर टिकी बैठी थीं, पैरों की आहट सुनी तो माला को बगल में रख बाहर की ओर देखकर बोलीं- *कौन है?*

माधो और राधिका ने चप्पलें कोठी के बाहर छोड़ीं और वहीं से आवाज दी- *बड़ी पुरखिन! मैं हूँ माधो...*

*अब तू काहे को आया है यहाँ? तेरी लुगाई तो बड़ी नाक वाली है... इतने गरब बाली है कि किसी का कुछ कहना छूत सा चिपकता है उसको... तू काहे को जब देखो तब उसकी तरफ से नाक रगड़ने चला आता है रे... जा यहाँ से।*

माधो हाथ जोड़े तब तक भीतर आ गया, राधिका भी सहमी सी पीछे-पीछे चेहरा धरती में गड़ाये आ गई। बड़ी पुरखिन ने राधिका को जैसे ही देखा वैसे ही तुनककर बोलीं-

*खबरदार! जो तूने एक कदम आगे बढ़ाया... हम कौन इत्ते बड़े धन्नासेठों से मिलते हैं... हमारी गरदन लरज जाती है तुम्हारे अभिमान भरे माथों को देखकर।*

माधो ने जमीन में हाथ छुआते हुए पाँव छुये और बोला-

*ऐसा ना कहो बड़ी पुरखिन! अब गलती तो हो ही गई... जो कछु सजा हो सो दे दो... सब मंजूर!*

राधिका अब धीरे से कदम सरकाते आगे आई छोर हाथ में लेकर अपना माथा धरती पर धरकर बिलखने लगी-

*तुम ही महतारी–बाप हो बड़ी पुरखिन तुम्हारे बिना हम कनूका भी ना पा सकेंगे... गलती हो गई जो सजा हो सो मुझे दे दो ... कहो तो अपनी चमड़ी की पनहईयाँ तुम्हें पहरा दूँ... पे अपना बड़ा कलेजा कर क्षमा कर दो।*

*काहे अब काहे गिगयाती है, उस दिन तो बड़ी गर्राहट चढ़ी थी... हमाये चार रिश्तेदारों और पूरी गाँवदारी के सामने तूने हमें कित्ती बातें नई कहीं... ऐसे गुरैराँ हेरती थी कि खा ही जायेगी, आज काहे जे गटा ऊपर को नहीं उठते... बिटिया का घमंड तो ऐसे बताती थी जैसे कौनऊ सात पूत को पूत हो!*

*ऐसो ना कहो बड़ी पुरखिन तुम तो देवता सरीसीं हो हम और के लाने देवता तो बाल–बच्चन की गलतीं क्षमा कर देत हैं. .. मैं तो बस मौड़ी को रोता ना देख सकी थी... सो भूल गई कि का बोले जाती हूँ!*

*बाल–बच्चा! हूँह...हमाये बाल–बच्चा एक शबद भी बोल जायें हमाये आगे, तो जीभ काट के फेंक दूँ।*

*तो अब कहो बड़ी पुरखिन का करूँ जो तुम्हारे कलेजे को शान्ति परे, लौटपटा हो सकता तो अभी जूझ जाती पर अब तो चरणन में डली हूँ यही कह सकती हूँ अबकि गलती भुला दो... दोबारा करूँ तो जीवनभर की गुलामी करूँगी।*

*हम पे दया करो जो सजा हो मुझे दे दो पर रोजी पे अपनो हाथ धर दो बड़ी पुरखिन, हा हा बिनती करती हूँ।*

कोने में धरती में आँखें गड़ाये माधो हाथ बाँधे अपनी बाहों को नखों से खुरचता खड़ा पाँवों के अँगूठों को आपस में ऐसे रगड़ता था ज्यों कि अपने शरीर से ये बेशर्म चर्म उतारकर फेंकना चाहता हो।

जो औरत सही होने पर कभी एक बात पीछे नहीं हटी आज रोटी के कारण कैसी धरती में मूड़ रगड़ती पड़ी है जबकि उसका तो दोष बस

इतना है कि अपनी सन्तान के लिये ढाल बनकर खड़ी हो गई थी। कौन महतारी होगी संसार में जो अपनी औलाद के लिये ऐसा ना करेगी।

बड़ी पुरखिन के अहम पर अब राधिका के यूँ बिनती करने से कुछ जल के छींटे पड़ने लगे थे।

*ठीक है, ठीक है अब ज्यादा चिरौरी ना कर... हिदायत दे रही हूँ अब जो दोबारा जे सब हुआ तो समझ लो... गाँव में ना रहने पाओगे।*

राधिका का मुख लाल हो आया था, ना जाने क्रोध का रंग था या विवशता का जो छूँछे हाथों को अधिकृत होती है, क्रोध तो बड़े घरों के झाड़-फानूस होते हैं उस पर उन्हीं का अधिकार होता है। माधो और राधिका ने फिर मूड़ धरके बड़ी पुरखिन के पाँव परे, बड़ी पुरखिन तुनक कर बोलीं -

*ठीक है, ठीक है! अब हटो यहाँ से... माधो अबकि माटी ले जा लेकिन पैसे में कोई रियायत ना दे पाऊँगी।*

*बड़ी पुरखिन जैसी आज्ञा... मेरे पास पल्ले जैसे ही होगा तुरत दे जाऊँगा।*

बड़ी पुरखिन गर्दन झटकी, माला फेरते हुए हाथ से बाहर जाने का इशारा कर आँखें मूँद ली।

राधिका और माधो खदनिया की तरफ पाँव घसीटते हुए चले गये, दोनों के बीच एक अनकहा, अनबोला संवाद चल रहा था जिसमें ना कोई वाक्यविन्यास था, ना शब्द थे... ना ही कोई उतार-चढ़ाव बस सुर था वेदना का, विवशता का, जलन थी मन के छालों की, नमी थी उन छालों से रिसते लावे की।

इधर दद्दा बाहर खटिया पर पड़े श्री राम... जय राम... जय जय राम.. गा रहे थे और लहरिया शीशे के सामने बैठी टिपकियाँ लगा रही थी, हाथों में अम्मा की बड़ी-बड़ी लाल चूड़ियाँ पो लीं, होठों पर सिन्दूर

रगड़ लिया और अम्मा दोनों धोतियों की उठा पटक करती माथे पर हाथ मारती बैठ रही– अब का करूँ अम्मा के पास तो लाल वाली धोती है ही नहीं, देवी माई कैसे बनूंगी?

धरती पर पाँव पसारे बैठी सोचती रही फिर अचानक मुख चैतन्य हुआ और हाथ हरकत में आये, अरवे में रखी माहुर की कटोरी में पानी भरा और धोती पर लुढ़का लुढ़काकर रंग डाला फिर आढ़ी तिरछी लपेटकर बक्से के ऊपर चढ़कर दर्पण के सामने मुस्कुराती खड़ी हुई और बोली– *अरे बाह! हम बन गई देवी माई... अब पुतरियों को दौड़ना सिखाऊँगी!*

पाँव से पाँव में लपटती झपटती बाहर पहुँची तो दद्दा की आवाज आई– *लहरिया ओ लहरिया! उधम तो नई कर रही?*

*...नई दद्दा!*

दद्दा को सान्त्वना दे अब पुतरियों के सामने जा खड़ी हुई–

*चलो चलें अब, देखो हम देवी माई बन गई हूँ, अब झट से दौड़ना सीखा दूँगी... चलो अब पकड़ो हमायी उंगरिया... ऊँहूँ... नई पकड़ती चलो हम पकड़ती हूँ... तुम्हारी उंगरियाँ!*

अब माटी की इन अधगढ़े पुतलों की कलाईयाँ बारी–बारी से लहरिया की हथेलियों के बंध में आतीं और एक धीमा सा सुर गुनगुनाता–

*अगड़म... बगड़म... छू....जादू होजा तू... गुड़ियाँ दौड़ें उड़न छू.... और इस उड़न छू पर पुतरिया लड़खड़ाकर गिरती, लहरिया फिर उठाती और फिर जादू... के टुकड़े जमीन पर बिखेरती जाती।*

दोपहर हो चली थी, सूरज में कुछ ताव जरा अधिक था, हवा भी विचित्र सा सन्नाटा पहने बह रही थी। दोनों सिर पर माटी की बोरी लादे धीरे–धीरे कदम सरकाते भारी कदमों से घर चले आ रहे थे।

अब भी ना कोई संवाद था ना ही कोई तर्क–वितर्क सबकुछ शून्य सा मौन और तटस्थ था। दोनों ने देहरी पर माटी की बोरियाँ पटकीं, माधो

अपने अंगोछे में पसीना लपेटता देहरी पर टिककर बैठ गया, राधिका भीतर को बढ़ गई।

जैसे ही बखरी में कदम रखा तो कलेजे पर जैसे किसी ने बड़ा सा पत्थर दे मारा हो। धम्म से मुँह बाये दीवार से टिक रही। ये क्या था, आकाश से पत्थर बरसे या फिर धरती ने टुकड़ों को उगलकर फेंका है? पलभर को सूझा ही नहीं कि जो देख रही है वह क्या है, आँखों ने हर टुकड़े के पास जाकर जैसे छूकर देखा हो...

ओह देवता! ये तो... उनकी मेहनत कंकड़ हुई आँगन में बिखरी हुई है, अभी-अभी जिस रोजी-रोटी के लिये अपने मान, अभिमान को किसी के चरणों में चढ़ाकर बेशर्मी ओढ़े खोपड़ी पर धरे चले आते हैं वही रोटी का मार्ग चुरकन हुआ बखरी में पड़ा है।

आधे से ज्यादा माटी की पुतरियाँ अधटूटी यहाँ-वहाँ बिखरीं पड़ीं हैं, लहरिया सैन्दुर से सराबोर, माहुर में डूबी धोती लपेटे एक-एक गुड़िया को उनके हाथों से पकड़-पकड़कर घसीट रही है और कह रही है-*अगड़म... बगड़म... छू... जादू होजा तू... गुड़ियाँ दौड़ें उड़न छू...*

एक टूटकर बिखर जाती है तो कुछ देर बाल खुजाती है और सोचती है फिर दूसरी का हाथ और कसके पकड़कर घसीटकर फिर बोलती है-*अगड़म... बगड़म... छू... जादू होजा तू... गुड़ियाँ दौड़ें उड़न छू....*

राधिका के दिमाग में जैसे कोई चक्करघिन्नी घूम पड़ी हो, कोठी की झुलसती लपटें कहीं लहरिया को ना लपेट ले, इसलिये मौन खड़ी रही, कुछ पलों बाद स्वयं को समेकित करते हुए चिल्लाई-

*ऐ लहरिया! ये क्या कर रही है?*

लहरिया ने अम्मा की आवाज सुनी तो पलटकर देखा, हँसती खिलखिलाती कुछ कहना चाहती थी लेकिन राधिका का लाल हुआ चेहरा, किटकिटाते दाँत और बड़ी होती पुतलियों को देखकर सहम गई। हाथ में पकड़ी गुड़िया भी छुटककर चकनाचूर हो गई।

राधिका झटके से उठी और लहरिया कान खींचा- *ये का रंग रूप बनाये है, और ये सब पुतरियाँ क्यों तोड़ी तूने? बता... बोलती क्यों नहीं?*

*अरी अम्मा! लगती है छोड़ दो! ...लहरिया चीख पड़ी*

माधो ने राधिका के चिल्लाने की आवाज सुनी तो भीतर को दौड़ा।

*अरे...रे...का करती है? माधो ने हैरानी से कहा।*

लहरिया अम्मा की पकड़ से छुटककर सीधे बाबू की कमर से लिपट गई, बिलखते हुए बोली- *बाबू ! अम्मा मारी, बाबू! अम्मा मारीं...*

माधो ने लहरिया के सिर पर हाथ रखा और बखरी की तरफ फटी आँखों से देखता रह गया, जे का है, कौन कर गया?

दद्दा की ओर मुड़ते हुये पूछा- *अरे दद्दा! कोई घुसा था का घर में?*

*नहीं तो, मैं तो तनक भी नहीं टरा देहरी से और तो और आँख भी ना झपकी... इतना भी गया गुजरा नहीं कि कोई घुसे और आहट भी ना मिले!*

*तो फिर जे कौन कर गया, जीते जी मर गये बताओ!*

राधिका के नथुनों से जैसे क्रोध सागर की लहरों सा अजेय हुआ फड़फड़ा रहा था- *अरे दद्दा से का पूछते हो, अपनी इस लड़िलिया की सूरत देखो!*

माधो ने कमर से लिपटी लहरिया को छुड़ाया और देखा तो सन्न रह गया- *जे का रूप बनाया है तूने, और जे सब तूने....*

भय से आप्त आँखों से लहरिया बाबू को ताक रही थी, पहली बार जो बाबू के मुख से इस तरह का सुर सुना था!

विस्तृत आकाश को जैसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, वैसे उसके बखरी में पसरी इस करनी को भी प्रमाणन की जरूरत नहीं थी, माधो अपनी मेहनत के टुकड़ों को इस तरह बिखरा देख निःशब्द होकर टिक गया, माथे पर हाथ रखे पुतरियों को एकटक देख रहा था, आँखों

में पानी उभर आया, चेहरे पर तो जैसे कोई हल्दी मल गया हो, हाथ पैर जैसे किसी बर्फीले पहाड़ में गड़ गये हों, ना दिल काम कर रहा था ना दिमाग।

लहरिया डर के मारे थरथराती, सिसकियाँ लेती कभी अम्मा को देखती कभी बाबू को दोनों अपने करम पर हाथ धरे रुआँसे बैठे थे। माधो ने लहरिया का भय से भीगा मुख देखा तो उसकी कलाई पकड़कर उसे ओली में बैठाया, सिर पर हाथ फेरा तो लहरिया हिल्कियाँ लेती बाबू की छाती से चिपक रही। माधो ने उसे पुचकारा, थपकियाँ देते हुए कहा– *चुप–चुप! कोई बात नहीं... चुप हो जा तू... बिल्कुल चुप!*

राधिका आँखों की नमी को हथेलियों में लपेटा और टूटी पुतरियों को बटोरने उठ बैठी–

> *तुमने ही बिगाड़ा है इसे... दो तमाचा दो तो सारी शैतानी धरी रहे। जब देखो कुछ ना कुछ बिगार करने बैठी रहती है, एक दिन सरग मूतेगी तब करना ये चोचले... बड़े नौखे बाप तुम हुए हो और एक नौखी तुम्हारी बिटिया... अभी से ना सिखाओगे–समझाओगे तो का करेगी, ऐसे ही अपने को किसी के आगे नाक रगड़ने को मजबूर करेगी... फिर खुद ही जरेगी भुनेगी, इसलिये अभी से कम से कम आदत डाल दो डपट में रहने की।*

लहरिया अम्मा का बड़बड़ाना सुन फिर रोने लगी। माधो ने राधिका को डपटा– *कुछ देर चुप रहेगी तू!*

लहरिया साँसे भरती हुई बोली– *और डाँटो बाबू, अम्मा को।*

> *...हाँ बेटा! डाँटेंगे अम्मा को... पहले ये तो बता तूने ये पुतरियाँ क्यों तोड़ डाली और आज फिर जे रंग रूप बना के बैठ गई, उस दिन याद है ना अम्मा कित्ती नराज हुई थी?*

लहरिया सुबकते हुए बोली– *बाबू! जे सब पुतरियाँ कह रहीं थीं कि*

*उन्हें नीला बाला लहँगा पहनकर दौड़-दौड़ के खेलने जाना है।*

माधो ने बीच में ही बात काटते हुए कहा- *तो बेटा! ये कैसे दौड़ सकती हैं, ये तो माटी की हैं ना?*

लहरिया आँखें मलते हुए बोली- *तुमने ही तो कहा था कि इन्हें देवी मईया जादू से चला सकती हैं?*

*हाँ, तो तूने क्यों चलाया?*

*तुमने ही तो सबेरे कहा था कि मैं देवी मइया हूँ? और छज्जन ने बताया था देवी माई लाल बिन्नी चूली, धोती सब पहनती हैं तब बनती हैं जैसे उसकी अम्मा हैं, इसलिये हम देवी मईया बनी... फिर छूमंतर से इन्हें बस चलना सीखा रहे थे।*

माधो ने अपने माथे पर दोनों हाथ दे मारे। सिर दीवार में जोर से टिका दिया। लहरिया का मासूम सा चेहरा पिता के मुख पर पड़ते प्रश्नवाचक निशानों को पढ़ने समझने का प्रयास कर रहा था, पिता भी भंवर में पड़ा था कि बेटी की इस कारस्तानी को बाललीला मानकर हँस दे या फिर आँगन में पसरे इस दुर्भाग्य पर छाती पीटकर गुहारें मारे।

लहरिया के गालों पर काजल बह आया था, काले-काले पनीले से धब्बे पड़ गये थे, लहरिया एक आँख मलती हुई धीरे से फुसफसाई-

*बाबू! बस अभी चलने ही वाली थीं, लेकिन अम्मा ने चिल्लाया इसलिये डर गईं बेचारी।*

माधो रुआँसी हँसी हँस पड़ा और लहरिया को बाँहों में कसकर भींच लिया, जब अपने करतब पर माता-पिता का प्रेम उमड़े तो हौंसले आकाश में थिगरिया लगाने को भी सज्ज हो जाते हैं खासकर मामला बचपन का हो तो, लहरिया भी हौंसलों को सुरों में घोलती हुई तपाक से खड़ी होकर बोली-

*बाबा इस वाली को चलाऊँ, देखना ये कैसे दौड़ने लगेंगी...*

*...नहीं..नहीं... बेटा! अब मत चलाना इनको, छूना भी मत!*

*...पर क्यों बाबू, तुमने ही तो कहा था कि हम देवी मईया हूँ!*

*...हाँ है तू देवी मईया पर तू छोटी वाली है, इनको बड़ी वाली देवी मईया चला पायेंगी, वो वहाँ ऊपर आसमान में रहती हैं।*

*...तो बाबू! उनको अपने घर बुला लो ना? देखो ये सब कैसे रोती हैं!*

*...अरे सरदारनी! वो नीचे नहीं आती।*

*...कियों?*

*...क्योंकि उनका घर वहीं है... जैसे तेरा यहाँ है... तू यहाँ से कहीं जाती है क्या?*

*...तो बाबू वो कभी नई आयेगी?*

*वो किसी को नहीं मिलतीं, चल अब जाकर खेल और अब पुतरियों को छूना मत, ठीक है?*

लहरिया ने अनमनी मुंडी डुला दी, धीरे से बोली- *अब हमको नीला लहँगा कौन लाएगा? अभी चइये बाबू, इन सब को भी पहरना था।*

राधिका ने जैसे ही नीला लहँगा सुना जैसे किसी ने करंट दौड़ा दिया हो-

*नीला लहँगा...नीला लहँगा...*

*अब बिल्कुल ना आयेगा नीला लहँगा... प्राण खा लिये इस लहँगे ने और तुम भी उसे खोपड़ी चढ़ाओ...*

*बताते क्यों नहीं कि नहीं आ पायेगा और अब जे सब पसार दिया है तो बिल्कुल भी नहीं आयेगा।*

लहरिया सहम गई, ना तो रोते बनता था ना ही हँसते, राधिका फिर बोली- *अब तू सीधी चली जा यहाँ से।*

लहरिया पुतरियों को पलट-पलटकर देखती हुई पाँव सरकाती बाहर को चली गई।

अबकि बार माधो ने भी कोई बचाव नहीं किया था। शायद समझ गया

था कि माँ अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी आंत जाई पर इतनी सख्ती कर रही है तो उसके लिये यही ठीक होगा और ठीक नहीं भी है तो का करें हम उसकी ख्वाहिशों को गले में लटकाये घूम तो नहीं सकते, बस उन पर मट्टी जरूर डाल सकते हैं।

राधिका ने टूटी और साबुत गुड़ियों के टुकड़े अलग-अलग समेटकर कोने में रख दिये, माटी पर पानी भरकर टुकड़ों को लेकर जोड़ने का प्रयास करती दीवार से चिपकी बैठ गई, माधो भी बगल में बैठा उनके अंगों उपांगों की फिर से मरम्मत करने लगा।

मन भारी हो रहा था, जी तो चाहता था कि रो ले लेकिन अब तो रोने का भी समय नहीं बचा था। आवश्यकताओं का आसमान सिर पर खड़ा था। माधो घर की टूटी छत देखता फिर अधरोई सी लहरिया को, किसको क्या कहे? कुछ समझ नहीं आ रहा था, सहसा सारे आकाश उसे उसके ऊपर गिरते हुए से प्रतीत हो रहे थे, मन बार-बार प्रश्न कर रहा था आखिर ये सब... अब किस रीत से समेटेगा? कौन सी युक्ति लगेगी? मन के प्रश्नों का उत्तर भी तो मन को ही देना होता है, वो बात और है कि हम सुनें ना सुनें। माधो का मन भी भारी साँसों से बोला क्या युक्ति और क्या रीत, जो भी है ये दो हाथ ही हैं।

# हठी ख्वाहिशें

दो दिन हो गये थे, लहरिया अब लहँगे के लिये हठ बाँधकर बैठ गई थी... ना ढंग से खाती ना पीती, राधिका, माधो, दद्दा डाँट डपटकर, प्यार मनुहार से हर तरीके से उसे मनाते रहे लेकिन कोई असर नहीं। माधो का भय उसे सच होता प्रतीत होने लगा था। लहरिया अब ना किसी से बात करती, ना हँसती ना खेलती, कोई कुछ कहता तो बस यही कहती–

*नीला लहँगा चइये! दिनरात चिन्ता में डूबा... लहरिया को मनाने की कोशिशों में लगा रहता।*

सबेरा हो गया था, उनींदी आँखें लिये लहरिया आकर चबूतरे पर चुपचाप बैठ गई, देर तक बिना कुछ कहे बैठी रही, राधिका और माधो ने उसे बैठे देखा, कभी शान्त ना बैठने वाली लहरिया ऐसी गुमसुम बैठी है जैसे कोई सयाना बैठा किसी गहन सोच में डूबा हो। राधिका और माधो ने एक दूसरे को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा, राधिका उठकर उसके पास गई और गोद में उठाते हुए बोली–

*का हुआ हमाई रानी को? ऐसे काहे बैठी है?*

लहरिया अब भी कुछ नहीं बोली, गोद से उतरकर सीधे दद्दा की खाट पर बैठ गई, दद्दा ने दुलारा तो उनके कांधे से चिपक गई।

*अरे! हमाई लहरिया को का हुआ?*

*दद्दा! अम्मा बाबू ने नीला लहँगा नई पहराया, अब तुम हमें नीला लहँगा दिबाओ!*

*नीला लहँगा? दद्दा ने कहा*

अब तक माधो भी पास आ गया था, उसने कहा– *बाबू तुझे नीला लहँगा पहरायेंगे बेटा!*

*बाबू! आज हम सपना देखी थी!*

*हाँ... सच्ची का देखी हमाई सोनचिरैया? माधो ने थोड़ा बैठते हुये पूछा...*

दद्दा के कांधे से कूदकर बाबू की पीठ पर चढ़कर बोली–

*हमने नीला लहँगा पहना था बाबू! बो बहुत चमचम करता था, इत्ता सुन्दर था, हमने बहरिया से बड़म–बड़म करा था जैसे अम्मा करती है, पर बड़ी पुख्खिन ने छुड़ा लिया, बोली बो उनका है, बाबू हमें अभी चइये लहँगा!*

माधो बोला– *बड़ी पुरखिन को थोड़ी देंगे हम लहँगा, हम तो अपनी लहरिया को देंगे, खूब सुन्दर सा!*

लहरिया अचानक गुस्से से पाँव पटकती बोली– *चइये... अभी चइये।*

दद्दा ने उसे पकड़ने की कोशिश की तो उसने हाथ फटकारते हुए दद्दा को अपनी नन्ही–नन्ही हथेलियों से तमाचे जड़ दिये। ये देखकर राधिका बखरी से दाँत किटकिटाती तीर सी दौड़ी आई और उसका कान पकड़कर चिल्लाई–

*हट्ट! नीला लहँगा... नीला लहँगा... लहँगा ना हुआ, प्रान हो गये... इतनी चतुर हो गई तू कि दद्दा को मारेगी... हाथ–पाँव टोर के धर दूँगी अबसे किसी बड़े पे हाथ उठाते और चिल्लाते देखा, जितना पुचकारो उतना खोपड़ी चढ़ी जाती है।*

दद्दा ने राधिका को हट्कारा– *हट्ट! लरका बच्चा है, कहीं ऐसे समझाया जाता है का...*

इतना कहकर दद्दा ने रोती लहरिया को फिर पकड़ने की कोशिश की

तो नीला लहँगा चइये... अभी चइये.. रोती चिल्लाती भाग गई।

माधो पीछे जाने को हुआ तो राधिका ने कहा–

*तुम्हें मेरी सौगंध है, उसके पीछे बिल्कुल ना जाना... ऐसी हठें पूरी करने की हिम्मत है का हममें? जान दो कम से कम समझ आयेगा कि का मिल सकता है उसे का नहीं।*

लहरिया अपने कोपभवन यानि पीपल के पीछे की खोह में बिराज गई, थोड़ी देर बाद बच्चों की जमात भी इकट्ठी हो गई, लहरिया को यूँ मुँह फुलाये देख, कल्लू हँसी उड़ाते हुए बोला– *लो फिर बैठ गई गुब्बारे सी फूल के!*

सब बच्चे हँस दिये, छज्जन हँसा और बोला– *आजकल कौन बात पे तू ऐसी रिसानी रहती है?*

लहरिया बोली– *हमें नीला लहँगा चइये!*

*नीला लहँगा तो बजार में मिलता है... कल हम बुआ के साथ गई थी... इत्ता सुन्दर था कि का कहूँ! सुखनी बोली*

*लहरिया की आँखें चमकी... अच्छा! बजार कहाँ है? हम भी जाऊँगी लेके आऊँगी!*

*छज्जन इतराते हुये... सड़क पे जो बस आती है उसपे चढ़के जाते हैं बजार... मेरी अम्मा लिवा गई थी मुझे!*

लहरिया हँसी और उठकर चल दी, सब बच्चों ने एक साथ पूछा कहाँ को जाती है? तो बिना कुछ बोले दौड़ लगाती चली गई।

बच्चे भी तितर–बितर हो गये। दो घंटे से ज्यादा हो गये थे लहरिया अब तक नहीं आई, राधिका ने कहा– *एक बार देख तो लो इतनी देर से तनक भी आवाज ना आई उसकी!*

माधो उठा और बाहर की तरफ चला गया। राधिका भी पीछे से गई, पीपल के नीचे लहरिया नहीं थी, माधो तेज कदमों से और आगे तालाब

की ओर बढ़ गया, राधिका मढ़िया की तरफ गई, छज्जन ओ छज्जन! चिल्लाती हुई घिटोई की कुठरिया में दाखिल हुई, छज्जन रोटी खा रहा था। राधिका की आवाज सुनकर घिटोई और छज्जन दोनों उठ खड़े हुए!

*का हुआ, ऐसी गुहारें पारती क्यों चली आ रही? घिटोई तुनककर बोली*

राधिका ने छज्जन को पकड़ा और बोली- *बेटा! बता तो लहरिया को देखा का तूने, कबसे ढूँढती हूँ मिलती ही नहीं?*

*नहीं चाची, वो तो पीपरा के पास बैठी थी... नीला लहँगा... नीला लहँगा चिल्ला रही थी, फिर वो भग गई तो हम लोग भी भाग आये... हमने नहीं देखा।*

राधिका धम्म से देहरी पर माथे पर हाथ पटकती बैठ गई, हे महामाई! मेरी गलती है, ना उसे कुछ कहती ना आज मौड़ी बिलाती! इतना कहकर राधिका रोने लगी, घिटोई ने उसके कांधे पर हाथ फेरकर दिलासा देते हुए कहा-

*अरे कहाँ जायेगी, खेलती होगी कहीं... ऊटपटांग क्यों सोचती है... चल मैं भी चलती हूँ यहीं कहीं होगी।*

*वहाँ से निकली तो माधो पसीने में तरबतर... मिल गयी... मिली क्या?*

*नहीं?*

*सब कहीं देख आया, मौड़ी कहीं नहीं, ना जाने कहाँ होगी?*

माधो का चेहरा फक्क पड़ गया था। राधिका ने भय गुटकते हुए उसके कांधे पर हाथ रखा तो उसने जोर से झटक दिया-

*तू बड़ी उसे बताना चाहती थी कि हम का कर सकते हैं का नहीं, बच्चा है अभी से का दीन दुनिया सब सीख जायेगी, पर नहीं तू तो बड़ी ज्ञानी है, अब ढूँढ कहाँ है मौड़ी।*

राधिका रोने लगी, घिटोई दोनों को चुप कराते हुए बोली- *थाने में रपोट कर दो!*

राधिका रोते-रोते बेसुध सी हो चली थी, घिटोई ने उसे सम्हाला और पेड़ के चबूतरे पे बैठा दिया। तभी दूर से हरदेई लहरिया को लिये आती दिखाई दी...

माधो ने देखा तो गिरता पड़ता उसके पास पहुँचकर उसने लहरिया को चपेट लिया- *कहाँ गई थी तू? हम कितने परेशान हो गये थे।*

> *अरे दादा! बाल-बच्चा को थोड़ी ख्याल रखा करो, वो तो कहो मैं आज खेत गई थी। मौड़ी सड़क पे बैठी थी, मैंने पूछा कि यहाँ क्यों बैठी है तो कहती है... बस पे बैठ के बजार जायेगी... नीला लहँगा लेने!*

राधिका और माधो एक दूसरे को बस देख रहे थे, माधो का भय सत्य घट रहा था, ख्वाहिशें और जीवन के दोराहे पर खड़े राधिका और माधो को अब नया रास्ता खोजना था, लहरिया को सहेजने का संवारने का, पर कमबख्त जीवन अपने मार्गों का निर्माण भी तो स्वयं करता है।

लहँगे के लिये लहरिया का यूँ चले जाना दोनों को अन्दर तक झकझोर गया था। हर समय एक भय उनके मन में अड़ा रहता, थोड़ी-थोड़ी देर में लहरिया को देखते रहते। मन में जैसे किसी गाढ़े अंधेरे ने घर कर लिया हो जिसको मिटाने के लिये कोई प्रकाश की पतली रेख भी नहीं दिखाई पड़ रही थी। बस एक ही मार्ग था जो उनके हुनर और मेहनत के गलियारे से होकर ही गुजरता था और वे दोनों उसी का सिरा थामे आगे बढ़ रहे थे।

आकाश में अंधेरा घना हो चला था। राधिका ने लालटेन जलाई और माधो के पास रख दी। उसने लकड़ी की छोटी-छोटी कुचियाँ थाम लीं, इस काली रात में रंग भरना भी सहज नहीं था लेकिन हुनर जब हिम्मती हो उठे तो क्या अमावस क्या पूनम? लालटेन के टिमटिमाते प्रकाश में

भी उसकी उंगलियाँ ऐसे चल रहीं थीं जैसे उसकी हरेक उंगली पर सूरज की किरणें उग आई हों।

चौथा पहर जाने को था ऊपर आकाश पर बादलों ने नारंगी सफेद आसमानी रंगों से चित्र भरना शुरू कर दिया था। यहाँ माधो की माटी की पुतरियों में भी लाल नीले रंग बिखर गये थे। गुड़ियाँ नीले-नीले लहँगे, लाल-लाल चुनरियों और सुनहरे रंग के रंग-बिरंगे गहनों से सज गई थीं, माधो की बखरी भोर की आभा में ऐसी प्रतीत होती थी जैसे इन्द्रधनुष इन रंग-बिरंगी पुतरियों का रूप धरके बिराज गया हो।

राधिका ने कूची किनारे रखकर सारी रंगी गुड़ियों पर दृष्टि डाली तो ऐसा लगा किसी ने नौतपा के ताप पर शीतल जल की फुहारें बरसा दीं हों। अपने हाथों से सजी संवरी गुड़ियों को देखकर खिल उठी-

*अहा! कितनीं सुन्दर लगतीं हैं देखो तो, जो भी देखे मोह जाये, देखना बहुत अच्छा दाम मिलेगा हमको? अगर इतनी टूटीं ना होतीं तो समझो सबरी मुसीबतें टल गईं थीं। एक लम्बी साँस भरते हुए फिर बोली- अब जो है सो है।*

माधो- *इन्हें देख के हिम्मत बंध गई है, दिन-रात एक करके आखिरकार बना ही लीं।*

इतने में लहरिया कोठरी से अम्मा! अम्मा! चिल्लाते बाहर आ गई, माटी की गुड़ियों को रंग नीले-लाल लहँगे चुनरियों में सजा देखकर, उनके सारे इन्द्रधनुषी रंग उसके चेहरे पर उतर आए। लहरिया की नजरें गुड़ियों पर ही टिकीं थीं, आँखों को कोनों को उठाकर अम्मा को देखती फिर ठहर जाती, ख्वाहिशें खुश होकर उसके चेहरे पर नाच रहीं थीं!

उसने गोल-गोल आँखें उठाईं और बाबू के बगल में जाकर खड़ी हो गई, मौन थी पर माता-पिता तो बच्चों के मौन को भी सहज ही पढ़ लिया करते हैं।

*का है बेटा, ऐसी क्यों खड़ी है?*

*बाबू...बाबू...*

*हाँ बोल ना!*

*रुआँसी होकर बोली– इन सबको नीला लहँगा पिना दिया तुमने और हमें?*

माधो ने काम करते–करते कहा– *तेरा लहँगा भी लाऊँगा बेटा!*

*नई... नई... हमें नीला लहँगा चइये... अभी चइये... इन सबको कैसे पिना दिया, हमें अभी चाहिये! पाँव पटकते हुए लहरिया माधो के सामने धम्म से बैठकर रोने लगी*

माधो ने रूककर कहा– *तू फिर जिद करने लगी, इनका ये नीला लहँगा तो रंग से बना है, तू कैसे पहन सकती है, तेरे लिये तो दूसरा लायेंगे।*

अब तो लहरिया और जोर से रोते हुए धरती में लोट–लोटकर बस एक ही बात चिल्लाती है– *नीला लहँगा चइये... चइये... चइये!*

माधो कुछ सख्त होते हुए बोला–

*अरे... अरे...! कितनी जिद करने लगी है, उठ यहाँ से नहीं तो जो कभी ना हुआ वो आज हो जायेगा, मारूँगा मैं तुझे!*

लहरिया ने बाबू को इस तरह गुस्सा करते कभी नहीं देखा था लेकिन आज उनकी कड़क आवाज सुनकर काँप गई, उठकर पाँव सरकाती भीतर को चली जाती और पलट–पलटकर बाबू को देखती जाती।

राधिका ने माधो की इतनी तेज आवाज सुनी तो देहरी पर आ गई, लहरिया बिसूरते हुए अम्मा की कमर से चिपककर जोर–जोर से रोने लगी।

*का हुआ? राधिका ने उसे कसकर छाती से चिपका लिया और चूमते हुये... जिद नहीं की जाती बेटा! जब बाबू ने कहा नीला लहँगा ला देंगे तो काहे गुस्सा दिलाती है उनको।*

लहरिया सुबकते हुए धीरे से बोली– *अभी चइये नीला लहँगा!*

राधिका ने लहरिया को दुलारा पुचकारा हजार बार समझाया लेकिन बाल ख्वाहिशें तो बस रंग देखती हैं उन्हें धागों की बुनाई से क्या लेना देना, लहरिया जैसे किसी पत्थर की लकीर सी अड़कर बैठ गई थी, सुबह से दोपहर हो गई, ना कुछ खाया, ना ही खेलने गई खटिया पे पड़ी-पड़ी थोड़ी-थोड़ी देर में चिल्लाती- *हमें नीला लहँगा चइये, अभी चइये!*

दिन ढल चला था, लहरिया दिनभर से रोते-रोते बिना कुछ खाये सो गई। राधिका ने ब्यारी के लिये आवाज दी तो माधो भीतर आया।

माधो लहरिया के सिरहाने चुपचाप बैठ गया उसके सिर पर दुलार का हाथ फेरता हुआ बोला-

*समझ नहीं आता कि कैसे जूझूँ इस समस्या से... का करूँ इतना बेबस हूँ कि एक लत्ता भी नई दिला सकता... इससे अच्छा तो जे हाथ ही काट फेंकूँ!*

उसकी विवशता जैसे शब्दों से बह रही थी, राधिका बिना कुछ बोले थाली परसने लगी। माधो लहरिया के बगल में लेटा छपरे की दरारों से झाँकते अकाश के नक्षत्र पिण्डों से जैसे कोई उम्मीद माँग रहा था। राधिका ने थाली परस कर रखी लेकिन माधो जल्दी से उठकर चला गया। राधिका चिल्लाती रही-

*अरे बताते तो जाओ कहाँ जा रहे हो?*

लेकिन वो अनसुना करके निकल गया, अभी रात बहुत नहीं हुई थी, इसलिये सीधे कोठी पर जा पहुँचा। बड़ी पुरखिन बाहर फाटक के तखत पर बैठी मिल गईं।

*माधो को देखकर बोलीं... आओ... आओ... माधो! तेरे तो बड़े दिनों बाद दरशन हुये, माटी पाते ही छूमंतर हो रहे तुम दोनों खसम लुगाई पूरा पखवारा होने को है?*

माधो ने बड़ी पुरखिन के दूर से पाँव छुये और चुपचाप सामने ही धरती पर बैठ गया-

*ना बड़ी पुरखिन! ऐसी बात ना है, तुम तो हमाई बड़ी-बूढ़ी हो, तुमाई तो गुस्सा भी नसीब वालों को मिलती है, चैत के मेले की तैयारी में लगे इसलिये ना आ पाये।*

*...खदनिया तक तो पचास बार आये गये तुम दोनों, कभी झूठे ही पूछ जाते... उस रोज तो ऐसे बातें करके गये थे कि का कहूँ, खैर छोड़... रात गई बात गई अब बता कैसे इतनी रात आना हुआ।*

*...बड़ी पुरखिन! मेला में कुछ सामान बिक जाये तो चौमासे से पहले छपरा छबवा लें, नईं तो मुसीबत हो जाएगी।*

बड़ी पुरखिन ने भवें टेढ़ी कीं और आलस भरा हुँकारा भरा, चूना दाँत से काटते हुए बोलीं-

*हम्म! बो भी जरूरी है, खूब मेहनत करो, दो चार बासन हमारे भी भिजवा देना।*

माधो कुछ सकुचाते हुए बोला- *आशीर्वाद बना रहे, बासन भी अच्छे ले आऊँगा, आज बो... बो... गगरियन के पैसा मिल जाते तो...*

बड़ी पुरखिन शब्द झटकती बोलीं- *हैं का कही, कौन से पइसा?*

इस प्रश्न पर माधो के तो जैसे पैरों के नीचे की धरती डोल गई हो, कहीं भूली तो नहीं जातीं... ऐसा हुआ तो मरग मौत हो जायेगी मेरी तो, मन में प्रश्नोत्तर करता हुआ बोला- *पुरखिन बो ब्याह के बासन...*

बड़ी पुरखिन ने तुनककर बीच में ही बात काटीं-

*अपने पैसे तुझे कैसे याद रहते हैं, और हमारे भूल जाता है। चलो माना हमें ब्याह के बासनों के पैसे देने हैं... कितने देने हैं कोई जागीर तो देनी नहीं और बता तेरे ऊपर हमारे कितने आते हैं गिनाऊँ?*

*ना... ना... बड़ी पुरखिन, बड़ी जरूरत आन पड़ी इसलिये..*

माधो लज्जा से जैसे धरती में गड़ा जाता हो, मन को कोसते हुए कहता– कहाँ से आ गया कमबखत पइसा माँगने कौन मड़वा हूचा जाता था, दे देतीं जब देना होता!

बड़ी पुरखिन फिर बोलीं– *और ये भी बता तो आधी रात तू पइसा माँगने चला आया जैसे हम मार के भागे जाते थे, रहते तो इसी गाँव में हैं?*

माधो– *नईं ऐसी बात नईयाँ, आज थोड़ी जरूरत आन पड़ी है... बस?*

बड़ी पुरखिन ने अपना बटुआ खंगालते हुए पूछा– *बता कितना हुआ तेरा पइसा... बैसे माटी के भी बकाया हैं हमाये तुझ पर बो कब देगा?*

माधो– *बीस गगरी के बजार के हिसाब से तो आठ सौ होते हैं, आप छह सौ ही दे दो!*

बड़ी पुरखिन तुनककर बोलीं– आ... हा... हा... हा...देखो तो कैसा आसमान भाँकता है, एक गगरी कितने की लगाई है रे तूने?

माधो– *एक गगरी चालीस की आती है, आप तीस की ले लो और का?*

बड़ी पुरखिन की त्योरियाँ और चढ़ गईं– *तू बीस गगरियों के बदले सारा घर ना ले ले हमारा, ऐसे बोल बोलता है कि का कहूँ।*

माधो– *बड़ी पुरखिन! आठ सौ रुपैया भर की है क्या कोठी?*

बड़ी पुरखिन– *हिम्मत तो देखो कैसे बोलता है... लुगाई का रंग तुझपे चढ़ रहा है।*

माधो– *क्षमा करो बड़ी पुरखिन, इतनो बड़ो हसम पल्लो है आठ सौ रुपैया का हैं तुमाए लाने।*

बड़ी पुरखिन– *यही कहते–कहते गाँव का हर कामदार आ जाये तो हम तो सड़क पर बैठ जायेंगे, ये ले दो सौ रुपये और जा यहाँ से ज्यादा मुँहजोरी ना कर।*

माधो– *अरे बड़ी पुरखिन जे तो बहुत कम हैं, सोचो तो का आता है दो सौ रुपये में आजकल?*

बड़ी अम्मा ने दो सौ–सौ के नोट माधो की तरफ उछाल दिये और तमतमाती हुई बोलीं–

*लेना हो ले, नई तो ये भी ना मिलेंगे माटी के काट लूँगी। और हाँ! हमऊँ जनमभर से यही माटी में रहत आ रहे हैं... बड़ा माटी में रहने वालों को माटी का मोल बताता है, जा यहाँ से।*

सम्भवतः यही सत्य है हम मनुष्य स्वत्व का मोल समझे बिना एक ऐसी चमक को हीरा समझ लेते हैं जो खोखली है... हमारे स्वयं के एक धक्के से धराशायी हो जायेगी, क्या होता है बड़ी–बड़ी बातों का लोग तो कहेंगे माटी में मिलाइये पर इस सत्य से भिज्ञ होते हुये भी अनभिज्ञ रहेंगे कि माटी में जो भी मिलता है वो नश्वर से अस्तित्व के स्वामी होने की क्षमता को पा लेता है।

माधो सौ–सौ के दो नोटों को हाथों से सहलाता हुआ कुछ देर देखता रहा, फिर बोला–

*बड़ी पुरखिन, ना छह सौ दो, कम से कम सौ तो और दे दो, आजकल इतने में कहाँ मिलती हैं गगरीं, मँहगाई का जमाना है, हम गरीबन के बारे में आप जैसे बड़े ना सोचेंगे तो हम मर ना जायेंगे?*

*बड़ी पुरखिन बड़बड़ाती हुये... हाँ तो बड़े आदमी हैं तो दुनियाभर का ठेका नहीं लिखाया। जोगी तो हैं नहीं घर–परिवार हमारा भी है और वो परिवार कोई हवा पीके तो जीता नहीं, माटी का इससे ज्यादा मोल किसी गाँव में कोई नई देता, अब बहस करना हो तो ये भी दे जा, खदनिया से जो बोरी भर–भर माटी ले जाता है उसके सबसे कम तुझसे रुपये लेती हूँ फिर भी तुम औरों के लिये कुछ किया करा नई होता।*

माधो– *बड़ी पुरखिन! पूछ लो अपने कामदार से जितने सब देते हैं उतने ही हम देते हैं।*

बड़ी पुरखिन की पेशानी अब और सख्त हो गई थी, कड़कड़ाते हुए गुर्राईं– *माधो! भग जा यहाँ से अब मेरा दिमाग ना खराब कर... नईं तो कल से ढेला ना पायेगा माटी का।*

माधो ने पैसे अपनी शर्ट की जेब में डाले और कहा– *ठीक है, आशीर्वाद बना रहे आपका, यही बहुत है।*

इतना कहकर उसने धरती के पैर छुये और कोठी से बाहर आ गया, खुद से लड़ता हुआ घर की तरफ बढ़ गया–

> *जानता था कि बड़ी पुरखिन दो सौ से एक नया पैसा ज्यादा नहीं देंगी... चाहे जितनी नाक घिस लेता, फिर भी इतनी बहस करने की का जरूरत थी...*

मन की कोसना किलपना करता हुआ माधो घर पहुँचा तो राधिका ने कहा– *इतनी जल्दी में कहाँ निकल गए थे... मैं तो पीछे से चिल्लाती ही रह गई?*

माधो– *कहीं नहीं, चल रोटी दे दे!*

ब्यारी करके माधो खटिया पर कुछ देर पड़ा रहा लेकिन नींद ने उसकी खटिया की तरफ रुख अब तक ना किया था। राधिका और लहरिया सो चुकी थीं। माधो धीरे से उठा लालटेन जलाई और गुड़िया बनाने बैठ गया। सबेरा हुआ तो पन्द्रह गुड़ियाँ उसने और बना ली थीं। रात की उदासी इस मिट्टी में ढलकर कुछ खुश हो चली थी, माधो आज सबेरे से तैयार हो गया।

राधिका ने पूछा तो बोला– *बड़े बाजार जा रहा हूँ, कुछ सामान लेना है!*

राधिका ने कहा– *घर में मुश्किल से पचास रुपये तो हैं नहीं, सामान कहाँ से लाओगे?*

> *...कल बड़ी अम्मा से गगरियों के पैसे ले आया था।*
>
> *...कितने दिए?*

*...उपेक्षित हँसी के साथ... कितने दिये होंगे... काये तू नहीं जानती का?*

राधिका ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा– *हाँ बड़े घरन के छोटे कलेजे! वैसे का लेने जा रहे हो?*

*इन दो सौ रुपल्ली में और का आयेगा, कुछ रंग और ले आऊँ, कुछ और पुतरियाँ बना जायें तो बन जायेंगी, मुझे शायद आते कुबेरा हो जाये... तू जाकर मिट्टी ले आना।*

*...मिट्टी, कुछ कहेगी तो ना डुकरिया?*

*...अरे कुछ ना कहेगी और कौन तुझे कोठी जाना है सीधे खदनिया जाना!*

माधो इतना कहकर सीधे बाजार की तरफ निकल गया। लहरिया कुनमुनाकर उठी तो राधिका ने आवाज दी चल आज तुझे सीधे कुएँ पर ही नहला देती हूँ।

लहरिया रुखाई से बोली– *हम नहीं नहाऊँगी और उठकर पाँव घसीटती मुँह उरमाये पीपल की खोह की तरफ घुटनों में मुँह दबाये बैठ गई..* राधिका पीछे–पीछे पहुँची तो और सिकुड़कर बैठ गई।

*अब तक रिसानी बैठी है, तुझे कित्ती बार समझाया बेटा समझ नहीं आता, तेरा लहँगा आ जायेगा कुछ हो ना हो पर अभी चल! लहरिया अम्मा पर जोर से चिल्लाई - हम नई जाऊँगी, तुम जाओ!*

राधिका भी दाँत मीसते चली आई–

*बैठी रह, जब भूख प्यास लगेगी तो अपने आप आयेगी, ऐसी जिद तो कभी ना पकड़ती थी इतने दिन हो गये इसे लहँगा है कि बिसरता ही नहीं...*

*अब का समझाऊँ इतनी बड़ी भी तो नहीं कि गिरी छत का*

*मोल समझ ले, सूखे चूल्हे का मोल समझ ले, बूढ़े-बाप के जीवन का मोल समझ ले!*

*काश मैं भी ऐसी ही बच्ची होती तो रो ठुनककर बैठ जाती, तू ही अच्छी है बेटा! तेरे माथे पर प्रेम का हाथ धरने वाला कोई है वरना हम तो सिर्फ भट्टे और गालियाँ खाने के लिये होते हैं।*

# मन के उलाहने

नवरात्रि आने को थी बड़ा बाजार खूब झिलमिला रहा था। देवी माँ के साजो सामान से लेकर उपवास के भिन्न-विभिन्न प्रकार के कलेवों से दुकानें सजीं थीं। शादी ब्याह के सामानों से दुकानें अटी पड़ीं थीं। रंग-बिरंगे, चमचमाते लहराते कपड़े, चूड़ी बिन्दी, गहने, खेल-खिलौने, बर्तन भांड़े, बताशे मिठाई।

मटमैला, मिट्टी के पीलेपन को आत्मसात् किये हुए कुरता-पैजामा पहने माधो बाजार में घूमते-घूमते जब भकभके कपड़ों को देखता तो एक हूक, एक ख्वाहिश हो उठती थी कि काश मैं भी ऐसे सजीले कपड़े पहन सकूँ फिर खुद से ही कहता कि देखो तो मेरा मन जब ऐसा लालची हो सकता है तो फिर लहरिया तो बच्चा है। आहा... कितनी बढ़िया कमीज है, जब पैसे हुए तो येई हरी कमीज लूँगा अपने लिये।

लेकिन जेब तभी एक थपड़ी मन को लगाती- *चुपचाप आगे बढ़ जा।*

आगे चला तो चकाचौंध ही चकाचौंध... और तो और भीड़ ऐसी कि रेलमपेल मची हुई थी। दुकानों पर खड़े होने को साँस ना थी। इस बाजार को देखकर तो लगता था जैसे गुरबत, गरीबी जैसे शब्द तो केवल किताबों में लिखने के लिये बनाये गये हैं लेकिन दूर से दिखती इस भीड़ के करीब से गुजरकर ही पता चलता था कि कौन किस तरह से थोड़े से पैसे जमाकर अपने सुख खरीदने आया है।

पत्नी को पसंद आई चकमकी साड़ी के दाम सुनकर जब पति जेब में

पड़े नोटों को थथोलता तो पत्नी की आँखें उस अनकहे शब्द को पढ़कर खुद ही वो साड़ी दूर हटा देती और कहती- *रातभर के लिये का इतना खर्चा करना, कौन सब हमें देखने को बैठे हैं। कुछ ज्यादा ही झिलमिली है अब उम्र नहीं रही ऐसी धोतियाँ पहनने की...* लेकिन इतना कहने के बाद भी चोर नजरें उसी धोती पर ही गड़ी रहतीं।

पति पत्नी के भाव समझकर मन मसोस करके रह जाता और मुस्कुराकर कहता- *अरे नहीं! ले लो कौन में हिम्मत जो तेरी उमर को देखे, तू नई दुलहिन से कम है का? अरे भइया दे दो वो धोती, मायके का ब्याह है, नाक का सवाल होता है।*

दुकानदार और पति ठहाके लगाते हैं, पत्नी तुनककर कहती- *मायके से क्या मतलब, नाक का सवाल का तुम्हारे घर के ब्याह में नहीं होता, धरे रहो, अब ये धोती तो ले ही नहीं सकती, तुम दूसरी दिखाओ लाला।*

पति मनुहार करता- *ठीक है! हम तो यूँ ही हँस रहे थे... गुस्सा काहे होती है, ले ले।*

पत्नी तरेरते हुए कहती है- *ना कह दिया सो कह दिया अब ना लूँगी।*

पति लम्बी साँस भरते हुए कहता है- *अब तेरी जैसी मर्जी पर हमें बाद में उलाहना ना देना।*

पत्नी ने तिरछी आँखों से पति को तरेरा, एक सस्ती सी धोती खरीद ली और अर्धसुख की मुस्कान लिये हाथ में थैला उठाकर पति के साथ बाहर आ गयी। मन के भावों को समझना और उनका हल निकालने का इससे बेहतर कोई और उपाय नहीं होता है गरीबी के पास, मान और सामान दोनों का मोल रह गया।

लगभग हर दुकान पर ऐसी ही कहानी थी पर फिर भी दुनिया के इस बाजार में सब रूठते मनाते कुछ ना कुछ खरीद रहे थे। किस्मत ने जीवन के लिये दर्द लिखा था लेकिन ये धड़कते लोग किस्मत की उस योजना को प्रतिपल ठेंगा सा दिखाते हुए छाती चौड़ी करते हुये चलते हैं।

इस खामोश से झगड़े और मनुहार में माधो का जी किसी पिंजरे फँसे कबूतर सा फड़फड़ा उठा- *आह! मेरी राधिका को भी कम से कम एक नई धोती दिबा देता।*

पर मन के पक्षी को मरोरकर माधो आगे चला तो एक दुकान पर नीले रंग के सितारों से जड़े लहँगे ने जैसे उसके पैर जकड़ ही लिये, अनदेखा करने का प्रयास किया लेकिन वो नीला रंग जैसे अपने हाथ से उसका मुँह पकड़कर अपनी ओर कर रहा था, उसके सितारे हाथ पकड़कर दुकान तक घसीट रहे थे।

माधो ने जेब पर हाथ रखा, अंगोछे से मुँह पोछा और दुकान की तरफ बढ़ गया। दुकान पर भारी भीड़ थी कुछ देर खड़ा-खड़ा लहँगा देखता रहा फिर जाने को हुआ तो दुकानदार ने पूछा- *अरे भाईसाहब! क्या चाहिये, भीतर आओ!*

माधो- *ये लहँगा?*

दुकानदार- *कितने साल की है आपकी बच्ची?*

माधो हाथ ऊपर उठाकर बोला- *इतनी है, वैसे तीन... शायद साढ़े तीन साल की होगी।*

दुकानदार- *हाँ ये नाप सही आ जायेगा।*

उसने लहँगा ऊपर से उतारकर सामने गद्दे पर फैला दिया, माधो ने हिम्मत करके हाथ से छुआ तो जैसे लहरिया वो लहँगा पहने उसके सामने खड़ी होकर कह रही हो-

> *बाबू! देखो... हम कित्ते सुन्दर लग रहे... हम भी दुलहिन बन गये... अब कोई हमें लहँगा छूने पर नहीं डाँटेगा, अब तो हमारे पास भी है।*

जैसे लहरिया लहँगा पकड़कर घूम घूमकर नाच उठी थी। बाबू को एक लाख बार चूम लिया था। राधिका की आँखों में जैसे खुशी पसीज गई हो। पलभर में माधो ने उस सुख को ऐसे जी लिया था जैसे वो

अभी-अभी उसकी आँख की पुतलियों में घट रहा हो।

मन की गंगा ने कितनी ही हिलोरें लेकर सुख के आकाश छू लिये थे लेकिन कमबख्त मन भी बड़ा छलिया होता है। इसकी हिलोरों को कौन देख पाया है, इसके पाँव इतनी तेज दौड़ते हैं कि हकीकत बहुत पीछे छूट जाती है, जब घसीटकर पीछे लाओ तो ऐसा वार करता है कि ना कराहते ही बनता है, ना ही रोते लेकिन मनुष्य के भीतर बैठे दोहरे आदमी आपस में जिरह करते रहते हैं, ये जिरह ही उस बाहर के पुतले को संचालित करती है बस सबकुछ इस बात पर टिका होता है कि भीतर का कौन सा वकील कितना मजबूती से अपना पक्ष रख पाता है। हालाँकि वो भीतर का काला मानुष बड़ा चतुर होता है उसे पता होता है कि इस दूसरे वाले को कहाँ धर दबोचना है।

मन की विवेचनाओं मीमांसाओं में डूबे माधो को दुकानदार ने हिलाया- *यही दे दूँ भाईसाहब! कि और दिखाऊँ?*

माधो ने एक झटके से पलकें फड़फड़ाई और थूक गुटकते हुये बोला- *हाँ... हाँ... कितने दाम का है ये?*

दुकानदार- *वैसे तो छह सौ का है, लेकिन आप पचास कम दे देना।*

माधो ने कुछ ऐंठते हुए कहा- *हम रोज के ग्राहक और हमीं को ठगोगे? ठीक... ठीक... लगाओ तो सोचें कुछ।*

दुकानदार- *इसलिये तो आपको बिल्कुल खरीदी के दाम लगा दिये हैं।*

माधो- *पचास रुपये कम कर दिये तो ऐसे बोलते हो जैसे कुबेर खाली कर दिया हो, ठीक-ठीक लगाओ।*

दुकानदार- *अरे भाईसाहब! पचास रुपये कम होते हैं क्या? एक लहँगे पर हमें इतने भी नहीं मिलते, चलो ठीक है आप अपने ही दाम बता दो कितने दोगे?*

माधो ने जेब थथोली, कुछ बोलने को हुआ तो जैसे किसी ने भीतर से उसकी जिह्वा की कलाई पकड़कर चलने से रोक दिया हो, वो भीतर

के दोनों मानुष एक-एक करके उसके कानों में आके अपने-अपने तर्क कहते हों जैसे!

*पहला डाँटते हुये....उठ जा! जितनी चादर हो उतने पाँव पसारना चाहिये... बिटिया की एक ख्वाहिश पूरी ना होगी तो का जीवन रुक जायेगा। मान का जीवन ही सबसे बड़ा है।*

*दूसरा ठठाकर हँसा... आहा...हा.... प्रवचन सुनो मान का जीवन सबसे बड़ा होता है, अरे हट्ट काये का मान! तब कहाँ जाता है ये मान जब धन का कोई महारथी आकर अपनी एड़ी तले घिस के चला जाता है। बड़ा आया मान वाला हूँह! तू तो चुपचाप उठा और निकल जा, इतने कपड़ों में एक दो इधर उधर भी हो जायें तो कौन पता चलना है। जीवन जो कुछ है आज है अभी है, जी ले चुपचाप निकल जा!*

*....क्या कहता है, कल बिटिया पूछेगी तो क्या कहेगा चोरी कर लाया है, क्या सीखायेगा उसे!*

*....जब पूछेगी तब ना, उसे का मतलब कहाँ से कैसे आया है? हाँ तू बस खुरचते रहना तो जरूर बेचारा मरेगा सोच-सोच के पर ऐसे अभिमान, सत्यनिष्ठा, गौरव को क्या नोंच-नोंच के खुश रहा जा सकता है क्या?*

*... पर जीवन की पवित्र सम्पूर्णता इन्हीं से है, जो तुम कहते हो वह पाप है, पाप का फल सदैव बुरा होता है।*

*.... तो अभी कौन सा सुख भोगता है जो और बुरा होगा और जरा तू ये बता जब दूसरों को हँसते मुस्कुराते जीते देखेगा तो जो इसके मन में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध होगा वो क्या बड़ा पुण्य होगा? वे क्या अवगुण नहीं? तू ये मान ले जीवन अवगुणों से अछूता नहीं रह सकता, अरे दिन-रात जीवनभर गंगा में डूबे रहने वाला मछुआरा भी पाप से मुक्त नहीं!*

माधो इससे आगे कोई तर्क सुनता उससे पहले दुकानदार ने कहा- *बताओ भाई क्या सोचते हो!*

माधो ने थरथराते शब्दों को कसकर कहा- *अरे ये कोई खास नहीं कुछ और दिखाओ!*

दुकानदार ने और लहँगे उसके सामने बिछाने शुरू कर दिये। एक के बाद एक लहँगों का ढेर उसके सामने था। माधो हर लहँगा उठाकर उलट-पलटकर देखता और कनखियों से उस विक्रेता की निगाहों की चाल पर नजर गड़ाये था। तभी एक आवाज ने उस विक्रेता को पीछे बुलाया, वो उठकर गया और माधो ने नीले लहँगे की गठरी बनाई और झोले में दबाकर बैठा रहा दुकानदार आकर बैठा और बोला- *बताओ भाईसाहब! कुछ समझ में आया तो दूँ या और निकलवाऊँ।*

माधो ने ऐंठते हुए एक लहँगा उठाया और बोला- *ये वाला कुछ ठीक है, क्या दाम हैं इसके?*

*... बस साढ़े छह सौ हैं?*
*... कुछ ज्यादा नहीं कहते हो?*
*... तो आप ही बता दो कितने दोगे?*
*... मैं तो इसके दो सौ से एक नया रुपैया जादा ना दूँगा!*

दुकानदार जोर से हँसा और लहँगा समेटते हुए बोला-

*मजाक करने आये थे का यहाँ, जब लेना नहीं तो समय काहे को बर्बाद करते हो, जाओ... जाओ... दो सौ में तो लुँगी नहीं आती आजकल, लहँगा लेने चले आये...*

वाह रे जमाने का खेल अभी एक रात पहले सौ रुपये की कीमत ऐसे बता रहा था जैसे उससे हीरे जवाहरात खरीदे जा सकते हों और पलभर में ही कौड़ी भर ना रही। माधो सरपट उठकर तेज कदमों से बाहर निकल गया! अपनी विजय पर छाती ताने आगे बढ़ गया।

वाह! आज तो लहरिया खुश हो जायेगी, सही है कहाँ तक जीवन में गांठें

लगा–लगाकर जीते रहें। आखिर अपने बाल–बच्चों को हँसता खेलता देखने का अधिकार हमें भी तो है और एक बार के इस पाप से कौन सा मेरा कलेश बढ़ जाना है। बच्चा खुश हो जायेगा, उसकी हँसी देखकर तो दोगुने उत्साह से काम कर डालूंगा, छाती जुड़ा जायेगी!

अपने भीतर के मानुषों से बतियाता माधो चला ही जा रहा था कि ऐसा लगा जैसे सामने राधिका लहरिया को लिये मुस्कुराती खड़ी पूछ रही हो– *अरे वाह जी! ले लिया लहँगा कित्ते में लिया?*

माधो बोलना चाहता था पर भीतर जैसे किसी ने शब्दों के पाँव जकड़ लिये हों!

*... कहो ना कितने में लिया?*

गले की खड़खड़ाहट भी ये कहने से मना करती थी कि ये तो चुरा लाया हूँ, एक पइसा नहीं लगा... पर ये क्या उसके चेहरे पर पड़ी स्याह छाया को राधिका ने पढ़ लिया।

पढ़े भी क्यों ना रंगों से बातें करना, उनकी परिभाषायें समझना गढ़ना ये तो उसका दिन–रात का काम है। राधिका एकाएक बरस पड़ी–

> *ओह! तो फिर बिटिया से कहे देती हूँ जा किसी दुकान से अपने लिये हार भी दबा ला बिल्कुल वैसे जैसे तेरे बाबू कर लाये हैं और हाँ ये भी कहे देती हूँ कि अब अपनी ख्वाहिशों के लिये भूखी मत छटपटाना और ना ही हाथ–पाँव चलाना बस आँखें बचाना सीखना, खुशियाँ हर पल आँगन में नाचेंगी! मैं भी जाकर अपने स्वाभिमान को अंगोछे में बाँधकर अवे में लगा देती हूँ।*

माधो थरथरा रहा था। स्याह रंग पर जैसे किसी ने घड़ों पानी डालकर निचोड़ दिया हो, ये क्या कर आया मैं, मेरे पाँवों ने मुझे धिक्कारा भी नहीं, मेरे हाथों में किसी ने बेड़ियाँ क्यों नहीं डाल दीं। मैं इसी भय से तो मरा जाता था और आज वही राह पकड़ाने चला हूँ अपनी बिटिया

को, आज सन्तान के सुख के आगे मैंने कैसे रीढ़ को टेढ़ा कर लिया! मन के डपट ही रहा था कि पीछे पीठ पर किसी ने थपथपाया, पलटकर देखा तो माधो के मुँह का थूक भी सूख गया। आँखें फटकर बाहर आने के लिये छटपटा उठीं, मन ने क्षण भर में आशंकाओं की आकाशगंगायें बहा दीं। ये वही दुकानदार था! माधो लहँगे का झोला मुट्ठियों में भींचता हुआ बोला- *हाँ... भईया!*

*अरे भाई! तुम उठकर चले आये... तुम्हारा कुछ सामान दुकान पर छूट गया है!*

माधो ने गौर से देखा तो याद आया घर से बेचने के लिये जो गेहूँ ले आया था वो झोला तो वहीं छूट गया। सोचा था उसे बेंचकर सौ पचास और मिल जायेंगे तो शायद लहँगा आ जाये पर उस सौ पचास से भी कुछ नहीं होने वाला!

दुकानदार फिर बोला- *तुम्हारा सामान मैं अपने साथ ले आता लेकिन मुझे लगा पता नहीं मिलोगे कि नहीं इसलिये सोचा पहले ढूँढ लूँ!*

माधो ने अचकचाते हुये हामी भरी और दुकान पर आया उसने धीरे से वह लहँगा निकालकर काउंटर के नीचे गिराया और गेहूँ का झोला लिये तेज कदमों से सड़क पर निकल आया।

ईश्वर को धन्यवाद देता, हे विधाता... आज मति का फेर मुझसे कैसा करम करवाये डालता था, जीवनभर का कलंक लगा लेता। क्या कहता उस स्वाभिमान से भरी पत्नी से जो केवल मान के लिये उस कोठी को आँखें दिखाकर लौट आई थी जिससे उनके पेट बंधे हैं? क्या सिखाता उस सन्तान को जिसे जीवन के चटकते रास्तों पर चलना सिखाना है!

हे विधाता! क्षमा करना सन्तान के सुख के लिये माता-पिता दोहरे होकर सबकुछ करते हैं, कई बार उनकी विवशतायें उन्हें पथ के ऐसे मोड़ की ओर ले जाती हैं जो उसी सन्तान के लिये विष से बढ़कर हो जाती हैं। मोह, विवशताओं के आवेग में मानव के मन की दृढ़ता की परीक्षा होती

है। रत्तीमात्र लोच उसे किसी ऐसे मार्ग पर बहाकर ले जा सकती है जहाँ सिर्फ और सिर्फ खाई है और दृढ़ता ऐसे किनारे पर टिकाती है जहाँ सूर्य का स्वर्णिम प्रकाश झिलमिला रहा होता है।

ईश्वर को धन्यवाद देकर, मन में गंगा सा संतोष लिये आगे बढ़ा तो नीले लहँगों ने जैसे उसे घेरकर नाचना आरम्भ कर दिया हो और इनके बीच में खड़ी लहरिया हर एक को उचक-उचककर पा लेने के लिये हाँफी जा रही हो... फिर एक-एककर लहँगा जैसे किसी रबड़ से मिट रहा हो, और लहरिया बेभूल रोती बिलखती हरेक लहँगे को भींचकर लुप्त होने से रोकने का असफल प्रयास करती चिल्ला रही हो-

*बाबू! रोको हमारा नीला लहँगा...*

*नीला लहँगा...*

पीछे से किसी गाड़ी की पीं... पीं... की आहट ने माधो को चेताया तो कदमों को तेजी का आदेश देता, स्वयं पर भुनभुनाया- *नीला लहँगा... नीला लहँगा... लहँगा ना हुआ जैसे जीवन हो गया... आया था रंग लेने और कैसे फेर में पड़ गया।*

इतनी झिड़कियों और भीतर की मथानियों की छप-छप के बाद भी उसे अपने चारों तरफ की दुकानों में अब जैसे उसे नीला लहँगा ही दिखाई पड़ रहा था और हर लहँगे पर लहरिया का रुआँसा चेहरा! मन में शान्ति थी किन्तु बेटी की इच्छा उसके भीतर के द्वन्द्व को तिरोहित ही नहीं होने देती थी। अपने भीतर के कुरुक्षेत्र में चल रही महाभारत ने उसे अधकुचला सा कर दिया था। थकान हावी हो रही थी इसलिये कुछ देर बाजार में लगे नीम के तले बैठ गया। माथे पर हाथ रखे देर तक धरती को निहारता रहा, तभी गाँव के कुछ लोग उसके पास आये और बोले-

*अरे माधो! यहाँ कहाँ बैठा है?*

*हाँ रंग लेने आया था, थक गया सो बैठ गया।*

कुछ देर उन सब लोगों ने साथ बैठकर पान बीड़ी किया, पानी पिया

और राम-राम कहकर अपने-अपने काम के लिये बढ़ गये। माधो देर तक उन्हें जाते देखता रहा-

*यदि इन सबको मेरे कर्म की भनक भी लग जाती तो सोचो गाँव में किसको क्या मुँह दिखाता? कोई अपने बच्चों को हमारी लहरिया के साथ ना रहने देता... राधिका को देखकर लुगाईयाँ छोर दबाकर क्या-क्या नहीं फुसफुसातीं? आज तो अनर्थ होने से रह गया... अब कमबख्त जे मन के घोड़ों को ऐसे सड़ाक-सड़ाक दूँगा कि ये बस बोलना ही भूल जायेंगे।*

दोपहर ढलने को थी, पूरा दिन इसी द्वन्द्व से जूझते निकलते निकल गया, चिड़ियों के लौटने के संकेत सुनकर माधो हड़बड़ाया और दोनों झोले उठाये सीधे रंग की दुकान पर पहुँचा और बोला- *भईया! रंग दे दो!*

*कौन-कौन सा और कितना?*

*नीला... नीला क्यों? आज ये नीला रंग दिमाग खराब किये देता है... अब नीला लूँगा ही नहीं।*

माधो ने जोर कहा- नीला नहीं, लाल, सुनहरा और हरा दे दो।

नीले रंग को पीछे छोड़ एक हाथ में रंगों की थैलियाँ दूसरे में गेहूँ का झोला लिये माधो गाँव को जाने वाले डग्गे पर सवार हो गया। पर लहरिया के प्रश्न उसे डरा रहे थे... बजार से जाऊँगा तो लहरिया दौड़ी-दौड़ी आयेगी और कहेगी... बाबू! लहँगा दिखाओ, कहाँ है?

झोला छचोएगी, तब क्या कहूँगा? पता नहीं आज भी कुछ खाया होगा कि नहीं? नहीं खाया होगा तो फिर क्या, कैसे? माथे पर मोटे-मोटे त्रिपुण्ड उभर आये थे। उद्वेलित हुआ मन क्या करे क्या ना करे के पशोपेश में उलझा, कभी विवश होकर धम्म से बैठ रहता कभी खीझता- जी तो करता है कि इस नीले रंग को अभी स्वाहा कर दूँ लेकिन रंगों से कैसा बैर? बैर तो इस धन से होना चाहिये जिससे मोह ना करने का ज्ञान बड़े-बड़े ज्ञानी दिया करते हैं लेकिन अभिलाषाओं,

इच्छाओं के पीछे भागते जीवन के लिये क्या सच में ये सम्भव है? यही तो एक मार्ग है जो सुख देता है, शायद उन ज्ञानियों ने किसी नौनिहाल की ख्वाहिश को घुट-घुटकर मरते हुए नहीं जिया होगा। माधो रास्ते भर लहरिया के प्रश्नों के लिये उत्तर बुनता रहा, स्वांग गढ़ता रहा।

# ख्वाहिशों की गाँठ

साँझ हो चली थी मोर अपने कंठों से, देहात की शान्ति में संगीत के सुर घोल रहे थे। कोयलें, चैं... चैं... चैं... करते हुए अपने-अपने घोंसले की डाल पर बैठीं गुनगुना रहीं थीं, शायद हमारे लिये ये सुख का राग हो लेकिन कौन जाने कौन चिरैया, कौन बटेर और कौन मोरनी अपने बच्चे की किस अधूरी ख्वाहिश पर रो रही हो... या फिर उनको गा गाकर बहला रही हो।

हृदय की गहरी कन्दराओं में डूबते उबरते हुए गाँव आ गया। माधो ने एक लम्बी साँस भरी आह बड़ा विचित्र दिन था आज... जिसने ऐसी परीक्षा ली कि भीतर की कालिख भी बाहर आ गई और उज्वलता भी। पर उसे कालिख कहना क्या सही है? कौन ऐसा जीव होगा जो सन्तान के सुख के लिये जतन ना करता हो... ये पेड़ों पर बैठे पक्षी भी तो अपनी सन्तानों के लिये क्या नहीं कर डालते होंगे, हम कोई देवता तो हैं नहीं जो अपने सत्यपरीक्षण के लिये... अपने ही आंत जाये को आरे से चिरवा दें और चिरवा भी दें तो आज का सत्य क्या इतना शक्तिशाली है कि उसमें जीवन की आशा फूट सके। माधो ने सारे तर्कों को पीछे धकेला और बुदबुदाया- अरे भाड़ में जाये सब! अपने मन पे बोझ लिये नहीं आया इतनी ही शान्ति बहुत है।

तर्कों के मार्ग पर चलते-चलते घर का रास्ता भी पूरा हुआ।

*लहरिया ओ लहरिया, कहाँ लुकी है हमाई सोनचिरैया? पीपल के पास से माधो ने आवाज दी...*

दद्दा देहरी पर ही पड़े-पड़े बोले- अरे धीरे बोल अभी मुश्किल से तो सुबाया है उसे!

माधो चुप हो गया, शोर करती पदचापों को भी शान्त रहने का आदेश देकर धीरे से बखरी में दाखिल हुआ पर उस पल ने उसके पैरों को जड़ कर दिया, पलकें भौंहों से चिपक गई, आँखों के मटमैले आकाश पर नाचतीं काली-काली पुतलियाँ और बड़ी हो गई, मुट्ठियों में दबे झोले जमीन पर धम्म से पसर गये, गेहूँ सरसराकर अलसाया सा सारी देहरी बिखर गया। माधो के तन का रक्त मानो सूखकर पत्थर हो गया और उन पत्थरों के टुकड़ों ने जैसे उसे रेतकर रख दिया हो।

सामने लहरिया नीले, लाल रंग में नहाई बैठी थी। घंघरिया नीले रंग से सराबोर थी, उस पर सुनहरे लाल पीले रंगों के टीके तितर बितर चिपके थे। अम्मा की कूचियाँ लिये उस पर सुनहरी लाल-लाल टिपकियाँ लगाती बैठी उन माटी की गुड़ियों से बातें कर रही थी- *देखो आज तो हमने भी तुम सब जैसा नीला बाला लहँगा पहन लिया, ले...ले...लेले!*

फिर कुछ रंग की कूचियाँ उन पर मारती और कहती - तुम्हारा जे बाला लहँगा अच्छा नई, हम बताती हूँ, जे बाला अच्छा और छपाक से एक लाल रंग भरा उन पर उड़ेल देती, फिर सुनहरा उड़ेलती, फिर वो भी ना भाता तो दूसरा रंग!

पूरी बखरी रंगों से भरी ऐसी प्रतीत होती थी मानो सम्पूर्ण सृष्टि के रंग इसी माटी की बखरी में बिखरे पड़े हों। जिन रंगों का सुख पाने को सारा जगत आतुर रहता है वही बिखरे रंग माधो को किसी विष से दिखाई पड़ रहे थे। मानो बस चलता तो एक-एक रंग को लाठी उठाकर पीटता और कहता तुम्हारी इतनी हिम्मत जो मेरी गुड़ियों पर यूँ बिखरे पड़े हो। पर रंग तो बेजान है इनमें जीवन तो साँसों वाले माटी के पुतले भरते हैं।

माधो ने थरथराती आवाज में कहा- *लहरिया!*

लहरिया बाबू की आवाज सुनकर पलटी और हँसते हुए बोली- *बाबू! हम कैसी लग रही हूँ? देखो हमने खुद से नीला लहँगा पहन लिया!*

माधो देहरी पर टिक कर बैठ रहा और कण्ठ में शब्द समेटकर एक आवाज लगाई– *लहरिया की अम्मा, ओ लहरिया की अम्मा!*

राधिका घर में नहीं थी, माधो लगातार उसे आवाज दे रहा था। उसकी आवाज सुनकर दद्दा बोले– *अरे ! का हो गया, ऐसे बेभूल काहे चिल्ला रहा है?*

माधो ने अपनी खून उतर आई आँखों से उन्हें देखा और बोला– *राधिका कहाँ है, कछु कह कर गई है?*

> *दद्दा ने जोर से कहा... का हुआ वो बड़ी पुरखिन ने तुरन्त बुलाया था, सो माटी की बोरी पटक कर सीधे वहीं चली गई थी, अब तो बहुत देर हो गई, आती होगी।*

माधो बोला– *दद्दा! तुमने भी ना देखा कि बिटिया का करती है।*

> *अरे हुआ का? सुबा के गई थी मौड़ी को तो। फिर कछु बिगार कर दिया का?*

माधो दाँत मीसते हुए अपने माथे पर हाथ पटकता हुआ दद्दा की खाट के पास बैठ गया।

> *का किया का बताऊँ सब बर्बाद हो गया इत्ते दिन की मेहनत सब पानी हो गई।*

> *हैं! ऐसा का कर दिया मौड़ी ने... लहरिया ओ लहरिया का किया तूने बेटा? दद्दा ने आवाज दी*

लहरिया बाबू को इस तरह झुंझलाते देख सहमकर बाँस के पीछे लुककर बैठ गई थी। राधिका भी आ गई, माधो को दरवाजे पर बैठा देख बोली–

> *कबके आए? बड़ी पुरखिन ने बुला लिया था, रचना की दूसरी बिदा होनी थी, सो डलवा बनवाना था, पहले से ही गुस्सा थीं ना जाती तो और नाराज हो जातीं।*

माधो चुपचाप बैठा रहा, उसे कुछ ना बोलते देख राधिका को शंका हुई, भीतर जाने से पहले उसके पास बैठ गई- *का हुआ, ऐसे काहे बैठे हो मुँह डारे?*

माधो ने चेहरा ऊपर किया तो जैसे सूर्य भगवान् पश्चिम में ना डूबकर माधो के मुख पर आ विराजे हों, राधिका सहम सी गई- *हुआ का है?*

माधो ने गुस्से में उसका हाथ पकड़कर बखरी में लाकर खड़ा कर दिया, क्रोध से थरथराते शब्दों में बोला- *देख अपनी आँखन सें!*

राधिका मुँह दबाकर रह गई- *जे किसने किया?*

माधो ने कहा- *एक बार से इंसान को सचेत हो जाना चाहिए, तू लहरिया को अकेले छोड़ क्यों गई थी?*

*अरे मैं तो सुबा के गई थी और वहाँ कैसे ले जाती बड़ी पुरखिन का का बकती हैं तुम्हें नहीं पता का?* राधिका ने लहरिया को आवाज लगाई तो लहरिया और दुबक रही लेकिन उसके कदमों की सरसराहट ने सुराग दे दिया था।

राधिका ने उसे बाँस के पीछे से पकड़कर निकाला तो देखकर भौंचक्की रह गई- *जे का किया तूने?*

रूआँसी सी बोली- *तुमने नीला लहँगा नई दिबाया इसलिये हमने खुद पहन लिया!*

माधो की आँखें डबडबा आईं, ये तरावट ना जाने क्रोध की थी या स्वयं की विवशता की उसे समझ नहीं आ रहा था कि बिटिया की छोटी सी ख्वाहिश पर ताव करे या उसकी नादानी पर, क्रोध की भाप आँसू बनकर आँखों में भर आई थी।

राधिका गुस्से से लहरिया की तरफ बढ़ी तो माधो ने उसे दूर ही रोक दिया। मन के उबाल पर जैसे लहरिया की चहकती ख्वाहिश ने ठंडे पानी के छींटे दे दिये हों, दिन भर जिस ख्वाहिश से लड़ता आया था उसका ये परिणाम कभी नहीं सोचा था।

लहरिया डर के मारे रोने लगी तो राधिका के क्रोध का वेग भी बह गया उसने सब छोड़कर उसे छाती से चिपकाया और पुचकारते हुए बोली–

*ना चुप हो जा, कोई कुछ ना कहेगा, ना फटकारेगा।*

लहरिया बिलख-बिलख कर रो रही थी। उसे यूँ रोता देख माधो की आँखों के कोरों में भी नमी रिस आई। माधो का चेहरा देखकर, राधिका दिवाल से टिककर बैठ गई।

दस दिनों की मेहनत के कुछ टुकड़े आंगन के कोने में धराशायी पड़े थे, कुछ बेटी की नीले लहँगे के रंग में डूबे! इनका बाजारों के लिये कोई मोल नहीं था।

माधो कुछ देर बाद क्रोध और बेबसी को अपनी मुट्ठियों में भींचकर उठा और लहरिया को राधिका की गोद से उठाकर अपनी बाहों में भींचकर माथा चूमा, लहरिया अब सहज हो चुकी थी। उसके चेहरे पर नीला लहँगा मिलने की खनखनाहट हँसती मुस्कुराती खनक उठी थी।

माधो ने धीरे से उससे कहा– *बेटा! तूने ये क्यों किया?*

लहरिया आँखे नचाती हुई बोली–

*बाबू! हमें नीला लहँगा लेना था ना, और तुमने इन सब को पहना दिया और हमें नहीं, इसलिये खुद ही पहन लिया...*

*अब तुमको बजार से नई लाना पड़ेगा, हमारे घर में इत्ते सारे लहँगे हैं और अम्मा हमें पहनने नई देती थी इसलिये हमने अपने हाथ से पहन लिया।*

माधो उसे देखकर विचार रहा था– तू तो इस माटी के लहँगे को देह में लपेटकर खुश हो गई लेकिन हम माँ-बाप का क्या करें जो ये समझते हैं कि ये तो माटी का कच्चा रंग है।

काश हम भी ऐसे ही किसी बनावटी रंग में डूबकर खुश हो लेते, हमारा मन भी ऐसे ही निश्छल हो जाता... पर हम तो जानते हैं ना कि ये तेरी खुशी नहीं छल है, जो पलभर में जल की बूँदों में घुलकर बह जायेगा।

आज समझ नहीं आता तेरी हँसी को देखकर सुखी हों या फिर अपनी बेबसी के हाथों हुई तेरी छोटी सी अभिलाषा की मौत पर रोयें?

*लहरिया ने माधो को झिंझोड़ा... बाबू... बाबू! बोलो ना हमारा लहँगा अच्छा है ना?*

*लहरिया! ये तो मिट्टी का लहँगा है, इसे माटी की पुतरियाँ पहनती हैं... तेरा लहँगा इस मिट्टी और रंग से नहीं बनता, वो तो कपड़े से बनता है, जिसके लिये पैसे चाहिये होते हैं।*

लहरिया- *पैसे? पर ये पैसे कहाँ से आयेंगे?*

माधो लहरिया के हर सवाल का अबकि बड़े सम्हालकर और सोचकर उत्तर देना चाहता था क्योंकि अधबुने धागे बच्चों को दे दिये जायें तो वे अपने हिसाब से सपनों को आकार दे दिया करते हैं, बिना इस चिन्ता के कि इस बुनाई से क्या-क्या दरक रहा है... क्या क्या बिखर रहा है।

*बेटा! पैसे के लिये बहुत मेहनत करनी पड़ती है, जैसे तेरी अम्मा और मैं सबेरे से गीली मिट्टी की गुड़िया बनाते हैं फिर उन्हें सुखाते हैं, उनमें रंग भरते हैं, जब ये बन जायेंगी तो उन्हें डलिया में लेकर मेले जायेंगे... वहाँ इनको बेचकर पैसे आयेंगे और उन पैसों से फिर तेरे लिये लहँगा आयेगा।*

लहरिया चहककर बोली- *हाँ बाबू!*

इतना कहकर लहरिया माधो के कांधे से चिपक गई, होठों को खींचते हुए फुसफुसाई- *अब तो पैसा मैं भी लाऊँगी।*

राधिका ने उसे माधो की गोद से उठाया, हाथ-पैरों से वो नीला लहँगा धोकर फेंका तो एक सिसकी ने लहरिया को सहमा दिया... वो अम्मा के चेहरे को देखती रही फिर रुआँसी होकर बोली- *अम्मा रो रही हो?*

राधिका- *ना मैं नई रो रही। तू क्यों रो रही... अब पहन तो लिया तूने अपना नीला लहँगा।*

*पर बाबू ने तो कहा हमारा लहँगा कपड़े से बनता है, वो पैसे*

*से आता है। अम्मा... अम्मा... हम इतना सारा पैसा लायेंगे, तुम भी लहँगा पहनना... बाबू भी लहँगा पहनेंगे और रचना जीजी जैसी हार भी।*

लहरिया की बातें सुनकर राधिका हँस दी– *हट्ट! तेरे बाबू लहँगा थोड़ी पहनेंगे, लहँगा तो बिटियाँ पहनती हैं।*

लहरिया– *पर अम्मा वो बड़ी कोठी वाले बाजों में तो रम्मू कक्का ने लहँगा पहना था, बिन्नी भी लगाई थी, नाच भी रहे थे, ऐसे-ऐसे करके।*

राधिका खिलखिलाकर हँस दी– *बेटा! रम्मू कक्का रोज थोड़ी पहनते हैं लहँगा, वो तो उनका काम है, तेरे बाबू का काम तो खिलौने और माटी के बासन बनाने का है।*

लहरिया– *काम??? फिर हम का काम करूँगी अम्मा?*

राधिका झल्लाते हुए– अभी देवी माई! तू जा... तू बस इन खिलौनों से दूर रहना, बाहर जाके खेल, अब भाग यहाँ से, मेरा माथा दुखा दिया है।

लहरिया ने अम्मा की ठोढ़ी ऊपर करके पूछा– *बाबू लहँगा लायेंगे ना?*

राधिका– *हाँ लायेंगे, पर जब तू खिलौनों से दूर रहेगी उधम नहीं करेगी, चुपचाप बाहर खेलेगी।*

लहरिया ने मुस्कराकर हामी में सिर हिलाया और चिल्लाती हुई भाग गई– *बाबू लहँगा लायेंगे, नीला लहँगा लायेंगे।*

राधिका का मन लहरिया की बातों से कुछ हल्का हो चला था लेकिन जैसे ही उसकी निगाहें... आँगन... बिखरी अपनी मेहनत और उम्मीदों पर पड़ी तो जैसे किसी ने छाती पर जोर का वजन रख दिया हो, वो चबूतरे से टिककर ऐसे धम्म से बैठी जैसे सदियों की थकान उसके शरीर में भरी हो, पीड़ा की हिलोरें आँखों के गुरियों पर नाच उठीं थीं।

राधिका कभी अपने हाथों को देखती, कभी आँगन में पसरी गुरबत के टुकड़ों को और कभी उस झीनी हुई छत को जहाँ से ईश्वर उसके घर के भीतर के हर टाँके को अशब्द प्रतिपल देखा करते हैं पर आज बेटी

की टूटती ख्वाहिश का दर्द उस झीनी होती छत की पीड़ा से कहीं अधिक था।

माधो अपने हाथों को कोठरी की मिट्टी में रगड़कर उन महीन रेखाओं को बाँचने की कोशिश कर रहा था जिनमें उसके लिये बस पीड़ा ही पीड़ा लिखी थी–

*हे प्रभु! इन पतली रेखाओं में कैसे इतना दर्द बुन देते हो। सामने बिखरी छत पड़ी है, अन्न का स्वाद रुंदा पड़ा है, उससे भी बड़ी... मेरी छोटी सी बिटिया की छोटी सी ख्वाहिश टूटी, रंगों में धुली पड़ी है।*

*देखो ना मेरे इस आंगन में कैसी हँसी करता भाग्य बैठा है, जिन रंगों को जीवन में भरकर लोग सुखी होते हैं, वही रंग अगर बेतरतीब बिखर जायें तो शायद ऐसी ही पीड़ा देते होंगे! हे विधाता! आखिर दिखाना क्या चाहते हो?*

खेलती हुई लहरिया को माधो दूर से देखकर अपने मन के प्रश्नों में फिर उलझ रहा था–

आने वाले नीले लहँगे की खुशी कैसी खिलखिला रही है। बालपन की निश्चिन्तता नाच रही है। उसकी पलभर की ख्वाहिशें, उम्मीद और भरोसा बाँधे कैसे मुस्कुराकर दौड़ लगा दिया करती है... पर ये कहाँ से पूरी होगी, कैसे होगी? ये प्रश्न तो हमारे लिये हैं, इनका हल ढूँढते-ढूँढते हम बिखरने लगते हैं, काश हम भी ऐसे ही अनहद हँसी में खो सकते, खिलखिलाहट में डूब सकते लेकिन ऐसा कहाँ होता है फिर भी इस बचपन की हँसी को संजोना हमारा ही दायित्व है... पर कैसे? माधो माथा घुटनों के बीच दबाये सिसक पड़ा था, हिम्मत अब टूट रही थी।

राधिका आँगन में बिखरे रंग, सामान समेटकर भीतर आई तो माधो की सुर्ख आँखों में जैसे खारे तालाबों की खेती उग आई हो।

राधिका पास आकर धरती खुरचती हुई बोली– *इतना काहे परेशान हो?*

*जो हुआ सो हुआ, ना डरेगा छपरा, दो बेरा की जगह एक बेरा खा लेंगे।*

*घुटनों में मुख गड़ाये हुये माधो... सब कर लेंगे लेकिन कैसे कहें लहरिया से कि तेरा नीला लहँगा नहीं आ पायेगा। इन्हीं हाथों में उठाकर वचन लिया था कि इसकी हर इच्छा पूरी करूँगा लेकिन का कर पा रहा हूँ... हम भावों के फेर में पड़कर क्या-क्या वचन दे जाते हैं, हमें उसी वक्त उसके कानों में सत्य का ये मन्त्र फूँक देना चाहिये कि तू माटी कूरे की जनी है... वही हम दे सकते हैं इससे ज्यादा कुछ नहीं।*

राधिका- *अरे बच्चा है, ऐसी जिद तो करते ही रहते हैं, अभी थोड़ी देर में सब भूल जायेगी।*

राधिका का कहते-कहते गला भर आया उसने रुंधे गले से कहा- *फिर उसे भी तो पता होना चाहिये हमारी सन्तानों को ख्वाहिशों का अधिकार नहीं होता।*

*आँखों ने आँसूभरे माधो फिर बोला... नींद के गहरे अंधेरों से लड़कर, ढिबरी की टिमटिमाती मरती जीती लौ के सहारे कितनी रातें बोईं थीं इन मिट्टी के पुतलों में, तब जाकर ये ख्वाहिशों के कतरे उगे थे, अब सबकुछ उजड़ा पड़ा है, कैसे करूँगा? कुछ समझ नहीं आता?*

राधिका ने अपने छोर से माधो की आँखें पोंछी और मुस्कुराते हुए कहा-

*हुनर के हाथ बड़े कर्रे होते हैं, अगर चाह लें तो उस आकाश से उसके सितारे भी नोंच लाएं।*

*....ये सब बड़ी-बड़ी हिम्मती बातों से अब कतरा भी शक्ति नहीं मिलती, जब पता हो आपके हाथ अब कुछ नहीं है। अब दस बारह दिन ही तो हैं, कौन कौन सी ख्वाहिशें गढ़ लूँगा मुट्ठीभर समय में।*

*राधिका ने विश्वास बुलाते हुये कहा कि छपरा ना डरेगा ना*

*सही... पानी ही तो भरेगा कुठरिया में तो भींज लेंगे... ये सोच के कि हम पर विधाता अमृत बरसा रहा है... अब बिटिया की गलती पर उसे का कहें, अभी दीन दुनिया का जाने, पर हम मताई बाप हैं समझना हमें है... इसलिये हिम्मत रखो जितने पैसे आएंगे तो आयेंगे, ना आये तो ना सही।*

इतना कहते-कहते राधिका और माधो की आँखों में उमड़ आई लहरों में हिलोरें लेने लगीं, सबकुछ थरथराता दिखाई पड़ रहा था, धरती भी जैसे इस नमी से काँपती सी दिख रही थी।

चौखट पर खड़ी लहरिया ने अपने अम्मा बाबू के भीगते चेहरे देखे तो सहमी सी ठिठक गई। माधो ने देहरी पर लहरिया को खड़े देखा तो अंगोछे से आँखें पोंछकर उसे पुचकारकर बुलाया। लहरिया दौड़कर बाबू की गोद में बैठ गई।

माधो की आँखें लहरिया को गोद में पाकर और बरस पड़ीं थीं... वो इधर उधर देखता और लहरिया के सिर पर हाथ फेरता रहा लहरिया कुछ देर दोनों के चेहरे देखती रही, उसे ना तो फकीरी समझ आई थी, ना विधाता की प्रार्थना उसे तो बस अपने अम्मा बाबू के आँसू समझ आये थे जो छपरे के ना डर पाने की वजह से बरस रहे थे और वो... नीला लहँगा। लहरिया अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से आँखों से बह आये खारे पानी को पोंछते हुए रुआँसी होकर बोली-

*बाबू हमें लहँगा नई चईये!... अम्मा! हमें लहँगा नई चईये, हमने तो गुड़िया वाला लहँगा पहन लिया ना... इसलिये अब और नई चइये।*

इतना कहकर लहरिया मुस्कुरा दी और बाबू के गले से चिपक गई। माधो ने बिटिया को दोनों हाथों से भींच लिया, नीले आकाश के ऊपर टुकड़ों में उभर आये सफेद देवों से याचक दृष्टि से जैसे कह रहा था-

*इतना भी बेरहम ना बन ईश्वर! ये नन्हीं कली नहीं जानती*

*कि ख्वाहिशें भी अमीर गरीब हुआ करती हैं।*

देर तक माधो लहरिया को गोद में लिये बैठा रहा, लहरिया गोद में ही सो गई थी, उसने उसे खटिया पर लिटाया और बाहर चला गया, बखरी में बिखरे पड़े अपनी मेहनत के टुकड़ों के पास जाकर देखता रहा, गुड़ियों को हाथ में पकड़-पकड़कर जैसे किसी वैद्य सा उनको दुरुस्त करने का इलाज ढूँढ रहा हो।

राधिका भी माधो के पास आकर बैठ गई, एक गुड़िया हाथ में उठाकर बोली- *रंग ही तो फैला है, मैं कोशिश करती हूँ शायद मैं बना लूँगी।*

माधो ने उम्मीद भरी आँखों से देखा- *का करेगी, पूरी तो रंग गई हैं?*

राधिका ने खुश होते हुये कहा- *देखते जाओ, अब ये तीस पुतरियाँ बजार तो जायेंगी ही!*

उसने रंग का तसला उठाया और सफेद रंग घोलकर बैठ गई। पहले उसने एक नीले रंग में डूबी पुतरिया पर पानी डाला और फिर उस पर सफेद रंग पोत दिया। उसका रंग हल्का आसमानी सा हो गया था, अब राधिका के हुनर की असली परीक्षा थी उसने अपनी छोटी-छोटी कूचियाँ उठाई और इस एक गुड़िया के नैन नक्श, पहनावा, उढ़ावा सब गढ़ डाला। ये गुड़िया जब बनकर तैयार हुई तो ऐसा लगता था मानो आकाश को किसी गुड़िया के साँचे में ढालकर दुल्हन बना दिया गया हो।

इस गुड़िया को देखकर माधो की उदास आँखों में चमक आ गई, शब्दों से उम्मीद बहने लगी-

*अरे वाह! जे तो बिल्कुल ही अलग प्रकार की कलाकारी बन गई है, बड़ी सुन्दर दिखती है... इन नीलवर्णी को तो राधिका ही गढ़ सकती थी।*

राधिका भी आशा की इस बेल को पाकर खुश हो गई थी-

*हाँ ये बन तो अच्छी गई है... लेकिन पता नहीं कितनी हो पायेंगी... समय तो है नहीं।*

*राधिका को हिम्मत देते हुये कहा... ठीक है, अब जितना हो पायेगा उतना कर लेंगे, मैं कुछ और नई बनाने की कोशिश करता हूँ दस-पाँच तो हो ही जायेंगी... जितनी हो जायें उतनी का कम है।*

*जब तक अपने हाथ हैं तब तक आशा तो ना छोड़ूंगा फिर लहर माई जितनी परीक्षा लै ले। ऐसे रोते रहे तो जिंदगीभर रोते रहेंगे।*

राधिका ने लम्बी साँस भरते हुए कहा-

*सही है जब तक जान है, जूझने से कौन रोक सकता है लेकिन चिन्ता एक जे भी है कि बाजार में दाम मिल जाये, आज के जुग में माटी का मोल रह ही कितना गया है, पता नहीं कौन खरीदेगा अपनी ये माटी की पुतरियाँ।*

लहरिया नींद से उठ आई थी, बाबू और अम्मा को मिट्टी में सना देख बोली- *बाबू हम भी बनाऊँ गुड़िया?*

माधो ने झटके से उसे रोका और कहा- *ना बेटा! अब तू इनके पास भी ना आना, तेरी अम्मा और मैं बना रहे हैं।*

लहरिया नीचे मुँह डारे बाहर चौंतरे पर बैठ गई। देर तक बाबू को मिट्टी को आकार देते देखती रही और अम्मा को रंग भरते हुये।

राधिका ने उसकी तरफ देखा तो वो एकटक दोनों के हाथों को देख रही थी, राधिका मन ही मन बुदबुदाई- *अब जाने क्या खुरापात बुन रही है।*

राधिका ने आवाज दी- *लहरिया... यहाँ काये बैठी है, रोटी दे दूँ तुझे?*

लहरिया ने हाँ में सिर हिलाया तो माधो ने भी कहा- *बमुश्किल रोटी के लिये हाँ कहा है, जा तो दिमाग बदल जाये उससे पहले खिला दे।*

राधिका ने जल्दी-जल्दी हाथ धोये लहरिया को भीतर आने को कहती हुई माधो को कछवारे से दो भटे तोड़ लाने के लिये कहकर अन्दर चली गई, माधो भी हाथ धोकर निकल गया।

राधिका लहरिया को लेकर भीतर आ गई। चूल्हा सुलगाने बैठी इतने में लहरिया भाग गई। राधिका ने जब देखा तो छपरे में कहीं दिखाई ना दी, वो दौड़कर बाहर आई, गुड़ियों के आस पास देखा लेकिन लहरिया वहाँ नहीं थी। उसने एक लम्बी सांस ली और स्वयं को दिलाशा देते हुए कहा– खेलने निकल गई होगी!

# उजाले की ओर

इन मुट्ठीभर दिनों में इतना कुछ घटा कि हँसी-खुशी जैसे दूर किसी कंदरा में जाकर दुबक गई हो। लाख प्रयासों पर नहीं मिलती, लहरिया की उदासी जैसे चारों ओर पाँव पसारे फैल गई हो। सबकुछ उदास, नि:श्वास सा है, आज तो ऐसा प्रतीत होता है ज्यों ब्रह्माण्ड की परछाई पर लिखी स्याह परिभाषाओं को पढ़कर चन्द्रमा भी मुँह फुलाये आँखें मींचकर बैठ गया हो और आकाश दूध का कटोरा लिये कभी उसके पीछे भागता, कभी नृत्य करता उसकी मनुहारें कर रहा हो और उस दूध के कटोरे से धवल प्रकाश छिटक-छिटक कर धरती पर बिखर रहा हो। हवायें बिना कुछ कहे चुपचाप बह रही हैं। माधो माटी पर पानी छिड़क रहा था।

राधिका ने आकर कहा- *चलो ब्यारी कर लो, लहरिया को भी लिये आओ।*

माधो ने कहा- *लहरिया? वो तो सोई होगी ना भीतर?*

राधिका कुछ हड़बड़ाई सी बोली- *नहीं वो तो तुम्हारे पीछे ही निकल गई थी, कहाँ गई?*

माधो मिट्टी छोड़ यहाँ-वहाँ उसे खोजता हुआ बोला- *यहीं कहीं होगी, मैं देखकर आता हूँ अभी!*

माधो ने हाथ धोते-धोते जोर की आवाज लगाई- *लहरिया... ओ लहरिया!*

लहरिया ने बाबू की आवाज सुनी तो डर गई, घर के पीछे से दौड़ी

आई, हाथ मिट्टी से सने थे। मुँह में माटी ही माटी छपी थी, कपड़ों में भी रंगों और मिट्टी के छींटे बिखरे पड़े थे।

उसको मिट्टी में यूँ सना देख माधो का हृदय धक्क से रह गया, लगता है फिर कुछ किया इसने उसने झट से गुड़ियों पर पड़ी धोती उठाई तो देखा सब सुरक्षित थीं।

फिर पलटकर आया और लहरिया की बाँह पकड़कर बोला– *अब क्या कर आई बेटा?*

लहरिया ने सहमी आँखों से बोली– *बाबू अबकि हमनें पुतरियाँ नईं छुईं।*

राधिका भी उसको यूँ माटी में सना देखकर बोली–

> *अबकि जरूर इसने माटी खाई होगी... आजकल ये करम और करने लगी है। छका दिया है इस बिटिया ने... जाने कहाँ से इतना उचम सीख-सीख आती है। चल अब!*

लहरिया का हाथ झटकते हुए राधिका ने उसके हाथ मुँह धुलाये और भीतर ले गई। लहरिया सिसकते हुए धीरे से बोली– *अम्मा! अब हम गुड़िया के पास नईं गये थे, ना हमने माटी खाई!*

लहरिया के सहमे से शब्द सुनकर राधिका का गुस्सा भी जाता रहा, उसने लहरिया को चिपकाकर कहा–

> *तू इतनी शैतानी क्यों करती है बेटा! जितनी बार तुझ पर नाराज होती हूँ... छाती मेरी छलनी होती है, ऐसे लगता है कोई जिन्दा मास में भाले मार रहा हो।*

लहरिया धीरे से फिर बोली– *अम्मा! हम भी काम करूँ तुमाए साथ?*

राधिका– *ना अभी छोटी है तू, बड़ी हो जायेगी तब करना।*

> *...बड़ी हम कब हो जाऊँगी?*
>
> *...अब ज्यादा बातें ना कर सो जा।*
>
> *...बोलो ना अम्मा कल बड़ी हो जाऊँगी हम?*

*...हाँ कल हो जायेगी बड़ी, अब बिल्कुल चुप होकर सोजा।*

लहरिया अम्मा की छाती से चिपककर सो गयी, राधिका उसके माथे पर हाथ फेरती और खुद को धिक्कारती रही–

*काहे को इतना गुस्सा करती रहती है... बच्चा ही तो है अब वो का जाने नुकसान फायदा।*

लहरिया सो गई, राधिका ने लालटेन लिये बाहर आ गई। आज फिर वे वहीं खड़े थे जहाँ से चले थे किन्तु उनके धैर्य के टिमटिमाते दीपक में अब भी कुछ चिकनई बाकी थी। लालटेन के जीर्ण हुये प्रकाश में माधो नई गुड़ियों के नैन-नक्श, हाथ-पैर गढ़ रहा था। राधिका भी आकर गुड़ियों के बिखरे रंग सहेजने लगी। माधो और राधिका ने एक दूसरे को आँखों से हिम्मत देते काम में जुट गये।

नभमण्डल के सितारे आज सम्भवतः इन्हें देखकर यही बातें कर रहे थे–

*शायद ऐसे ही ईश्वर बैठकर माटी से इंसानों को गढ़ता होगा, बस फर्क इतना है कि उसके बनाये पुतलों में वो साँसें फूँक देता है और एक 'अहं ब्रह्मास्मि' का अहं! और जब ये अहम् गरजकर अपनी शक्ति का नाद करता है तो वह ऊपर बैठा ठठाकर हँसता है... और कहता है वाह रे मूढ़! ईश्वर ने एक छोटे से शूल को भी इतनी शक्ति दी होती है कि उसकी नन्हीं सी चुभन भी इस शक्ति की गर्जना करने वाले पुतलों को कराहने पर विवश कर दे।*

इस शक्ति के नाद में डूबे ईश्वर के बनाये हम पुतलों का सत्य तो यही है हमें परिस्थितियाँ प्रतिदिन, प्रतिपल बिरा-बिराकर भाग जाती हैं। हम चलते-फिरते मुर्दों में इतनी भी शक्ति नहीं कि उन्हें पकड़कर दो चनकट ही लगा दें। हम तो उनके तिनगाने पर बिलबिला उठते हैं किसी क्रोधित सागर की लहर की तरह फिर हम वही करते हैं जो वो कराना चाहती हैं... तो इससे बेहतर तो ये मिट्टी के पुतले ही हैं कम से कम

इनमें 'मैं' तो नहीं होता, किसी ख्वाहिश में इतनी ताकत तो नहीं होती कि इन्हें छटपटाने को विवश कर सकें।

सबेरा हो चला था लेकिन रतजगे के कारण सब अलसाया हुआ सा लगता था। माधो और राधिका की आँखों के लाल डोरे और सुर्ख हो गये थे। चेहरे पर रात का आलस घुल गया था। आकाश में बादलों का गहरा धुंधलका छा चला था। सूर्य भगवान् किसी लजाती दुल्हन की तरह इस धुंधले घूँघट से थोड़ा-थोड़ा झाँक रहे थे। आसमान में चल रही इन शरारतों से माधो के चेहरे पर चिन्ता उभर आई-

*इस बार जाने भगवान् ही रूठा बैठा है शायद, जितना सम्हालने का प्रयास करते हैं उतना और बिगड़ता जाता है। देखो इन बादलों को कैसे सीना ताने यहाँ से वहाँ कदमताल करते फिर रहे हैं, जैसे मुझसे रण करने की रणभेरी बजाते हों... आज घाम ना निकला तो नई गुड़ियाँ कैसे सूखेंगी... फिर कैसे उनमें रंग भरेगा?*

*...काहे इतना परेशान होते हो? अब जो होना है सो होगा। भगवान् को निर्दयी होना होगा... तो कौन हम तुम रोक लेंगे, जाओ नहा धोकर पूजापाठ करो और रोटी खाओ।*

माधो अनमना सा बाल्टी रस्सी लिये कुएँ को चला गया, लहरिया आँखें मीड़ती हुई अम्मा की गोद में चिपक गई, राधिका ने उसे पुचकारा, माथा चूमा और कहा- *चल उठ... मुझे चूल्हा सिलगाना है, बाबू आते होंगे।*

लहरिया आज पहली बार बिना ना-नुकुर किये, बिना रोये गाये, अम्मा की गोद से उतरकर बाहर भाग गई। राधिका ने आकाश की ओर हथेलियाँ जोड़ते हुए कहा- *बाह री मइया! हमारी बिटिया तो सुधर गई।*

लहरिया सीधे छपरे के पीछे जा पहुँची, डलिया उठाई और किनारे रख दी, डलिया के नीचे मिट्टी के ढेर सारे गोले बने रखे थे। लहरिया हाथ में गोले लिये कभी बाबू की तरह उनपर उंगलियाँ चलाती, कभी

थपकियाँ देती, जब गोला बिखर जाता तो फिर अपनी नन्हीं हथेलियों के औजार उनपर चलाती, पर माटी भी जैसे उससे रार ठाने बैठी हो, कभी गीली होकर बिखर जाती कभी भुरभुरी होकर बिखर जाती।

अब तो लहरिया धम्म-धम्म करके माटी पर जोर-जोर से हाथ मारते हुए बिफर पड़ी-

> *तुम भोत खराब हो, बाबू के हाथ लगते ही कैसे फट से दुबककर बन जाती हो और हमसे काये नहीं बनतीं? हम अब तुमको भोत, भोत, भोत मारूँगी, जैसे उस दिन बड़ी पुरखिन हमको मारी थी, भोत शैतान हो गई हो तुम!*

इतना कहकर फिर प्रयास करती, फिर उन गोलों में लकड़ी के टुकड़े खोंसकर, लाल, नीले, सुनहरे रंगों में डुबोती साथ में खुद भी मिट्टी और रंग में डूबती जाती। पर ये नालायक माटी के गोले भी बड़े ढीठ ठहरे हर बार ऐसे पसर जाते जैसे कोई स्वांग रचकर स्वयं उसका आनन्द ले रहे हों। इस पूरी प्रक्रिया में सुबह से दोपहर होने को आई थी। लहरिया के मुँह से लार, माथे पर पसीना और हथेलियाँ और पाँव पानी से लथपथ थे। अम्मा जब-जब लहरिया को बुलाती, तो हर बार देहरी पर जाकर चिल्ला आती-

> *अम्मा! हम अभी नई आऊँगी... अभी जरूली बाला काम कर रही हूँ!*

इतना कहकर अपने सारे मनोयोग, शरीरयोग से जुट जाती, इतनी तल्लीनता जिजीवषा के मार्ग से जब अभिलाषाओं को सींचा जाये तो उनके पुष्पित पल्लवित होने की शंका ही कहाँ रहती है और हो भी क्यों ना आखिर ये अभिलाषायें, ख्वाहिशें ही तो जीवनस्रोत होती हैं, इन पर यदि तुषाराघात हो जाये तो, जीवन किसी बेजान रस्सी सा झूलता शिथिल बस अपनी अवधि पूरा करता है। पर इनका आहार होता है मनुष्य का कठोर तप और जीवटता! जिसने जितनी दिखाई उतनी फलित होती हैं और जब गरीबी की चौखट पर ये जन्म लेती हैं तो ये दोगुना, तीनगुना,

चारगुना खाद्य माँगती हैं, परीक्षायें भी कठिनतम होती हैं।

*लहरिया... ओ लहरिया... का कर रही है? अबकि अम्मा की आवाज पास से आ रही थी।*

सुनकर लहरिया दंदक गई उसने उस गीली माटी पर डलिया ढँकी और बखरी में आकर हाथ-पैर साफ करने लगी, राधिका पास आकर बोली-

*फिर तू माटी में डूब के आई है, मुँह दिखा... फिर से मिट्टी तो नहीं खाई?*

लहरिया पुतलियों को नीचे धकेल, पलकों को ऊपर कर मुँह खोलते हुए बोली- *नहीं अम्मा! हमने नईं खाई, देखो, आ...आ...आ!*

लहरिया का डर से झुका चेहरा देखा तो राधिका मुस्कुरा दी- *ये तो बता लहरिया तुझे माटी में रहना इतना क्यों भाता है?*

लहरिया ने धीरे से कहा- *बाबू भी तो मिट्टी में सने रहते हैं अम्मा! तो वो भी मिट्टी खाते हैं क्या?*

राधिका जोर से हँस दी- *इतनी बातें तुझे सिखाता कौन है?*

*बोलो ना अम्मा, क्या सच्ची में बाबू माटी खाते हैं? पर तुम तो कभी उनका मुँह नहीं देखतीं?*

राधिका हँसी और बोली- *तू ही देख लिया कर, महामाई! चल अब रोटी खा फिर कहीं जाना।*

लहरिया ने हाथ में रोटी की कट्टू बनाई और ऐसे सरपट दौड़ी कि पीछे से राधिका पुकारती रह गई उसने एक ना सुनी और सीधे छपरे के पीछे जाकर दम ली और डलिया हटाते हुए बोली-

*लो तुम भी रोटी खाओगी?*

*फिर कुछ सोचा... अरे! अभी तो तुमाए हाथ-पाँव नहीं है और मुँह भी तो नहीं है कैसे खा सकोगी, पहले हम तुमाये हाथ, पाँव, मुँह सब बनाऊँगी जैसे बाबू बनाते हैं फिर रोटी भी*

*खिलाऊँगी, पर तुम भी तो दुष्ट हो बार-बार मुँह फुलाकर पसर जाती हो।*

इस मासूम मनुहार को जैसे माटी ने सुनकर गुन लिया हो। इस बार माटी ने उसके हाथों से कुछ गोल, लम्बे, मोटे, पतले तरह-तरह के आकार लेकर उसकी मंशा मान ली, लहरिया ने अपनी इन पुतरियों को दीवार से टिका दिया, फिर उन पर नीले पीले रंगों से आड़े तरीछे इन्द्रधनुषी रंग बिखेर दिये। अपने हाथों से बनी इन गुड़ियों को देखकर लहरिया कूद-कूदकर ताली बजाती नाचती और गाती-

*राम की गुड़ियाँ, राम के द्वारें*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*
*राम की गुड़ियाँ...राम के द्वारें....*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*

कल मेले का दिन था, माधो और राधिका ने दिनरात एक करके लगभग चालीस पुतरियाँ बना लीं थीं। बखरी में बिखरी अपनी कलाकारी को देखकर दोनों फूले नहीं समा रहे थे, मन में इतना संतोष था कि कुछ तो बचा लिया।

उन्होंने गुड़ियों को सम्हाल-सम्हालकर बोरी में भरा, कुछ को टोकरियों में सजा लिया। मेले की तैयारी पूरी हो गई थी। आज की रात बादल भी कम शरारती नहीं थे रातभर ऐसे आ आकर ठिठोली कर रहे थे, मानों बारिश का अभिनय करके माधो और राधिका को चिढ़ा रहे हों।

जैसे ही बादल गरजते लहरिया भी उठ बैठती, और कहती- *अम्मा पानी बरसेगा का?*

राधिका हाथ जोड़े भगवान् को सुमिरती और कहती- *नईं पानी नईं बरसेगा।*

सारी रात आकाश पर आँखें टिकाये दोनों ने करवट बदलते काटी। लहरिया भी बार-बार उठकर बैठती रही।

मेले की भोर थी गाँवभर में रोज से ज्यादा चहल पहल थी, महिलायें थाली सजाये लहर माई के दर्शनों के लिये जा रहीं थीं, पुरुष और बच्चे मेला देखने की तैयारी कर रहे थे। कुछ अपना माल मेले में बेचने के लिये सामान गाड़ियों पर लादे लिये जा रहे थे कुछ लोग बस यूँ ही मेले का आनन्द उठाने की तैयारी में थे।

इस मेले में माटी का सामान विशेष तौर पर खरीदने बेचने लोग आया करते थे और तो और बड़े बाजार से भी लोग अपने कपड़ों की दुकान लिये चले आते थे। दस गाँव का हर आदमी जुड़ता था, दूर-दूर से व्यापारी आते थे। खेती-बाड़ी के लिये बड़े-बड़े पीपे, अचार, तेल, पापड़ के पीपे, मटके, गगरियाँ, खेल-खिलौने सबकुछ माटी का होता था। यहाँ की कलाकारी को देखने बड़े-बड़े शहरों से भी लोग आते थे। इसके अलावा घिटोई में देवी का आह्वान होता था... दरबार लगता था जिसमें लोग मनौतियाँ, फरियादें लेकर भी आते थे।

माधो मेले में सामान पहुँचाने के लिये बैलगाड़ी ले आया, राधिका भी तैयार हो गई, लहरिया को आज उसने अधनई लाल घंघरिया पहनाते हुये बोली- *आज हम लोग मेले में जायेंगे, तुझे झूला भी झुलायेंगे, और पेड़ा खायेगी तू?*

लहरिया ने मुँह बनाते हुए कहा- *अम्मा, हमें नई जाना मेला।*

राधिका लहरिया को पलभर अवाक् सी देखती रह गई- *क्या कहा तूने, मेला नई जाना? पहले तो मरी जाती थी, झूला झूलने के लिये दिन-रात जिद करती थी अब का हो गया?*

लहरिया- *नई झूलना झूला, नई खाना पेड़ा।*

लहरिया इतना कहकर बाहर की तरफ दौड़ गई, पीछे से राधिका चिल्लाती दौड़ी-

> *अरे कैसी जिद करती है, यहाँ कहाँ अकेली छोड़ूँगी, हरदेई भी जाती है मेले में, एक दो घंटा की बात हो तो दद्दा के पास*

*रह जाने दूँ, पर तू उन्हें भी हलकान कर देती है।*

*ना जाने वहाँ से आने में हमें कितनी देर हो, कौन देखेगा तुझे यहाँ, चल बेटा जिद नहीं करते, आजा चल तो, तेरा नीला वाला लहँगा भी मिलता है मेले में सुन तो!*

नीला लहँगा सुनकर कुछ पल के लिये लहरिया के पाँव जैसे धरती से चिपक गये पर उस पलभर में ही उसने अपने मन को ना जाने क्या पट्टी पढ़ाई और भागते हुए चिल्लाई– *नहीं चईये... नीला बाला लहँगा!* नहीं चइये... नीला लहँगा!... लहरिया के मुँह से निकले इन शब्दों पर मानो राधिका को भरोसा ही नहीं हुआ वो दौड़कर देहरी पर आई और फिर दोहराया– *नीला लहँगा मिलेगा!* लेकिन लहरिया अबकि बार बिना रुके चली गई।

तब तक माधो भी आ गया उसने बोरियाँ बाहर देहरी पर धरते हुए कहा–

*...रहने दे, वहाँ तू ग्राहक देखेगी कि इसको सम्हारेगी, दद्दा के पास रह जायेगी और अब तो कुछ बनने बिगरने को है भी नहीं, रह जाने दे।*

*...लेकिन सुना... तुमने उसने का कहा अभी?*

*...हाँ सुना! बेबस महतारी बाप के बच्चों का बचपन जल्दी बड़ा हो जाता है, ऐसा ही कुछ समझ ले। चल मेला चलने की तैयारी कर उसे यहीं छोड़ दे।*

*का कहते हो, मैं अकेले ना छोड़ूँगी इसको आजकल कुछ ज्यादा ही उधमी हो गई है, पता नहीं का करेगी।*

*तू अब जाते-जाते फालतू के दिमाग ना चला, कुछ ना करेगी, नहीं जाना तो ना जाने दे।*

राधिका भी माधो की बात से अनमनी सी सही लेकिन सहमत हो गई। अम्मा को जिरह में हारा देख लहरिया के चेहरे की चमक दोगुनी हो गई थी। माधो ने गाड़ी पर सामान की बोरियाँ रखीं और पीपल के पीछे

लुकी लहरिया से कहा– *बेटा! उधम ना करना बिल्कुल, ठीक है?*

लहरिया झट से बाहर निकली और बोली– *ना बाबू! हम कोई उधम नईं करूँगी।*

माधो ने उसका माथा चूमा और गाड़ी पर बैठकर दोनों निकल गये, राधिका भी चिल्लाती चली जा रही थी, शैतानी ना करना लहरिया और दद्दा को बिल्कुल भी परेशान ना करना।

बैलगाड़ी निकल गई, इधर लहरिया झट से घर के पीछे पहुँची, अपनी टोकरी में अपने आड़े तरीछे गोले सजा के रखे और सिर पर टोकरी धरे गाँव की भीड़ के पीछे चल दी।

अपनी ख्वाहिशों को डलिया में सजाये छोटे–छोटे से कदमों आगे बढ़ती और गाती जाती–

*राम की गुड़ियाँ, राम के द्वारें*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*
*राम की गुड़ियाँ...राम के द्वारें....*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*

रास्ते में लोग उससे ठिठोली करते पूछते– *अरे लहरिया रानी! ये डलिया धरके ससुराल चली का?*

लहरिया अपनी गोल–गोल आँखों से उसे घूरकर उत्तर देती– *मेले में गुड़िया बेचने जाती हूँ, इससे पैसे आएंगे!*

*अच्छा ये किन्ने कहा लहरिया कि इससे पैसे आएंगे?*

*हमारे बाबू ने बताया था, इन्हें बेचकर पैसे मिलते हैं फिर उससे नीला वाला लहँगा आयेगा, हमाई... हमाई...छपरा बनेगी।*

लोग हँसते और कहते– *अच्छा..., लहरिया तो बहुतई सयानी हो गई।*

जो भी उसे देखता, उसकी बातें सुनता, वो उसके मासूम बचपन पर नजरें वार कर चला जाता–

*हाय री बिटिया, नजर ना लगे, साँची कहा है पुरखों ने... बिटिया को बाप-महताई की बहुत ही पीर होती है, देखो तो कैसी दौड़ी जाती है... डलिया सिर पर लादे।*

आज लाल घंघरिया पहने लहरिया ऐसे दिखती थी जैसे सचमुच लहर माई का बालरूप सिर पर डलिया धरे गुनगुनाता चला जा रहा हो। इस वक्त जैसे लहरिया नहीं ख्वाहिशें साँसें लेती चल रहीं थीं। बचपन सयाना हो रहा था। उसके हर बोल पर लोग उसे पलट पलटकर देखते और दुलारते हुये आगे बढ़ते जाते थे।

लहरिया गुनगुनाते-गुनगुनाते लहर माई के मैदान में पहुँच गई। सारा मैदान रंग-बिरंगी चमकीली पतंगी की लड़ियों से सजाया गया था। मन्दिर के भीतर से उड़ती धूप का धुआँ सारे मैदान में छाया था। साथ में ढोल नगाड़ों में जोर-जोर से लहर माई के नाम के कीर्तन से सारा मेला गूँज रहा था तो वहीं दुकानदारों की ग्राहकों को पुकारने की आवाजें इस कीर्तन में घुलकर दैवीय और सांसारिक जीवन का अद्भुद संगम गढ़ रहीं थीं।

औरतें घूँघट काढ़े मेले में घूम रहीं थीं तो बच्चे पिता, भाई, काकाओं के कांधों पर चढ़े बरफ के गोले चूसते हुए मेले का लुत्फ उठा रहे थे। पर यहीं कुछ बचपन ऐसे भी थे जो अपने माल के खरीददार की बाट जोहते गला फाड़-फाड़कर लोगों को अपनी तरफ आकृष्ट कर रहे थे, इनमें कोई गा रहा था, कोई नाच रहा था, कोई अपना माल लिये ग्राहकों के पीछ-पीछे चिल्लाता घूम रहा था।

मैदान के चारों तरफ पंक्तियों में दुकानें सजी थीं। एक पंक्ति में चमचमाते बर्तन की दुकानों पर सूरज भगवान् की रोशनी भी ऐसी पड़ती थी कि देखने वालों की आँखें चौंधिया उठें। दूसरे छोर पर खाने पीने की दुकानों से सुगन्ध उड़ रही थी। चाट-पकौड़ी की दुकानों पर लोगों की लाइन लगी थी, वहीं मिठाई की दुकानों पर कोई बच्चा जलेबी की जिद ठाने बैठा था तो किसी को पेड़े और रसगुल्ले चाहिये थे।

गुब्बारे वाले साईकिल की घंटी बजाते बुढ़िया के बाल, गुब्बारे, तकलियाँ बेचते चारों तरफ चक्कर लगा रहे थे। माटी के बड़े-बड़े पीपों की दुकाने सजीं थीं, नीले, पीले, काले आदमकद पीपे रखे हुए थे। बड़े-बड़े बेलबूटीदार मटकों और गगरियों की छतरी तले लोगों का जमावड़ा लगना शुरू हो गया था। इसी खोर में छोटी-छोटी फट्टियाँ बिछाये बच्चे औरतें, आदमी अपना-अपना माल लिये बैठे थे, कोई झाड़ू बेच रहा था, कोई दिये तो कोई उबले बेर और बिरचुन, यहीं एक कोने पर माधो और राधिका कुछ घड़े और रंग बिरंगी गुड़ियों को फट्टी पर सजाये ग्राहकों को पुकार रहे थे -

*आओ... आओ... राधा ले लो... रानी ले लो...*

*आओ... आओ... गुड्डे की दुल्हन ले लो।*

*ले लो रंग बिरंगी रानी... हँसती गाती बड़ी सयानी....*

*ले लो राधा...ले लो रानी।*

दूसरी तरफ के छोर पर तरह-तरह के झूले मन को रिझाने के लिये तैयार थे, झूले वाले तरह-तरह के गानों से बच्चों को बुला रहे थे-

*आईये... आईये... झूले पर मन के गीत गाईये,*

*धरती पर रह आकाश की सैर कर आईये,*

*घोड़े पर दौड़, जहाज से उड़कर मजा उठाईये*

*आईये... आईये... झूले पर मन के गीत गाईये।*

मन्दिर के पीछे के छोर पर इस बार बड़े शहर की नौटंकी भी आई थी, तरह-तरह के गाने और डायलॉग की आवाजें भी इन सब में घुलकर नया और अजब कलरव पैदा कर रहीं थीं,

*मुन्नी बदनाम हुई.....*

*रिश्ते में हम तुम्हारे....*

*चिलम तमाखू को डब्बा ओ दद्दा।*

इस ओर नौजवान लड़कों और पुरुषों का हूजूम उमड़ा पड़ता था। गानों

के बीच में इनकी सीटियों की आवाजें बाहर मेले में आई महिलाओं के घूँघट खींच लेने के लिये काफी थीं।

सर्कस की मुंडेर पर बैठा एक आदमी इन्हीं गानों के बीच अपनी एक अलग तान छेड़े था –

*आईये देखिये जादूगर...जादूगर...*

*कैसे बनती है लड़की इच्छाधारी नागिन...नागिन...नगिन*

*इसी में एक घुलती हुई आवाज आती है...*

*मौत का कुआँ...मौत का कुआँ...*

*गाना बजता है–*

*वो सिकन्दर तो दोस्तों कहलाता है,*

*हारी बाजी को जीतना... आईये दस लगाइये सौ पाइये*

*एक का सौ... हजार का दस हजार... आईये... आईये...*

जहाँ इतने सारे सुर मिलकर एक हो जायें वहीं तो होता है मेला। इस थिरका देने वाले शोर को सुनकर किसी का भी मन मचल उठता। सर्कस, मौत का कुआँ देखने वालों की होड़ लगी थी। लॉटरी की दुकानों पर भाग्य अजमाने वालों का ऐसा हुजूम उमड़ा पड़ता था कि सम्हाले ना सम्हल रहा था लेकिन असली किस्मत वाले तो डलिया धरे सड़क के किनारे बैठे ग्राहकों का मान मनौव्वल करने में लगे थे।

महिलायें साज शृंगार के अलावा नये–नये कपड़ों के दुकानों पर जमा थीं साथ में गृहस्थी के लिये माटी के बड़े–बड़े बर्तनों के लिये मोलभाव करने में व्यस्त थीं। चारों तरफ बस खुशी और उत्साह तैर रहा था।

लहरिया अपने सिर पर डलिया धरे जिस भी दुकान के सामने से गुजरती उसकी आँखों में बचपन जी उठता, देर तक खिलौनों को देखती रहती, आँखों से उन्हें छूती हुई जैसे–तैसे आगे बढ़ती तो मिठाई की सुगन्ध उसका हाथ पकड़ लेती, जलेबियों का रस उसकी आँखों में तैरने लगता, फिर बमुश्किन अपने मन को डपटकर वो आगे बढ़ती तो रंग–बिरंगे

झूले उसके पैरों को जकड़कर रास्ते में खड़े हो जाते और कहते- *ना अब झूले के बिना तो तू आगे जा ही नहीं सकती।*

झूले के लोभ में पड़ी लहरिया देर तक उस झूले की ख्वाहिश को मन से छूती खड़ी रहती जब सिर पर रखी डलिया का बोझ महसूस होता तो उस ख्वाहिश को हटकारती हुई अपनी डलिया के लिये जगह खोजने आगे बढ़ जाती।

रंगीन चुस्कियों, मिठाईयों, और समोसों ने तो जैसे बड़ी-बड़ी लोहे बेड़ियाँ डाल दीं थीं उसके पैरों में, जीभ का पानी कितनी बार होठों पर तैर जाता था लेकिन लहरिया जीभ से ही उसे भीतर धकेल देती। खेल तमाशों के पास से गुजरती तो भीड़ के पीछे अपने पंजों के बल पर खड़ी होकर उचक- उचक करके देखने की कोशिश करती, किसी का धक्का उसकी डलिया को लगता तो फिर सिर पर रखी जिम्मेदारी का बोझ जी उठता।

मिठाई की दुकान के सामने खड़ी लहरिया की जीभ अनचाहे होंठों पर नाच उठी थी, गुलाब जामुन के कड़ाहे के पास जैसे ही पहुँची तो दुकानदार डपटते हुए बोला - क्या चाहिये, पैसे हैं तो रुक वर्ना आगे भाग जा यहाँ से।

लहरिया सहमी हुई सी आँखों में नमी भरकर आगे बढ़ गई ऐसे आगे बढ़ रही थी जैसे उसके हर कदम पर कोई ना कोई खुशी रास्ता रोके खड़ी हो रही थी लेकिन उसकी इच्छाओं को सुनने वाला वहाँ कौन था?

उसने अब तक पैसों का ऐसा मोल कभी ना सुना था। मन में पैसों की महिमा पर प्रश्नोत्तर करती हुई लहरिया मन्दिर की बाहरी दीवार के एक कोने में डलिया रखकर बैठ गई-

> *अच्छा पैसे क्या इतनी बड़ी चीज होते हैं... कल बाबू भी पैसे के लिये रो रहे थे... चलो अच्छा है आज अपनी ये गुड़ियाँ बेचूँगी तो मेरे पास भी पैसे आ जायेंगे, फिर मिठाई खाऊँगी।*

*कुछ देर बाद फिर कुछ सोचते हुए बुदबुदाई नई नई मिठाई नई खाऊँगी, छपरे के लिये दूँगी फिर जब पानी बरसेगा तो दद्दा को बाबू को अम्मा को गीला नहीं होना पड़ेगा और छपरे में तला भी नहीं बनेगा और अम्मा रोयेंगी भी नहीं।*

इसी बीच एक दुकान पर टंगे नीले लहँगे से उसकी आँखें टकरा गई अब मन फिर उलझ चला था, मिठाई खाऊँगी कि लहँगा लूँगी कि छत बनाऊँगी?

इन प्रश्नों का उत्तर देने से जैसे उसके मन ने इंकार कर दिया था। डलिया में सजी अपने हाथ से बनी गुड़ियों पर उसने हाथ फेरा और मुस्कुराकर चारों तरफ खरीददारों को तलाशने लगी लेकिन इस तलाश के बीच बेईमान मन आँखों को मिठाई की दुकान की तरफ भेज देता कभी नीले लहँगे की तरफ, पर लहरिया फिर मन को डपटती और अपनी गुड़ियों के खरीददार की तलाश में गाने लगती –

*राम की गुड़ियाँ, राम के द्वारें*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*
*राम की गुड़ियाँ... राम के द्वारे,*
*ले...लो... सब कोई हाथ पसारे*
*राम की गुड़िया राम के द्वारे।*

कुछ लोग उसके तोतले से गीत को सुनते, मुस्कुराते और चले जाते कुछ लोग ठहरते उसकी डलिया में रखे माटी के पिण्डों को देखते और मुँह बनाते हुए कहते– *ये माटी के लौंदे बेच रही है तू, कौन लेगा इनको?* ये कहकर आगे बढ़ जाते, लहरिया अपनी गुड़ियों को अपनी आँखों के उदास शब्दों से सहलाती और फिर गा उठती –

*राम की गुड़ियाँ, राम के द्वारें*
*जो कोई पावे, ओई दुलारे।।*

*राम की गुड़ियाँ... राम के द्वारे,*

*ले...लो... सब कोई हाथ पसारे*

*राम की गुड़िया राम के द्वारे।*

कैसी विडम्बना थी जीवन की? जिस मेले में खिलौनों, मिठाइयों, कपड़ों की दुकानों पर खिलखिलाहटें गूँज रहीं थीं। वहीं कोने में बैठा ये बचपन ऐसा भी था जो मन को बाँधे, आँखों को रोके अपने माटी के पिण्डों के लिये किसी ग्राहक का पथ निहार रहा था पर किसी का हिया नहीं पसीजता, किसी के जी में हूक नहीं उठती, खिलौनों से खेलने की उम्र में खिलौने लिये बैठी इस बच्ची को देख किसी की आँखों में संवेदना का झीना परदा तक नहीं तैरता। जिसे लहरिया कहती मेरी गुड़िया ले लो वो उस पर हँसता हुआ सा आगे बढ़ जाता।

पर आह रे स्वांग! मन्दिर की दीवार के इस पार एक बाल देवी की अगढ़ रचना पर हँसता हुआ इंसान दीवार के उस तरफ जाते ही पत्थरों पर सैकड़ों के नोट बरसाने को आतुर खड़ा था। एक स्वांग के समक्ष हाथ जोड़े उसकी अनहद माँगों को शिरोधार्य कर रहा था।

घिटोई अपनी जटायें लहराती हुई जोर जोर से हूँक रही थी–

*हूँ... हूँ.. मैं लहर माई... हूँ... हूँ...*

*आकाश भेदन कर दूँगी, धरती को ज्वाला बना दूँगी...*

*तुम सब मारे जाओगे... तुमने मेरा चोला नहीं चढ़ाया।*

फरियादी लगभग थरथराता हुआ बोला– *मईया शान्त हो, मईया कृपा करो... जो कहो बो चढ़ायें...*

और अपनी जेब से सौ का नोट निकालकर थाली में चढ़ा दिया, घिटोई ने बन्द आँखों के पट रत्तीभर खोली और सौ का नोट देखते ही हूँ... हूँ... करती, लम्बी लम्बी साँसे भरती शान्त हो गई। अपने हाथों से भस्म उठाकर उसके हाथों में रखी और कहा– *जा तेरी सब इच्छा पूरी होगी। आहा... हा... क्या दृश्य था भस्म का मोल सौ रुपये!*

इंसान भी क्या करे मुसीबतों का गुलाम है जैसा नचातीं हैं, नाचता है लेकिन यदि इस खोल से थोड़ी सी मुंडी बाहर करके देखे तो इस गुलामी से आजादी पा जाए। सैकड़ों फरियादी उस मन्दिर की दीवार के भीतर अपना सर्वस्व देने को सज्ज थे लेकिन उसी दीवार के इस पार मुसीबतों से लड़ती इस नन्हीं देवी पर दृष्टिपात् करने वाला कोई नहीं था। उस देहरी के भीतर हजारों के प्रसाद चढ़ रहे थे और उसी देहरी के बाहर एक अदद दस रुपये के लिये लोगों की जेबें खाली थीं शायद इसलिये कि उन्हें ज्ञान ही नहीं था कि देवी तो इस टोकरी में रखी अगढ़ माटी के रंग-बिरंगे पिण्डों में बिराजी थीं। कहें भी क्या, वाह रे मानव की वेदना तू जागती भी स्वार्थवश है।

आज यदि वो लहर माई भी आकाश से इन खिलौनों को खरीदने उतर आतीं तो इनका मोल ना लगा पातीं। ये रंग-बिरंगे कच्चे लौंदे नहीं थे, ये वो बचपन था जो धन के धर्म में कुचलकर लुगदी बन रहा था। ये वो ख्वाहिशें थीं जो संवेदनाओं के झूठे लबादे तले श्वासहीन हो रहीं थीं। कौन ऐसा है जो इस बचपन का मोल लगा सके।

सुबह से शाम हो चली थी मन्दिर की देहरी से सैकड़ों लोग गुजरे, कुछ जानने वाले थे कुछ अंजाने लेकिन किसी एक की भी नजर लहरिया पर नहीं पड़ीं, उसकी उम्मीद से भरी आँखों में जैसे अब लाल-लाल बदलियाँ छाने लगी थी।

मेले का शोर जैसे-जैसे घट रहा था वैसे-वैसे लहरिया की मुस्कुराहटों पर भी घना अंधेरा छा चला था। पुतलियों पर लहरें अधसहमी सी ठहरी थीं। हर किसी को निहारती लहरिया किसी हारे हुए सिपाही की तरह अपनी डलिया पर चेहरा झुकाकर बैठ रही।

# सुर्ख सबेरा

निराशायें जब अपने आलिंगन में लेती हैं तो आकाश भी पैना लगता है। शहद से मीठे बोल भी कसैले लगते हैं। सभी शत्रु सम हो जाते हैं किन्तु इसी निराशा के आवरण के एक छोटे से छिद्र से आई आशा की नन्हीं सी प्रकाशकणिका उम्मीदों में प्राण भर देती हैं।

दिन ढल गया था, मेले का प्रकाश, शोरगुल धीरे-धीरे शान्त हो रहा था, दुकानें अपने समिटने लगी थीं।

राधिका भी अपने सामान को गठरी डलियों में सहेज-सहेजकर रख रही थी, माधो ने बची पुतरियों की गिनती की और लम्बी साँस भरकर बोला- *चलो जो बचीं सो बचीं!*

राधिका अनमनी सी बोली- *पूरी चली जाती तो अच्छा था, कम से कम एक काम तो हो पाता।*

माधो- *ठीक है ज्यादा नहीं बची, बड़े बजार में बेंच आऊँगा, मन कमजोर करने की जरूरत नहीं है।*

राधिका कुछ सोचकर बोली - *कुछ देर और बैठें का, शायद ये सब भी चलीं जायें।*

> *अब का बचा है मेले में जितनी बिकनी थीं, बिक गयीं, अब चल मढ़िया में लहर माई के दर्शन करें और घर चलें, लहरिया ने दद्दा का जाने का हाल किया होगा आज तो!*

*हाँ... हाँ... ठीक है जल्दी चलो फिर, आज तो आकाश में थिगरिया लगाई होगी बिटिया नें, इतना ऊधम किया होगा।*

राधिका और माधो मन्दिर के समीप पहुँचे ही थे कि दूर से ही लहरिया दिख गई, दोनों के कदम वहीं ठिठक गये।

*अपनी लहरिया है ना? माधो ने कहा*

*हाँ... है तो वही... पर ये यहाँ अकेली का करती है?*

राधिका उसके पास जाने को हुई तो माधो ने उसका हाथ पकड़ रोक लिया–

*देख तो डलिया में कुछ रखे बैठी है? है का पर समझ में नहीं आ रहा।*

राधिका ने भी उसकी डलिया की तरफ गौर से देखा तो आड़ी तिरछी लकड़ियाँ लगे, रंग बिरंगे मिट्टी के गोले सजाये बैठी थी।

*ओ मईया! तभी ये रोज माटी में रंगी–पुती आती थी, मुझे का पता, ये का कर रही है, देखो तो कैसी पुतरियाँ बनाये धरे है।*

अधिकारों का पथ बड़ा सहज होता है, जन्म लेते ही उन्हें लेने का चातुर्य जीवों में आ जाता है किन्तु कर्तव्य का निर्माण संसार में आकर होता है, बड़े कठिन और वेदना भरे मार्ग से होकर मनुष्य यह सीख पाता है।

माधो और राधिका दोनों एक गुमटी की आड़ लेकर खड़े हो गये। जैसे ही कोई लहरिया के पास से गुजरता उसके चेहरे पर एक हँसी तैर जाती और कहती– *हमकी गुड़िया ले लो कक्का!*

लेकिन जैसे ही ग्राहक उसको बिना देखे आगे बढ़ जाता लहरिया डलिया पर चेहरा झुकाये उदास हो जाती। फिर कुछ ही देर में अपनी गुड़ियों पर हाथ फिराती और कहती–

*चुप... चुप... रोना मत... अभी कोई तो आयेगा तुमको लेने और मुझे पैसे मिलेंगे।*

चारों तरफ फिर अपनी उम्मीदों की तलाश करने लगती। अपनी पीड़ा, अपनी इच्छायें, अपनी आवश्यकतायें सबकुछ मारकर मानव जी लिया करता है लेकिन अपनी सन्तान की बिलखती उम्मीदों, अभिलाषाओं को देखकर उससे पहले टूट जाता है।

कोने में खड़ा माधो आज अपनी सारी हिम्मत हार रहा था, चेहरे पर होती बारिश की हर बूँद जैसे लावा बनकर धरती पर गिर रही थी–

*हा... हा... हा... कौन सी देवी... कौन से देव... क्यों किसी के दर्शन करूँ... क्यों किसी को भोग लगाऊँ जो आज मेरी आत्मा का टुकड़ा धूप में छीजता बैठा है... तुम्हारे ही वरदान का फल थी ना ये नन्हीं कली फिर इस पर ही कृपा कर देते, हम तो निरे पापी ठहरे।*

*अब कहो क्यों ना हम छली छद्मी हो जायें कम से कम इस बचपन की मुस्कुराहटें तो छलनी होने से बचेंगी। माधो मन के मन्दिर में खड़ा होकर आज पहली बार उस ईश्वर को धिक्कार रहा था जो उसकी आशा का, हिम्मत का सदैव से आधार रहा था।*

मेला पूरा झर गया था लहरिया रुआँसी बाल बिखराये पाँव-पसारे दिवाल से टिक गई और आस-पास पड़े पत्थरों से जोड़-तोड़कर कुछ बनाने की कोशिश कर रही थी। घिटोई बन्ने से आँखें बचाये पैसे मुट्ठियों में भींचे दबे पाँव मढ़िया से निकल ही रही थी कि कोने में लहरिया बैठी दिखी, उसको यूँ अकेले रूआँसी बैठे देख पास जाके बोली –

*लहरिया! तू यहाँ का करती है अकेली? तेरे अम्मा, बाबू कहाँ हैं? ऐसी मुँह डाले क्यों बैठी है?*

लहरिया ने चेहरा ऊपर उठाकर देखा तो उसके अटपटे रूप को देख सिहर उठी सिर से पाँव तक लाल-लाल थी, मुख पर सैन्दुर भीगकर चिपक गया था।

बेसबब काम लेने के कारण आँखों की सफेद नदी में जैसे रक्त घुल आया हो, हाथों में कुछ घाव से हो चले थे, खून छलछला रहा था। पंजों में माहुर से अधिक रक्त रचा था।

लहरिया पहले तो कुछ डरी पर उसे पास आते देख चीख पड़ी–

*जाओ... जाओ... यहाँ से हमाये पास नहीं आना...भग जाओ!*

*अरे गुस्सा काहे कर रही है, नहीं आती हूँ तेरे पास, पर ये पथरा से रंगे क्यों धरे बैठी है वो भी अकेली अम्मा बाबू कहाँ है तेरे.... घिटोई उसके चीखने को रोकने के लिये कुछ दूर पर ही घुटने मोड़कर बैठ गई।*

*...जाओ यहाँ से... नहीं बोलना किसी से! लहरिया कंठ की नसें तानते हुए चीखी...*

*...कैसे करती है बिटिया, अकेली यहाँ बैठी है कोई पकड़ ले जाये तो?*

घिटोई ने जबरन लहरिया को गोद में उठाने की कोशिश की तो उसने उसे हाथ पैर चलाकर पीछे धकेल दिया और चीखी– *जाओ..जाओ..!*

घिटोई त्यौरियाँ चढ़ाते हुए बोली– *अरे मैं तो सोचती थी अकेली बैठी है, घर लिये चलूँ लेकिन ये तो ठनगन बताती है, बैठी रह।*

*ना जाने कैसे महताई बाप हैं? बिटिया को अकेले छोड़ जाने कहाँ फिर रहे हैं, पता भी है कि नईं उन्हें कि जाने अकेली चली आई है का बिटिया?*

घिटोई बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ रही थी कि अगले ही कोने में माधो और राधिका खड़े दिखाई दे गये।

घिटोई उनके पास जाकर बोली–

*अरे! बड़े लापरवाह हो रे तुम दोनों...*

*देखो तो बिटिया को अकेले छोड़ यहाँ मेला देखते फिरते हो*

*...लहरिया वहाँ अकेली रूआँसी सी बैठी है ...मैंने लिवा लाने की कोशिश करी तो हाथ-पाँव चलाती है ...और बोलती तो ऐसी है कि खा जायेगी।*

राधिका ने छोर आँखों पर रगड़ते हुए कहा- *हओ जिज्जी! हम उसी को देख रहे थे।*

*कछु समझी नहीं, यहाँ मूरत बने खड़े हो दोनों के दोनों लिवा क्यों नहीं लाते हो उसे... यहाँ-वहाँ हो गई तो? राई भरी तो बिटिया है!*

*...जिज्जी! का बतायें लहरिया पुतरियाँ बेचने आई थी अकेले, हमें तो पता ही नहीं था। यहाँ आये तो देखा डलिया में अपने हाथन बनाई पुतरियाँ धरे बैठी है।*

घिटोई लहरिया की तरफ पलटकर देखते हुए बोली-

*पुतरियाँ? अरे हाँ, कुछ रखे तो है डलिया में रंगे पथरा से, मैं तो समझ ही ना पाई, मुझे लगा होंगे कोई खेल तमाशे के पथरा, अच्छा... इसलिये रुआँसी सी बैठी चिड़चिड़ा रही कि एक भी उसकी पुतरिया ना बिकीं।*

माधो चुपचाप कोने में खड़ा बस लहरिया को देख रहा था। जैसे-जैसे दुकानें बन्द हो रहीं थीं वैसे-वैसे कोई ख्वाब लहरिया की आँखों में जैसे निष्प्राण हो रहा था।

माधो अचानक घिटोई की तरफ मुड़ा और हाथ में दस-दस रुपये के दस नोट पकड़ाते हुए बोला-

*भौजी! तुम ये पैसे लो और उसके पास जाकर उसकी सारी पुतरियाँ खरीद लो।*

माधो के यूँ किये आग्रह से वो पहले तो अवाक् सी उसे देखती रह गई, इतने सालों में माधो ने पहली बार उससे सीधे मुँह बात की, उसने कुछ अचकचाते हुए कहा-

*अरे का कहते हो, मैं अपने पैसे दे देती हूँ, ये अपने रखो अपने पास।*

*फिर धीरे से लम्बी साँस भरते हुए फुसफुसाई- शायद मेरे भी कुछ पाप कट जायें।*

*माधो ने जोर देते हुए कहा... ना ना, जे देवी माई के चढ़ौना के पैसा हैं... जे नई भौजी तुम यही ले जाओ।*

*घिटोई फिर बोली... अरे का देवी मइया के पैसा, लहरिया कोई देवी से कम है का? ना जाने उसके आशीष से हमारे ही क्लेश कट जाएं।*

माधो हाथ जोड़ खड़ा हो गया- *ना...ना...भौजी, वैसे ही करम दुखिया हूँ, इतना पाप ना चढ़ाओ!*

घिटोई इससे आगे कोई तर्क ना कर सकी, पैसे लेकर सीधे लहरिया के पास पहुँच गई।

*क्यों री लहरिया! कितने की हैं तेरी गुड़ियाँ? घिटोई ने पूछा*

ये आवाज सुनते ही लहरिया के पलाश से मुरझाये चेहरे पर जैसे सावन हरीरा हो उठा।

*चाची पुतरिया लेना है? लहरिया ने हँसकर पूछा*

अपनी डलिया में से एक-एक गुड़िया उठाकर घिटोई को दिखाती और कहती- *ये लाल है, ये नीली है, ये पीली है, कौन सी दूँ।*

घिटोई हँसी और बोली- *सब दे दो?*

लहरिया कुछ सकुचाते हुए बोली- *सब? पर बहुत सारे पैसे लगेंगे चाची, तुम्हारे पास पैसे हैं?*

घिटोई ने उसके हाथ में सिलवटों वाले दस-दस के नोट थमा दिये- *अब ले जाऊँ?*

लहरिया की आँखें चमकने लगीं थीं, सूखे से चेहरे पर जैसे सपनों वाले

सितारे टिमटिमाने लगे थे– *इतने सारे पैसे!*

घिटोई के चेहरे पर भी भावना की कई सारी लहरें एकसाथ उमड़ पड़ीं थीं। आज ह्रदय का जैसे कोई पाप धुल रहा हो। मन को ऐसी शान्ति और सन्तोष पहली बार मिला था। उसने लहरिया के सिर पर हाथ फेरा, उसके माथे को चूमा, अपना माथा जमीन में रखकर पाँव छुये और मन ही मन बुदबुदाई–

*तेरे रूप में आज लहर माई ने सच में मुझ पर कृपा की है। ये पीड़ा कभी ना हुई थी मुझे...*

*मैं हाथ–पाँव से समरथ होने के बाद भी कपट के मार्ग पर चलती रही, लोगों को अपने स्वांग से धोखा देती रही किसलिये?*

*आह माई! आज ना जाने क्यों ये प्रश्न मेरी आत्मा तक को छेदे जाते हैं! इस नन्हीं सी देवी को देखो... अपनी ख्वाहिशों पर बन्ध लगाये चंद पैसों के लिये कैसी दिनभर घाम में तपती बैठी रही...*

*और मैं क्या करती हूँ? धिक्कार है मुझ पर! आज तेरी इन अगढ़ माटी की देवियों को छूकर सौगन्ध उठाती हूँ कि चाहे जैसी स्थिति आ जाये छल, छद्म, की राह ना जाऊँगी।*

*हे लहर माई! आज के इस सबक के लिये आजीवन तुम्हारी सेविका बनकर रहूँगी... बिना मेहनत का निवाला तक अब मुँह में ना दूँगी।*

घिटोई उन गुड़ियों को छाती से लगाये लहर माई की देहरी पर बैठी रही, आज वो सच्चे अश्रुजल से माता के चरण पखार रही थी, मन का मैल धो रही थी, धन की तृष्णा को तिरोहित कर रही थी ।

लहरिया पैसे लेकर दौड़ गई, घिटोई पीछे से चिल्लाती रह गई– *अरे कहाँ जाती है? रुक मैं चलती हूँ। लेकिन लहरिया बिना रुके भाग गई।*

घिटोई तेज कदमों से माधो के पास आई, हाथ में डलिया थमाती हुई बोली– *बिटिया जाने कहाँ दौड़ गई, मैं पीछे चिल्लाती ही रह गई, जा तो जल्दी पकड़, खो ना जाये कहीं।*

माधो ने डलिया हाथ में ली और कहा– *भौजी! तुम जाओ, हमें पता है कहाँ गई होगी।*

लहरिया दौड़कर सीधे कपड़े वाली दुकान पर पहुँच गई। दुकान बन्द होने को थी। लहरिया बाहर टँगा नीला लहँगा पकड़कर बोली– *चाचा! जे नीला लहँगा दे दो।*

दुकानदार ने उसे घूरकर देखा– *जा बेटा! अकेली कहाँ घूमती है, तेरी अम्मा कहाँ हैं?*

लहरिया ने लहँगा जोर से झटकते हुये कहा– *जे दे दो चाचा, हमारे पास पैसे भी हैं।*

उसने अपनी मुट्ठी में भींचे हुए नोटों में से कुछ नोट निकालकर कहा– *ये ले लो पैसा।*

दुकानदार ने इधर उधर झाँका और लहरिया को झिड़कते हुए कहा–

> *तू अकेली यहाँ क्यों घूम रही है? जा अपनी अम्मा को लेके आ तब लहँगा दूँगा, अभी दुकान बन्द हो गई।*

लहरिया ने रुआँसी होकर नोट आगे बढ़ा दिये– *चाचा दे दो ना लहँगा।*

लहरिया को रुआँसा देखकर दुकानदार ने उसके सिर पर हाथ फेरा और उसके हाथ से मुड़े तुड़े नोट ले लिये और उनको गिनते हुए कहा–

> *बिटिया इतने पैसों में लहँगा नहीं आता और पैसे लगेंगे, तू अपनी अम्मा को लेकर आ जा... मैं आज दुकान नहीं बन्द करूँगा तब तक...*

लहरिया धरती में आँखें गड़ाये, अपने हाथों में दबे रुपयों को रुआँसी होकर निहारने लगी... फिर अनुनय करती हुई बोली– *चाचा! दे दो ना?*

दुकानदार– *जिद्द क्यों करती है बिटिया! इतने में नहीं आता ये लहँगा।*

लहरिया बस एक ही रट लगाये थी– *चाचा दे दो, चाचा दे दो।*

दुकानदार ने हारकर कहा– *अच्छा ला ये अपनी मुट्ठी के बाकी पैसे भी दे, और लहँगा ले जा।*

लहरिया ने झटके से मुट्ठी पीछे छुपाते हुये फिर बोली– *नईं.. ये पैसे नईं दूँगी...*

दुकानदार ने इस बार लहरिया को झिड़कते हुए कहा–

> *चल हट्ट! यहाँ से, जिद पर अड़ी है, जितने प्यार से बोले जाता हूँ उतनी सिर पर चढ़ी जाती है, जा यहाँ से कोई लहँगा नहीं है, यहाँ।*

लहरिया रोने लगी, बिलखते हुये दुकानदार का हाथ पकड़कर बोली– *नीला लहँगा...दे दो।*

कोई निर्मोही ही हो सकता था जो इस नमकीन पानी की लहरों में बिन डूबे निकल आये। लहरिया को बिलखते देख दुकानदार उसके पास आकर बैठ गया और बोला–

> *चुप... चुप... हो जा! मैं का करूँ... मैं मालिक होता तो बिन रुपये तुझे ये लहँगा उठाकर दे देता... लेकिन मैं ठहरा नौकर ...क्या करूँ तू ही बता?*

अब तक राधिका और माधो भी दुकान के पास पहुँच गये थे। लहरिया को दुकान पर खड़ा देख पीछे छिप रहे।

दुकानदार ने अपनी जेब टटोली और कहा मेरे पास चार सौ रुपये हैं और तू अपनी उस मुट्ठी के रुपये भी दे दे ये नीला लहँगा आ जायेगा लेकिन लहरिया ने मुट्ठी भींचकर पीछे कर ली।

दुकानदार खीझकर बोला–

> *पैसे भी नहीं देने लहँगा भी चाहिये... ना दो तो रोती है... वैसे*

*बता तो ये पैसे क्यों नहीं देना चाहती तू?*

लहरिया ने सुबकते हुए कहा–

*चाचा ये पैसे बाबू को दूँगी, हमारी छत से पानी बरसता है तो तला हमाई मड़ैया में आ जाता है... अम्मा रोटी नईं बना पाती, रोती हैं... गुस्सा करती है... अम्मा कहती थी पैसे आयेंगे तो छत से पानी नहीं आयेगा... अम्मा रोयेगी नहीं, गुस्सा भी नहीं करेगी!*

दुकानदार ने उसके माथे पर हाथ फेरा और बोला–

*बेटा! तेरे बाबू हैं ना... उनके पास पैसे आ गये होंगे तो छपरा वो बनवा देंगे, तुझे सोचने की जरूरत क्या है?*

लहरिया ने बाकी रुपयों की मुट्ठी को कसकर भींचा और छाती से चिपकाते हुए बोली–

*नहीं हमारे बाबू के पास पैसे नईं आयेंगे, हमने... हमने... ना बो बाबू की सारी गुड़िया टोर दी थी तो बो बजार में अब उनको... उनको नहीं बेच पायेंगे... इसलिये... इसलिये... बाबू के पास पैसे नईं आयेंगे इसलिये हम जे बाले दूँगी।*

दुकानदार की मन भी इस मासूम की ख्वाहिशों पर पसीज चला था–

*का कहूँ रे तुझे, देखो तो, है तनक सी और बातें कैसी बड़ी–बड़ी करती है, ईसुर तुझ सी बिटिया सबको दे लेकिन मैं का करूँ, कैसे तेरी मदद करूँ?*

*हे लहर माई! जे तो देवी को रूप है इसकी ऐसी परीक्षा काहे लेती हो और मुझे इस फेर में डालती हो... अब देता हूँ तो नौकरी से निकाला जाऊँ और ना देता हूँ तो आत्मा से धिक्कारा जाऊँ... अब तू ही कोई राह दिखा।*

अपनी बिटिया की बातें सुनकर वहीं कोने में खड़े राधिका और माधो

का कलेजा आँखों के रास्ते बह चला था, राधिका माधो की बाँह पर टिककर सिसकने लगी–

*इंसान जब धरती पर आता है ऐसा ही तो माटी का पुतला होता है, उसे दुनियादारी माता–पिता सिखाकर पोसते हैं... लोगों के सामने स्थिर होने लायक बनाते हैं, लेकिन गरीबों के संसार की अलग रीत हुआ करती है...*

*यहाँ माटी के पुतले को दीन–दुनिया, अच्छा बुरा, सबकुछ गरीबी सिखाया करती है। माता–पिता तो बस अपनी बेबसी पर कभी अपनी आँखें गीली करते हैं... कभी अपने हाथों को अपने कर्म पर पटकते हैं उन्हें पता ही नहीं चलता कि ये गुरबत कब उनके बच्चे को बचपन में ही बड़ा कर गई... हमारी बिटिया बचपन में ही बड़ी हो गई लहरिया के बाबू!*

माधो बस लहरिया को देख रहा था, मन में आज ना कोई प्रश्न, ना भय, ना फरियाद और ना ही पीड़ा। आज तो गर्व से भरी छाती थी, अभिमान से चमकता चेहरा था। माधो ने राधिका को सहारा देते हुये कहा–

*ना रो मत! आज तो गरब का दिन है, हम भले हारे हों लेकिन हमारी सीख, हमारा साहस और हमारा मान वो देख सामने अपनी मेहनत के पैसे लिये खड़ा है...*

*देख तो उसकी ख्वाहिश से बड़ी उसके लिये हमारी छत है और सुख के लिये का चाहिये? अब एक आँसू ना ढारना, आज तो हमारी बिटिया ने अपना माटी का लहँगा खुद कमाया है, आज त्यौहार का दिन है!*

माधो की सुर्ख आँखों में गौरव तैर रहा था। माधो लहरिया के पीछे आकर खड़ा हुआ दुकानदार को चुप रहने का इशारा किया, पैसे दिखाये और इशारे से वो नीला लहँगा लहरिया को दे देने के लिये कहा... फिर आड़ में जा छुपा।

लहरिया कुछ देर उस लहँगे को निहारती रही लेकिन जब दुकानदार ने उसकी बातें ना सुनी तो अनमनी होकर लौटने लगी। उदासी ओढ़े वो जैसे ही जाने को हुई तो दुकानदार ने उसे जोर से आवाज लगायी–

*अरे सुन तो बिटिया!*

*चल जितने पैसे हैं उतने दे दे और ये नीला लहँगा ले जा।*

*लहरिया हँसते हुए बोली... सच्ची चाचा! लहँगा ले जाऊँ, पर पूरे पैसे नईं दूँगी।*

*हाँ हाँ बेटा!... दुकानदार ने कहा.. जितने देने हैं तू उतने में ही ये ले जा।*

दुकानदार ने लहँगा उतारकर उसके हाथ में रख दिया। लहरिया के मुख पर ऐसा चाँद दमदमा उठा था जैसे किसी ने उसकी हथेली पर आकाश से तोड़कर सारे चमचमाते सितारे रख दिये हों... वो देर तक लहँगे पर ऐसे हाथ फिराती रही जैसे कोई बूढ़ा इंसान अपने बचपन को हसरतों से सहला रहा हो। लहरिया नीली चुनरिया से कभी घूँघट निकालती, कभी दुपट्टा बनाकर ओढ़ लेती।

ये नीली चुनरिया ओढ़कर उसके मुख पर देवी मईया की सारी आभायें एक साथ दीप्त हो चलीं थीं।

आज उसने सारा आकाश अपनी इन नन्हीं हथेलियों से कमाया था। उसका अंग–अंग किलोरें कर रहा था, आँखों में जैसे सारे नभमण्डल की आभायें उभर आईं थीं।

...अपनी ख्वाहिशों को उस अनन्त आकाश में लहराते हुये...

...लहरिया नीला लहँगा लहराती हुई दौड़ रही थी...

...नीला लहँगा आ गया... नीला लहँगा आ गया...

...नीला लहँगा आ गया...